भारत विभाजन की त्रासदी और भारतीय साहित्य

राष्ट्रीय संगोष्ठी (28–29 नवम्बर 2023)

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

सम्पादक एवं संयोजक

Dr. Manish Kumar Mishra

Editor & Convenor

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान

राष्ट्रपति निवास, शिमला

© भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
© Indian Institute of Advanced Study, Shimla

प्रथम संस्करण, 2024
First Edition, 2024

सर्वाधिकार सुरक्षित।
प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या माध्यम से पुस्तक का कोई भी भाग पुनः प्रस्तुत या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।
All rights reserved.
No part of book may be reproduced or transmitted, in any form or by any means, without the written permission of the publisher.

ISBN: 978-81-978281-0-2

मूल्य | Price : 570/-

सचिव
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला–171005 द्वारा प्रकाशित

Published by
The Secretary
Indian Institute of Advanced Study
Rashtrapati Nivas, Shimla-171005

मुद्रक : एक्सेल प्रिंटिंग यूनिवर्स, नई दिल्ली
Printed at Excel Printing Universe, New Delhi

टाइपसेट : ऊषा कश्यप, नई दिल्ली
Typeset by : Usha Kashyap, New Delhi

प्रस्तावना

आधुनिक दक्षिण एशियाई इतिहासकार भारत विभाजन को उस राष्ट्रवादी एजंडे की, विफलता के रूप में भी चिन्हित करते हैं जो 'अखंड भारत' के सपनों से जुड़ा हुआ था। 15 अगस्त सन 1947, दक्षिण एशियाई इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है। अंग्रेजों और मोहम्मद अली जिन्ना ने मिलकर 'सांप्रादायिक राजनीति' की जो चाल चली उसे मुख्य रूप से भारत विभाजन का कारण माना जाता है। तो एक समूह यह ठीकरा महात्मा गाँधी पर फोड़ते हुए मानता है कि यदि नेताजी सुभाषचंद्र बोस को वो सही तवज्जो देते तो शायद इस विभाजन से बचा जा सकता था। पाकिस्तान का अधिकारिक मत रहा है कि पाकिस्तान बनाकर जिन्ना ने मुसलमानों को हिन्दू प्रभुत्व से बचाया। इस तरह संरचनावादी (structuralist) और इरादेवादी (Intentionalist) समूहों के बीच विभाजन के कारणों को लेकर मतांतर है।

इस तरह बहुत सारी नीतियो एवम् व्यक्तिगत द्वंद्व को एक तरफ विभाजन के लिए जिम्मेदार माना गया तो दूसरी तरफ संरचनावादी विद्वानों ने निर्धारणवाद (determinism) को प्रमुखता देते हुए स्वैच्छिक विचारों, अवसरवादिता, रियासतों के निर्णय इत्यादि को विभाजन के कारणों के मूल में देखने की चेष्टा की। हम जानते हैं कि ऐतिहासिक नतीजे दीर्घकालीन संरचनाओं एवम् अल्पकालीन आकस्मिक कारणों का मिलाजुला उत्पाद माने जाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हम ध्यान दें तो सन 1936-37 के चुनावों में अधिकांश प्रांतों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सरकारों के गठन के परिणामस्वरूप ऑल इंडिया मुस्लिम लीग (AIML) को इतिहासकार सामान्य रूप से दूसरे के 'नायक' को 'खलनायक' के रूप में दिखाते रहे हैं। जिस तरह हमारे यहाँ मोहम्मद अली जिन्ना को 'खलनायक' माना गया, उसी तरह पाकिस्तान में जवाहरलाल नेहरू को देखा गया। लेकिन विमर्श केन्द्रित साहित्य, उत्तर आधुनिकतावाद और सांस्कृतिक-सामाजिक अध्ययन की नई परिपाटी ने विभाजन के कारणों और त्रासदी को समझने के लिए आम आदमी के अनुभवों को महत्त्वपूर्ण माना।

औरतों, दलितों और शरणार्थियों की पीड़ा के माध्यम से विभाजन को देखने की नई दृष्टि विकसित हुई। आम आदमी की स्वायत्त राजनीति, पहचान की राजनीति, बहुसंस्कृतिवाद अध्ययन के वे नए औजार बने जो आम आदमी के व्यवहार और विचार को समझने में महत्त्वपूर्ण रहे। साहित्यिक आलोचना और उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांतों ने विभाजन के इतिहास को समझने में नई कड़ी जोड़ी। विभाजन से जुड़ा इतिहास और इतिहास आलेखकारी (historiography) अकादमिक जिज्ञासाओं में बहुत कुछ नया साझा कर सकता है। नई अध्ययन परिपाटी में व्यक्ति को इतिहास का इंजन बनाया जा रहा है। विभाजन क्यों? से अधिक विभाजन कैसे? अधिक प्रभाव छोड़ सका। वह बहस के केन्द्र में है। विभाजन का जनमानस पर क्या प्रभाव पड़ा यह 'कद्दावर राजनीति' का हिस्सा माना जा सकता है। ऐसे अध्ययन समाज और राष्ट्र को अपनी कार्यान्वयन प्रणाली में अग्रगामी बनाने की क्षमता रखते हैं।

अगस्त 1946 के बाद लगभग 15 महिनों तक भारत में धार्मिक उन्माद उस चरम पर था जहाँ मनुष्यता के लिए लज्जित होने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं था। लाखों असहाय बूढ़े, औरतें और बच्चे हिंदू-मुस्लिम गदर की भेट चढ़ गये। संपत्तियों की लूट, आगजनी, अपहरण, बलात्कार, धर्म और बँटवारे के नाम पर घने कोहरे की तरह छाये हुए थे। हिंदू, सिख या मुसलमान होना मानों ऐसा सामाजिक अपराध बन गया था जिसकी सजा मृत्यु थी। अविभाजित भारत की कुल जनसंख्या सन 1941 में 389 मिलियन थी। जिसमें 255 मिलियन हिन्दू और 92 मिलियन मुसलमान आबादी थी। इसी तरह 6.3 मिलियन इसाई और 5.6 मिलियन सिख थे। लेकिन इस तरह की सांप्रदायिक हिंसा पहले नहीं हुई।

अंग्रेजों ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की कि हिन्दू-मुस्लिम समाज की दूरी लगातार बढ़ाई जाए। अलगाववादी विचारधारा के लोगों को उन्होंने प्रोत्साहित भी किया। ब्रिटिश अधिकारियों, एंग्लो-इंडियन समुदाय के अधिकारियों ने 1947 के शुरू हुए दंगों के बीच मुस्लिम लीग के संगठनों को अवैध प्लान से सहायता प्रदान की इसके प्रमाण मिलते हैं। जिन्ना के गुप्त समझौते की कलई माईकल फूट (Michael Foot) जैसे ब्रिटिश सांसदो ने अपने लेखों के माध्यम से खोली। 26 मार्च 1940 को लाहोर में मुस्लिम लीग काउंसिल के दौरान 'पाकिस्तान रिजोल्युशन' पास किया गया। जिन्ना वाईसराय इग्जिक्युटिव काउंसिल (Executive Council) में मुस्लिम लीग के लिए कांग्रेस के बराबर प्रतिनिधित्व चाहते थे, जिसे कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। परिणाम स्वरूप जिन्ना 'मुस्लिम महात्मा'

के रूप में मुसलमानों के कद्दावर नेता बन गए।

सन 1905 में लार्ड कर्जन (curzon) द्वारा बंगाल का विभाजन दरअसल वह बिन्दु था जहाँ से अंग्रेजों ने 'विभाजन' की राजनीति को असली जामा पहनाया। फिर सन 1909 से 1916 के बीच मुस्लिम लीग को मजबूत करते हुए 'चुनावी प्रकिया' में बड़ी चालाकी से उन्होंने दो प्रतिद्वंद्वी खड़े कर दिये। इस तरह 'विश्वास' का आधार लगातार कमजोर किया गया। विभाजन अपनी समग्रता में बहुत सारी घटनाओं, विकल्पों एवम व्यक्तिगत इच्छाओं की पहल का परिणाम था। यह एक दिशात्मक (directional) प्रकिया थी। जो कि प्राथमिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत (elementary sociological diction) की तरह निरंतरता में बना रहा। परिणामत: पृथक्करणीय बल बढ़ते हुए विभाजन के रूप में हमारे सामने आया, लेकिन कई बार ऐसे क्षण भी आये जब एकीकरण का भाव भी प्रबल रहा। गाँधी जी व्यापक स्तर पर प्रतीकों के प्रभावीकरण (efficacy of symbols) के लिए भी जाने गए। चरखा, खादी, दांडी यात्रा, स्वदेशी, सत्याग्रह और अहिंसा जैसे प्रतीक गाँधीजी ने अपने व्यक्तित्व के समानांतर खड़े करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन सब के बावजूद देश का विभाजन हो गया।

विभाजन की त्रासदी और भारतीय साहित्य को लेकर मंगलवार दिनांक 28 नवंबर 2023 को भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी की शुरूआत हुई। संगोष्ठी का मुख्य विषय ''भारत विभाजन की त्रासदी और भारतीय भाषाओं का साहित्य'' रहा। इस संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में मुख्य वक्ता के रूप में राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद के निदेशक प्रो. रविप्रकाश टेकचंदानी, संस्थान के नेशनल फेलो प्रो. हरपाल सिंह और बीज वक्ता के रूप में व्यंकटेश्वर कालेज, नई दिल्ली से प्रो. निर्मल कुमार उपस्थित थे।

मान्यवर अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलित करके इस संगोष्ठी की शुरूआत हुई। संगोष्ठी के संयोजक डॉ मनीष कुमार मिश्रा ने स्वागत भाषण के साथ संगोष्ठी के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। दिल्ली के व्यंकटेश्वर कॉलेज में इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो निर्मल कुमार ने विभाजन और सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में अपना सारगर्भित वक्तव्य दिया। प्रो हरपाल सिंह ने विभाजन की त्रासदी को लेकर अपने विचार साझा किए। प्रो रवि टेकचंदानी ने सिंधी साहित्य और समाज के परिप्रेक्ष्य में बड़ा मार्मिक वक्तव्य प्रस्तुत किया। इस अवसर पर उन्होंने विभाजन पर प्रकाशित अपनी पुस्तक की प्रति भी संस्थान के सचिव श्री नेगी जी को भेंट की। संस्था के निदेशक प्रो नागेश्वर राव जी ऑनलाईन माध्यम से कार्यक्रम से

जुड़े और सभी आए हुए अतिथियों के प्रति आभार ज्ञापित किया। अंत में संस्थान के सचिव श्री नेगी जी ने आभार ज्ञापन की जिम्मेदारी पूरी की। इस सत्र का कुशल संचालन श्री प्रेमचंद जी ने किया। राष्ट्रगान के साथ यह उद्घाटन सत्र समाप्त हुआ।

उद्घाटन सत्र के अतिरिक्त पहले दिन तीन चर्चा सत्र संपन्न हुए जिनमें देश भर से जुड़े 10 विद्वानों ने अपने प्रपत्र प्रस्तुत किए। इन तीनों सत्रों की अध्यक्षता क्रमश: प्रो आलोक गुप्ता (फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), प्रो निर्मल कुमार(व्यंकटेश्वर कॉलेज, नई दिल्ली में इतिहास विभाग के अध्यक्ष) और प्रो रविंदर सिंह जी (फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला) ने किया। संगोष्ठी के दूसरे दिन कुल चार चर्चा सत्र संपन्न हुए जिनकी अध्यक्षता क्रमश: प्रोफ़ेसर महेश चंपकलाल (टैगोर फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), प्रोफ़ेसर नंदजी राय (फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), प्रोफ़ेसर हरपाल सिंह (नेशनल फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला) और प्रोफ़ेसर हरि मोहन बुधोलिया जी ने किया। दूसरे दिन कुल 13 प्रपत्र वाचकों ने अपने प्रपत्र प्रस्तुत किए।

समापन सत्र की अध्यक्षता भी प्रोफ़ेसर हरि मोहन बुधोलिया जी ने की। इस अवसर पर संस्थान के अकेडमिक रिसोर्स आफ़िसर श्री प्रेमचंद जी भी उपस्थित थे। संगोष्ठी के संयोजक डॉ मनीष कुमार मिश्रा ने दो दिवसीय संगोष्ठी की रिपोर्ट प्रस्तुत की। वरिष्ठ एसोशिएट श्री अयूब ख़ान जी ने संगोष्ठी पर अपना मंतव्य व्यक्त किया। श्री प्रेमचंद ने संस्थान की गतिविधियों की जानकारी देते हुए इस संगोष्ठी में प्रस्तुत सभी आलेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की बात कही। अध्यक्षी भाषण में प्रोफ़ेसर हरि मोहन बुधोलिया जी ने सुंदर आयोजन की तारीफ़ की। अंत में संयोजक के रूप में डॉ मनीष कुमार मिश्रा ने सभी के प्रति आभार ज्ञपित करते हुए, अध्यक्ष की अनुमति से संगोष्ठी समाप्ति की घोषणा की। इस तरह दो दिन की संगोष्ठी बड़े सुखद वातावरण में संपन्न हुई।

डॉ मनीष कुमार मिश्रा
संगोष्ठी संयोजक
विजिटिंग प्रोफ़ेसर (ICCR Chair)
दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशियाई भाषा विभाग
ताशकंद राजकीय प्राच्य विश्वविद्यालय, ताशकंद, उज़्बेकिस्तान

अनुक्रम

प्रस्तावना iii

1. सिंधी साहित्य में भारत विभाजन विभीषिका का विवेचन
डॉ. डॉली 9

2. हिंदी सिनेमा में भारत विभाजन की त्रासदी का निरूपण
डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज 19

3. विभाजन की त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-जीवन
डॉ अम्बरीन आफ़ताब 40

4. झूठा सच उपन्यास के आईने में विभाजन की त्रासदी
डॉ. उषा दुबे 49

5. परंपरागत लेखनी से परे: विभाजन की त्रासदी और इंतज़ार हुसैन
डॉ. गुलजबीं अख्तर अंसारी 57

6. भारत विभाजन त्रासदी: समकालीन हिन्दी उपन्यासों में शरणार्थियों एवं स्त्रियों की दुर्दशा
डॉ महात्मा पाण्डेय 77

7. भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य से : विभाजन और विभाजित होती नारी
ज्योति शर्मा *100*

8. कृष्णा सोबती की कहानियों में भारत विभाजन की त्रासदी
नेहा राठी 110

9. विभाजन की त्रासदी : नामधारी समाज और साहित्य की दृष्टि में
डॉ रेणु द्विवेदी 123

10. मोहन राकेश की कहानियों में चित्रित देश विभाजनोत्तर विभीषिका
डॉ पुरुषोत्तम कुंदे 134

11. विभाजन की त्रासदी और मंटो की कहानियाँ
डॉ. नीलाभ कुमार 142

12. समानांतर सांप : विभाजन की त्रासदी और अज्ञेय की कविता
प्रो. सर्वेश सिंह 150

13. मुस्लिम महिलायें व विभाजन की त्रासदी: आतिया हुसैन के Sunlight On The Broken Column के विशेष संदर्भ में
डॉ. शिल्पी दूदवाल 158

14. 'आधा गाँव' की स्त्रियाँ और भारत विभाजन की अंतर्कथा
सुप्रिया पाठक 170

15. पंजाबी कविताओं में विभाजन की त्रासदी : एक अध्ययन
डॉ. हरप्रीत कौर 186

16. विभाजन त्रासदी: राजेंद्र सिंह बेदी की लाजवंती के माध्यम से पीड़ित महिलाओं की अनकही कहानी
श्वेता कुमारी 193

17. भारत विभाजन की त्रासदी और मराठी साहित्य
डॉ संदीप कदम 205

18. A Tryst with Division : The Other Side of India's Independence
Dr. Manisha Patil 226

19. Linguistic Identity : Issues of Language and Script of the Balti Language
Etee Bahadur 243

सिंधी साहित्य में भारत विभाजन विभीषिका का विवेचन

डॉ. डॉली *

सिंधी समुदाय एक जीवंत और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध लोगों का समूह है जिसका इतिहास सहस्राब्दियों पुराना है। सिंधी मुख्य रूप से सिंध क्षेत्र से जुड़े हैं, जो अब पाकिस्तान में स्थित है, लेकिन उनकी उपस्थिति और प्रभाव भौगोलिक सीमाओं से कहीं आगे तक फैला हुआ है। अपनी उद्यमशीलता की भावना हेतु प्रसिद्धि प्राप्त सिंधियों ने व्यवसाय, व्यापार, साहित्य और कला सहित विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी भाषा, सिंधी, उनकी पहचान का एक अभिन्न अंग है, और यह क्षेत्र की सांस्कृतिक विविधता और सिंधु घाटी सभ्यता सहित विभिन्न ऐतिहासिक सभ्यताओं के प्रभावों को दर्शाती है। प्रवासन की चुनौतियों के बावजूद, विशेष रूप से भारत के विभाजन के दौरान, सिंधी समुदाय ने अपनी अनूठी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए लचीलेपन और मजबूत प्रतिबद्धता का प्रदर्शन किया है। अपने गर्मजोशी भरे आतिथ्य और समुदाय की मजबूत भावना के साथ, सिंधी उन क्षेत्रों की सामाजिक और सांस्कृतिक छवि को समृद्ध करना जारी रखते हैं जहां वे बसे हैं, जिससे उनके सदस्यों के बीच अपनेपन और एकता की भावना को बढ़ावा मिलता है।

सिंधी समुदाय और सिंधी साहित्य का गहरा और आपस में जुड़ा हुआ इतिहास है। अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और लचीलेपन के लिए जाना जाने वाला सिंधी समुदाय सदियों से सिंधी भाषा और साहित्य का संरक्षक रहा है।

* प्रोजेक्ट एसोसिएट, इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स, नई दिल्ली
dollyhirani®z@gmail.com

सिंधी साहित्य, भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे पुरानी साहित्यिक परंपराओं में से एक है, जो समुदाय की सामूहिक स्मृति, मूल्यों और अनुभवों को दर्शाता है। इसमें कविता, गद्य और लोक कथाओं सहित साहित्यिक रूपों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। सिंधी साहित्य सिंधी भाषा और संस्कृति को संरक्षित और बढ़ावा देने का खासकर विभाजन और प्रवासन जैसी चुनौतियों का सामना करने में एक सशक्त माध्यम रहा है। यह सिंधी पहचान को जीवित रखने, सिंधियों के बीच एकता की भावना को बढ़ावा देने और अतीत और वर्तमान के बीच की खाई को पाटने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ में, सिंधी समुदाय और उसका साहित्य एक सांस्कृतिक टेपेस्ट्री बनाते हैं जो एक समृद्ध इतिहास, पहचान की एक मजबूत भावना और उनकी भाषाई और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता को एक साथ जोड़ता है।

सिंधी साहित्य समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का खजाना है और सिंधी लोगों की स्थायी भावना का प्रमाण है। प्राचीन सभ्यताओं से जुड़ी जड़ों वाली इस साहित्यिक परंपरा में सूफी कविता से लेकर आधुनिक उपन्यास और निबंध तक शैलियों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। शाह अब्दुल लतीफ भिट्टई, सचल सरमस्त और कृष्ण खेमानी जैसे उल्लेखनीय लेखकों ने आध्यात्मिकता, प्रेम, पहचान और सामाजिक सुधार के विषयों की खोज करते हुए सिंधी साहित्य पर एक अमिट छाप छोड़ी है। इन साहित्यिक दिग्गजों ने भारतीय उपमहाद्वीप के व्यापक साहित्यिक परिदृश्य में योगदान देते हुए सिंधी भाषा और संस्कृति को संरक्षित और बढ़ावा देने में मदद की है। सिंधी साहित्य की विविधता और गहराई इसे एक मूल्यवान सांस्कृतिक संपत्ति बनाती है, जो सिंधी समुदाय के अनुभवों, इतिहास और मूल्यों को दर्शाती है, और लिखित शब्द की शक्ति के माध्यम से अतीत और वर्तमान को जोड़ती है।

1947 में भारत के विभाजन का सिंध क्षेत्र पर गहरा प्रभाव पड़ा, जो अब पाकिस्तान का एक प्रांत है। विभाजन से पहले, सिंध एक विविध और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र था, जिसमें मुसलमानों और अन्य धार्मिक समुदायों के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण हिंदू आबादी थी। हालाँकि, विभाजन के दौरान, भारत के अन्य हिस्सों की तरह, सिंध में भी महत्त्वपूर्ण सांप्रदायिक हिंसा और जनसंख्या विनिमय हुआ, जिसके कारण बड़े पैमाने पर हिंदुओं का भारत और मुसलमानों का पाकिस्तान में प्रवास हुआ। विभाजन के कारण सिंध में महत्त्वपूर्ण जनसांख्यिकीय

परिवर्तन हुए, क्योंकि इस क्षेत्र में गहरी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक जड़ें रखने वाले हिंदू समुदाय को चुनौतियों और हिंसा का सामना करना पड़ा, जिसने कई लोगों को अपने पैतृक घर छोड़ने के लिए मजबूर किया। सीमाओं के पार लोगों की आवाजाही ने सिंध में सदियों से मौजूद सामाजिक ताने-बाने और सांप्रदायिक सद्भाव को बाधित कर दिया। इसके अतिरिक्त, विभाजन का सिंध क्षेत्र पर राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव पड़ा। संसाधनों का विभाजन, प्रशासनिक परिवर्तन और ब्रिटिश उपनिवेश से पाकिस्तान के एक प्रांत में परिवर्तन ने सामाजिक और आर्थिक चुनौतियाँ पैदा कीं। इससे सिंधी संस्कृति और भाषा के संरक्षण पर भी सवाल उठे, क्योंकि यह क्षेत्र पाकिस्तान का हिस्सा बन गया।

विभाजन के बाद के दशकों में, सिंध सांप्रदायिक संबंधों, आर्थिक विकास और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से संबंधित मुद्दों से जूझता रहा। सिंधी संस्कृति, अपनी अनूठी परंपराओं, भाषा और विरासत के साथ, चुनौतियों के बावजूद कायम है, और कई सिंधी लेखकों और बुद्धिजीवियों ने क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने और मनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

विभाजन और सिंधी साहित्य

विभाजन के बाद सिंधी साहित्य नए राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों और अवसरों से चिह्नित एक परिवर्तनकारी चरण से गुजरा। 1947 में भारत के विभाजन के कारण बड़ी संख्या में सिंधी हिंदू आबादी का भारत में प्रवास हुआ, जिसका अनिवार्य रूप से सिंधी साहित्यिक समुदाय पर प्रभाव पड़ा। भारत में, सिंधी लेखकों को अपने नए परिवेश के अनुरूप ढलते हुए अपनी भाषा और संस्कृति को संरक्षित करने की चुनौती का सामना करना पड़ा। इस अवधि के दौरान उत्पादित साहित्यिक कृतियों में प्रवासन, विस्थापन और पीछे छूट गई मातृभूमि की लालसा के अनुभव प्रतिबिंबित हुए। लीलाराम वाधवानी और किरत बाबानी जैसे लेखकों ने विभाजन के बाद के सिंधी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिसमें सिंधी प्रवासी की भावनाओं और चुनौतियों को शामिल किया गया। समय के साथ, सिंधी साहित्य का विकास जारी रहा, भारत सिंध, पाकिस्तान दोनों में सिंधी समुदाय की सांस्कृतिक विरासत और भाषाई जड़ों के साथ गहरा संबंध बनाए रखते हुए, समसामयिक मुद्दों को संबोधित किया गया और आधुनिक विषयों को अपनाया गया।

प्रारंभिक चरण में कई अग्रणी लेखकों का उदय हुआ, जिन्होंने अपने शक्तिशाली लेखन के माध्यम से विभाजन के दर्द और पीड़ा को दर्शाया। इन लेखकों ने विस्थापित समुदाय को एक आवाज़ प्रदान की, जिससे वे अपने सामूहिक दु:ख और हानि को व्यक्त कर सके। कुछ मुख्य सिंधी साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं के वर्णन के द्वारा हम विभाजन की विभीषिका का सिंधी समुदाय पर पड़े प्रभावों को उचित प्रकार से समझ पाएंगे, जिनका वर्णन अग्रलिखित है :

गोबिंद माल्ही

1947 में भारत का विभाजन उपमहाद्वीप के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण क्षण था, जो हिंसा, बड़े पैमाने पर प्रवासन और राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पहचान के पुनर्गठन द्वारा चिह्नित था। इस प्रलयंकारी घटना ने वहां रहने वाले लोगों पर एक अमिट छाप छोड़ी और इसे साहित्य के विभिन्न रूपों में मार्मिक अभिव्यक्ति मिली। गोबिंद मल्ही, एक प्रतिष्ठित सिंधी लेखक रहे है जिनकी लेखनी विभाजन के दौरान अनुभव की गई मानवीय पीड़ा, सामाजिक परिवर्तनों और विस्थापन की भावना को चित्रित करने में एक महत्त्वपूर्ण आवाज के रूप में उभरी। गोबिंद मल्ही का जन्म 1921 में शिकारपुर, सिंध में हुआ था, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। उनके प्रारंभिक वर्ष भारत के विभाजन तक के उथल-पुथल भरे समय के साथ मेल खाते थे। विभाजन का उनके जीवन और उसके बाद उनके साहित्यिक उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ा। गोबिंद मल्ही की रचनाओं में कविता, लघु कथाएँ और निबंध शामिल हैं, जो उन्हें सिंधी साहित्य के क्षेत्र में एक बहुमुखी और प्रभावशाली व्यक्ति बनाते हैं। सिंधी में उनकी साहित्यिक रचनाएँ विभाजन का एक जीवंत चित्रण प्रदान करती हैं और भावनात्मक और सामाजिक जटिलताओं को दर्शाती हैं। विभाजन के पश्चात् भी उनके उपन्यास अपने स्वरूप में आने लगा। इस क्षेत्र में गोबिंद मल्ही का अग्रणी कार्य विभाजन-पूर्व युग में ग्रामीण सिंधी जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित था; उनके उपन्यास पाखिरा वलरन खान विचिरा ('बर्ड्स सेपरेटेड फ्रॉम द फ्लॉक') में एक नायक है जो अपनी मातृभूमि छोड़ने से इनकार करता है। 1953 में गोबिंद मल्ही द्वारा अपने विभाजन के अनुभव पर लिखी गई इस पुस्तक में नायक सनवाल ने सिंध छोड़ने से इनकार कर दिया है, जबकि उनके सभी परिवार और दोस्त ऐसा करते हैं। पुस्तक विभाजन की स्थिति का स्पष्ट रूप से वर्णन करती है, और सनवाल के धर्म के राजनीतिक

वर्गीकरण के आगे न झुकने के दृढ़ संकल्प के माध्यम से, लेखक सिंधी सूफी लोकाचार को व्यक्त करता है जो मानवता को सबसे ऊपर रखता है। सिंधीशान द्वारा द एंगुइश ऑफ सेपरेशन के रूप में अंग्रेजी में अनुवादित और 2014 में शोभा चंदनानी द्वारा प्रकाशित की गयी है। सिंध के संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखा गया एक क्रांतिकारी उपन्यास शरम बूटी (संवेदनशील पौधा) भी विशेष महत्त्व रखता है जिसमें उपमहाद्वीप के विभाजन से पहले के दिनों में सिंधी हरि समिति के संघर्ष का वर्णन है। भारतीय संविधान ने 10 अप्रैल 1967 को सिंधी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता दी जिसका श्रेय गोबिंद मल्ही जी, किरत बबानी, ए जे उत्तम और उनके अन्य मित्रों के प्रयासों एवं लेखनी को जाता है।

सुंदरी उत्तमचंदाणी

1924 में हैदराबाद, सिंध में जन्मी सुंदरी उत्तमचंदाणी एक विपुल लेखिका थीं, जिन्होंने सिंधी साहित्य में अपने योगदान के लिए प्रसिद्धि हासिल की। उनका लेखन उपन्यास, लघु कथाएँ, निबंध और कविता सहित विभिन्न शैलियों में फैला हुआ है। वह न केवल एक प्रतिभाशाली कहानीकार थीं, बल्कि सिंधी संस्कृति, भाषा और परंपराओं के संरक्षण की एक उत्साही समर्थक भी थीं। उन्होंने अपने उपन्यासों, लघु कथाओं और निबंधों के माध्यम से सिंधी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी कहानी भूरी (एक गुड़िया) बीते वर्षों की एक सुंदरता की मर्मस्पर्शी कहानी को सामने लाती है, जिसने देश के विभाजन के कहर के कारण अपना मनमोहक रूप खो दिया है, लेकिन आंतरिक सुंदरता से दीप्तिमान है, जो श्रम की गरिमा से पैदा हुई है। और अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ उठाने का आचरण करने का आश्वासन दिया, इस प्रकार अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होकर, बिना किसी नारीवादी आवाज़ के लैंगिक समानता की शुरूआत की। 1982 में प्रकाशित सुंदरी उत्तमचंदानी की लघु कहानी, देह थ्यो परदेह (मातृभूमि अब एक विदेशी भूमि है) विभाजन और प्रवास की पृष्ठभूमि में सिंधियों की सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का प्रतिनिधित्व करती है। इस कहानी में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार से सिंध में बहुसांस्कृतिक परिवेश का स्मरण अपनी भूमि और उसके लोगों से जुड़ने की गहरी इच्छा से जुड़ा हुआ है। यह कहानी विभाजन के बाद सिंधियों के बीच एक सामाजिक-साहित्यिक बदलाव को भी दर्शाती है। इस लेखन के

द्वारा लेखकों और कलाकारों के रूप में महिलाओं का उदय भी प्रकाश में आया।

मोहन कल्पना

1938 में सिंध, पाकिस्तान में पैदा हुए मोहन कल्पना सिंधी साहित्य के क्षेत्र में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में उभरे। उनकी रचनात्मक प्रतिभा उपन्यास, लघु कथाएँ और कविता सहित विभिन्न शैलियों में फैली हुई थी। अपने पूरे साहित्यिक करियर के दौरान, मोहन कल्पना ने सिंधी संस्कृति, विरासत और भाषा के संरक्षण के लिए गहरी प्रतिबद्धता प्रदर्शित की। मोहन कल्पना की जलवतनी विभाजन साहित्य में एक दुर्लभ दस्तावेज़ है। यह विभाजन के साहित्यिक संग्रह में हिंसा, घर के लिए संघर्ष, संसाधनों की कमी और पहचान से जुड़ी अस्वीकृति के भीषण वर्णन के बजाए मेजबान राष्ट्र की शत्रुता पर क्रोध की आवाज को गायब करने वाली एक कठोर आवाज को सामने लाता है। मोहन कल्पना की कविताएँ ''दिल हान मुहिनजी हिक आहू'' में सिंध से अलग होने का दर्द और मातृभूमि की लालसा को व्यक्त करती हैं। उनकी कविता विभाजन के गहरे भावनात्मक घावों को प्रतिबिंबित करती है और ''दिल हान मुहिनजी हिक आहू,'' जिसका अनुवाद ''माई हार्ट इज़ माई ओनली होम'' है, एक उपन्यास है जो मोहन कल्पना की कहानी कहने की क्षमता का सार दर्शाता है। 1994 में प्रकाशित यह उपन्यास सिंधी संस्कृति और इतिहास के प्रति एक हार्दिक श्रद्धांजलि है, जो लेखक के अपनी मातृभूमि के प्रति गहरे प्रेम को दर्शाता है। मोहन कल्पना की ''दिल हान मुहिनजी हिक आहू'' जैसी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से सिंधी संस्कृति और विरासत को संरक्षित करने की प्रतिबद्धता सिंधी समुदाय के लिए गर्व का स्रोत है। अपनी मातृभूमि के प्रति उनका गहरा प्रेम और सिंधी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों का जश्न मनाने में साहित्य के महत्त्व की याद दिलाता है।

पोपटी हीरानंदानी

सबसे विपुल, मौलिक और जीवंत सिंधी लेखिकाओं में से एक नारीवादी आदर्श, पोपटी हीरानंदानी थीं। उनकी आत्मकथा और चयनित कहानियाँ, द पेजेस ऑफ माई लाइफ, का 2010 में ज्योति पंजवानी द्वारा सिंधी से अनुवाद किया गया था। पोपती एक युवा लड़की के रूप में हैदराबाद में अपने जीवन और अपने पिता की मृत्यु के बाद परिवार की देखभाल करने के लिए अपनी माँ के

संघर्ष के बारे में लिखती हैं। वह स्वतंत्र भारत में एक लेखिका के रूप में अपने जीवन के बाद हिंसा से बचने और दर्दनाक पुनर्वास का वर्णन करती है। कहानियाँ आत्मकथा का एक काल्पनिक विस्तार हैं और उनके मुख्य विषय लिंग, विभाजन और सामाजिक अन्याय हैं।

रीता शाहनी

1999 में लिखी गई यरवदा जैल ज्यु कहानियां में,शाहनी ने सोते समय उन कहानियों का सहारा लिया जो उनके पति विष्णु अपने बच्चों को एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अपने जीवन के बारे में बताते थे। यह पुस्तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, आरएसएस, सिंध की हार की कड़वाहट – 15 अगस्त 1947 को, विष्णु ने पीड़ा में झंडा फाड़ दिया – और कुछ बदलावों का सर्वांगीण दृश्य प्रस्तुत करने के लिए अलग–अलग दृष्टिकोणों के साथ अलग–अलग आवाजों का उपयोग करती है। आज़ादी के बाद का स्थान 2014 में लेखक के साथ साज़ अग्रवाल द्वारा टेल्स फ्रॉम यरवदा जेल के रूप में अंग्रेजी में अनुवाद किया गया।

विभाजन के बारे में सिंधी उपन्यास कम हैं, लेकिन अलगाव, हानि और संघर्ष के दुखद परिणाम में छोटी कहानियों और कविताओं की भारी बाढ़ आई। अनबॉर्डर्ड मेमोरीज़, छोटी कहानियों का एक संग्रह, 2009 में रीता कोठारी द्वारा अनुवादित किया गया था। स्वतंत्रता और दरारें, सिंधी विभाजन कविता का एक संकलन, 1998 में कवि अर्जन 'शाद' मीरचंदानी के साथ अंजू मखीजा और मेनका शिवदासानी द्वारा अनुवादित किया गया था।

तारंदरा बादल (बादल सीमाओं का उल्लंघन करते हैं) 1990 के दशक के अंत में कृष्ण खटवानी द्वारा लिखा गया था। जब विभाजन हुआ था वो खुद शांतिनिकेतन में एक छात्र थे। इसमें किरदार हेम के पिता थारुशाह के मुखी हैं। जब विभाजन होता है तो शांतिनिकेतन में वह स्वतंत्र भारत में एक सफल और अच्छी तनख्वाह वाला पत्रकार बन जाता है। हालाँकि, खो जाने और फिट न होने की भावना बनी रहती है। यह किताब उनकी पीड़ा, उनके दृढ़ विश्वास के बारे में है कि उन्हें सिंध की उतनी ही जरूरत है जितनी सिंध को उनकी। वह कच्छ में घूमता है, नमक के रेगिस्तान को पार करके सीमा की ओर जाता है, और फिर कभी नहीं देखा जाता है।

अपने उपन्यास अबो (1988) की अगली कड़ी के रूप में, हरि मोटवानी

की अझो (1990) भारत में सिंधियों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से संबंधित है और उन स्थितियों को संवेदनशील रूप से चित्रित करती है जिनमें सिंधियों ने विभाजन के बाद सिंध से पलायन करने के बाद खुद को पाया था। यह 'आझो' (आश्रय) की तलाश करने वाले और नए वातावरण में आजीविका के लिए संघर्ष करने वाले पात्रों को चित्रित करता है। प्रारंभ में, प्रवासी लोगों को शरणार्थी शिविरों में 'बसाया' गया। लेकिन उन्होंने खुद को 'शरणार्थी' कहने से इनकार कर दिया (इसके बजाए, उन्होंने कहा कि वे 'पुरुषार्थी' थे)। अपने साहस और कड़ी मेहनत के बल पर, उन्होंने शिविरों को छोड़ दिया और जहां भी उन्होंने अपने पैर जमाए, खुद को पुनर्वासित कर लिया। मोहन, केंद्रीय पात्र, उस समय के आम सिंधी लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इस उपन्यास में मोटवानी ने विदेशी परिवेश में अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के लिए भारत में सिंधियों के संघर्ष का सजीव चित्रण किया है। इसे 1995 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

कला प्रकाश, का खीमन यू. मूलानी द्वारा दर्पण के सामने के रूप में हिंदी में अनुवादित अर्सी-ए-आडो (इनफ्रंट ऑफ मिरर, 1992) को सिंधी साहित्य में एक प्रतिष्ठित योगदान माना जाता है। यह एक ऐसे व्यक्ति की जीवन कहानी पर आधारित है, जो अपने सपनों को संजोने के लिए संघर्ष कर रहा है, जिसे वह अपने साथ एक विदेशी भूमि पर लाया है। इस उपन्यास में कला प्रकाश ने जीवन और मानव व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को सफलतापूर्वक प्रतिबिंबित किया है। इसने 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार जीता।

सिंधी साहित्य दुखद लेखन से समृद्ध है और इसका वर्गीकरण किया जा सकता था। लेकिन कभी-कभी हम काम की विशालता और गंभीरता के कारण असहाय महसूस करते हैं। हमने भारत में शिशुओं और बच्चों को भूख से मरते देखा है। हमने गरीबों को बिना किसी गलती के सूली पर चढ़ते देखा है। साहित्य की तुलना मजदूर की दुर्दशा, कदम-दर-कदम मरते बच्चे या बच्चे की मौत से नहीं की जा सकती। जीवन की कड़वी सच्चाइयों को ईमानदारी से चित्रित करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। आधी सदी के बाद भी विभाजन के घाव अभी भी पूरी तरह से ठीक नहीं हुए हैं। अभी भी कई दुखद उदाहरण हैं जो कुछ साहसी सिंधी लेखकों द्वारा कागज पर चित्रित किए जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भले ही कई सिंधी अपने वित्तीय चरम पर पहुंच गए हैं, लेकिन हमारे

पास उस चिंगारी की कमी है जो गुणवत्तापूर्ण लेखन के लिए लेखकों की कल्पना को प्रज्वलित करती है। सिंध में जहां विचारों की अभिव्यक्ति पर कई प्रतिबंध हैं, अमर जलील अपने ''सर्द लाश जो सफर'' में कंधकोट में हिंदू महिलाओं के बलात्कार और हत्या के लिए अपने साथी धार्मिक पुरुषों के बर्बर कृत्यों की निंदा करते हैं। पाकिस्तान से पलायन करने वाले सिंधी हिंदू लंबी अवधि के वीजा या नागरिकता के लिए दर-दर भटकते देखे जाते हैं। सिंधी केंद्रीय गृह मंत्री के कार्यकाल के दौरान ही उन्हें महज 24 घंटे के भीतर वापस जाने का नोटिस थमा दिया जाता है। तब भी सिंधी लेखकों की कलम खामोश रहती है: 'पेय जा परभात, सा माक मा पासो मारुहा!' रोई छुरी रात, दिसी दुखोयां खे।'' - शाह लतीफ़. (तड़के में, इसे सिर्फ ओस मत समझो, रात रोई है, दुखी आत्माओं को देखकर।)

हालाँकि सिंधी साहित्य ने विभाजन के कारण हुए दर्द और उथल-पुथल को व्यक्त करने में बहुमूल्य योगदान दिया है, लेकिन कुछ कमियाँ या कम प्रतिनिधित्व वाले पहलू हैं जिन पर शोध करना आवश्यक है। ऐसा ही एक अंतर विभाजन पर सिंधी साहित्य के भीतर अधिक विविध दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अक्सर, सिंधी समुदाय के हाशिए पर रहने वाले वर्गों, जैसे कि महिलाएं, बच्चे और निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों की कहानियां कम खोजी जाती हैं। विभाजन के दौरान उनके अनूठे अनुभव और संघर्ष साहित्यिक विमर्श में अधिक प्रमुख स्थान के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त, सिंधी समुदाय पर विभाजन के दीर्घकालिक सामाजिक-राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों की खोज में एक अंतर है। सिंधी साहित्य में अंतर-पीढ़ीगत आघात, पहचान संकट और विभाजन से उभरे प्रवासी भारतीयों के सामने आने वाली चुनौतियों को गहराई से समझने की क्षमता है। ये पहलू उपमहाद्वीप के विभाजन के कारण होने वाले स्थायी दर्द की अधिक व्यापक समझ प्रदान कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सिंधी साहित्य में समकालीन दृष्टिकोण और नई आवाज़ों को शामिल करने से इस अंतर को पाटने में मदद मिल सकती है। उभरते लेखकों और विद्वानों को अपने अनूठे सुविधाजनक बिंदुओं से विभाजन के दर्द का पता लगाने और चित्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना सिंधी साहित्यिक सिद्धांत के भीतर इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण क्षण के अधिक समग्र प्रतिनिधित्व में योगदान दे सकता है।

सन्दर्भ सूची:

1. Agarwal, Saaz. *सिंध, एक ग़ायब देश से कहानियाँ*. ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 2012.
2. Ajwani, L. H. *जय सदुबेल्ला–संक्षेप इतिहास 1818–1958*. बॉम्बे, 1962.
3. Ajwani, Lalsingh. *सिंधी साहित्य का इतिहास*. साहित्य अकादमी, न्यू दिल्ली, 1970.
4. Babani, Arun. ''रीता शाहानी के जीवन और समय की ऊर्जावादी दास्तान।'' *सिंधिशान*, कोलूम 10, अंक 4, अक्टूबर–दिसंबर 2011. https://sindhishaan.com/article/personalities/pers_10_04a.html
5. Bharadwaj Prakash. *सिंधी युग से*. वर्ल्ड वाइड पब्लिशिंग कंपनी, 1988.
6. Lalchandani, Trisha. ''परायापन, विस्थापन और घर मोहन कल्पना की 'जलावटनी' में।'' *दक्षिण एशिया: दक्षिण एशियाई अध्ययनों की पत्रिका*, कोलूम 39, अंक 4, 2016, पृष्ठ 805–819. doi:10.1080/00856401.2016.1230964.
7. Naeem, Raza. ''पुस्तक समीक्षा: 'शरम बूटी' की खोज, पाकिस्तान में गोबिंद माल्ही को पुनर्दर्शन करते हुए.'' https://www.outlookindia.com/culture-society/book-review-discovering-sharam-booti-rediscovering-gobind-malhi-in-pakistan-weekender_story-219360
8. ''विभाषा के दर्द, बहु–भाषाओं के साहित्य में देखा गया।'' *द वायर*, 15 अगस्त 2022. https://www.thewire.in/
9. https://www.sahapedia.org/the-post-partition-sindhi-short-story
10. https://in.1947partitionarchive.org/node/887

हिंदी सिनेमा में भारत विभाजन की त्रासदी का निरूपण

डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज *

सारांश– भारत देश की स्वाधीनता ने भारत समेत विश्व का भूगोल ही बदल दिया। देशवासियों को स्वतंत्रता की प्रसन्नता से कहीं अधिक दु:ख भारत विभाजन का था। इस बँटवारे में पाकिस्तान नामक एक नये देश का उदय अवश्य हुआ किंतु भारत की तरह ही इस नये देश के निवासियों को भी खुशी की बजाए रंज अधिक था। सभी को रंज था अपनी मातृभूमि से बिछड़ने का, अपनों से बिछड़ने का, अपने ही देश में पराये और बेघर हो चले लोगों की जीविका और जीवन की सुरक्षा का। भारत विभाजन को 'फूट डालो, शासन करो' नीति का चरम कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक शताब्दी के हो चुके भारत के हिंदी सिनेमा ने विभाजन की त्रासदी का निरूपण करते हुए उसकी राजनैतिक, धार्मिक, सांप्रदायिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक आदि पृष्ठभूमियों का संवेदनात्मक चित्र खींचते हुए विभाजन के दर्द, भयावहता, अत्याचार तथा आघात् को जीवंत करने का प्रयास किया है। विभाजन की त्रासदी ने बँटवारे के लगभग एक दशक बाद तक देश को प्रभावित किया। बँटवारे में मोटे तौर पर पाँच लाख लोग मारे गए तथा लगभग दो करोड़ से भी ज्यादा विस्थापित किए गए।

हिंदी सिनेमा का विश्लेषण किया जाए तो सन् 1949 में एम.एल.आनंद के निर्देशन में बनी फिल्म 'लाहौर', सन् 1960 में मनमोहन देसाई के निर्देशन में बनी 'छलिया', सन् 1961 में यश चौपड़ा के निर्देशन में बनी 'धर्मपुत्र', सन्

* सहायक प्राचार्य हिंदी, मारवाड़ी महाविद्यालय, दरभंगा, बिहार, (ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार)

1973 में एम.एस.सथ्यू के निर्देशन में बनी 'गरम हवा', सन् 1982 में रिचर्ड एटनबरो के निर्देशन में बनी 'गाँधी', सन् 1987 में गोविंद निहलानी के निर्देशन में बनी 'तमस', सन् 1993 में केतन मेहता निर्देशित 'सरदार', सन् 1998 में दीपा मेहता के निर्देशन में बनी '1947: अर्थ' तथा पामेला जुनेजा (रुक्स) के निर्देशन में बनी 'ट्रेन टू पाकिस्तान', सन् 1999 में मनोज पुंज के निर्देशन में बनी 'शहीद-ए-मुहब्बत: बूटा सिंह', सन् 2000 में कमल हसन के निर्देशन में बनी 'हे राम', सन् 2001 में अनिल शर्मा के निर्देशन में बनी 'गदर: एक प्रेमकथा', सन् 2003 में चंद्रप्रकाश द्विवेदी के निर्देशन में बनी 'पिंजर', सन् 2017 में श्रीजीत मुखर्जी के निर्देशन में बनी 'बेगम जान', सन् 2018 में अनुभव सिन्हा के निर्देशन में बनी 'मुल्क' आदि ऐसी फिल्में हैं जिनमें विभाजन का निर्धारण करने वाली रेडक्लिफ लाइन से उत्पन्न त्रासदी का निरूपण करते हुए कभी एक परिवार के लाहौर से दिल्ली की संघर्षपूर्ण यात्रा, एक बिनब्याही मुस्लिम माँ और उसके पुत्र की दर्दभरी कहानी, उत्तर भारत के मुस्लिम व्यापारियों एवं उनके परिवारों पर विभाजन का प्रभाव, विभाजन के दर्द के साथ मानवीय मूल्य, स्त्री अस्मिता, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख एकता, विभाजन से दु:खी गाँधीजी द्वारा मुस्लिमों के लिए अनशन तथा उनकी हत्या, विभाजन के पलायन के दौरान राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक दंगों का विस्तार सीमावर्ती क्षेत्रों समेत दिल्ली तक फैलना, इन दंगों को दबाने में सरदार वल्लभ भाई पटेल की भूमिका आदि विषयों को लेकर फिल्में बनाई जाती रही हैं। हिंदी फिल्मों में विभाजन की त्रासदी संबंधी उपरोक्त कथानकों को जीवंत कर निरूपित करने में सफलता प्राप्त की है जिसके अध्ययन विश्लेषण का प्रयास प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है।

प्रस्तावना- भारत विभाजन के लिए लार्ड माउण्टबेटन ने जो योजना तैयार की उसके अनुसार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अंतर्गत 15 अगस्त 1947 को भारत व पाकिस्तान अधिराज्य नामक दो स्वायत्त्योपनिवेश बनाकर 14 अगस्त को पाकिस्तान अधिराज्य तथा 15 अगस्त को संघ की संस्थापना करते हुए तत्कालीन बंगाल को पूर्वी पाकिस्तान बना दिया गया। इसी प्रकार तत्कालीन पंजाब को पश्चिमी पाकिस्तान बना दिया गया। 14-15 अगस्त सन् 1947 की अर्द्धरात्रि को पहले पाकिस्तान का निर्माण हुआ और फिर भारत को स्वायत्त घोषित कर दिया गया और लंदन के वकील सर सिरिल रैडक्लिफ ने सीमारेखा खींचकर

रेड-क्लिफ-लाइन से दो देशों का निर्धारण किया। इस अधिनियम में ऐसे प्रावधान थे जिनसे भारत की 565 रियासतें भारत या पाकिस्तान दोनों में से अपनी इच्छानुसार किसी भी राष्ट्र के साथ जाकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता और प्रभुता बनाये रख सकती थीं। ऐसे प्रावधानों का एकमात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष लक्ष्य शायद यही था कि दोनों ही देशों में विभाजन को लेकर कोई एक राय नहीं बने और स्वतंत्रता, प्रगति, शांति आदि स्वप्न ही रह जाएँ लेकिन इस मंशा के विपरीत भारत की अधिकांश रियासतों ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए भारत के साथ रहने की सहमति दे दी। तथापि हैदराबाद, भोपाल, त्रावणकोर, जूनागढ़ और कश्मीर रियासतों ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया, इनमें से कुछ ने तो स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

'लड़ के लेंगे पाकिस्तान, मर के लेंगे पाकिस्तान' जैसे नारों से बनाई गई विभाजन की मानसिक रेखा धरातल पर पाकिस्तान और भारत की सीमाओं पर बनाई गई। इस रेड-क्लिफ सीमा-रेखा से सटे हिस्सों में पाकिस्तान की ओर से हिंदुओं और सिक्खों को बेदखल करके भगाया जाने लगा जिसके कारण भारतीय सीमा में भी 'मुसलमानों पाकिस्तान जाओ' के नारे गूँजने लगे। जल्दी ही ये नारे धार्मिक दंगों में बदल गए और प्रेम-सद्भावना-अहिंसा के देश में घृणा-दुर्भावना-हिंसा के षड्यंत्र सामने आने लगे। वतन सांप्रदायिकता के उन्माद की आग में जलने लगे। लोगों के राष्ट्र के साथ-साथ उनके मन भी बँट गए, लोग अपनी मातृभूमि से अलग कर दिए गए, रौंद दिए गए, जिससे बड़ी संख्या में दोनों ही देशों से लोगों का पलायन हुआ। इस पलायन में लगभग पाँच लाख लोगों की मृत्यु तथा दो करोड़ लोग विस्थापित हुए बताए जाते हैं। यदि पलायन के पूर्व और बाद में होने वाले दंगों की मृत्यु और प्रभावितों को भी इसमें शामिल कर दिया जाए तो यइ संख्या लगभग दो से तीन गुना ज्यादा हो सकती है। इस विभाजन और विस्थापन के दंश की टीस और दर्द आज स्वतंत्रता के वर्षों बाद भी लोगों के मानस पर लकीरों के रूप में उभर आते हैं। भारत विभाजन की परिस्थितियों और उसके प्रभाव से हुए दंगों, लूटपाट, आगजनी, अपहरण, बलात्कार, जानोमाल का नुकसान को लेकर कई साहित्यकारों द्वारा साहित्य रचनाएँ की गईं। साहित्य की विधाओं कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, रिपोतार्ज, संस्मरण, पत्र साहित्य, आलोचना, सिनेमा आदि विधाओं में विभाजन की त्रासदी को प्रस्तुत करने के कई प्रयास हुए हैं, जिनमें के.एस.दुग्गल का काव्य संग्रह 'बंद दरवाजा',

भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस', यशपाल का 'झूठासच', अमृता प्रीतम का 'पिंजर', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', खुशवंत सिंह का 'ट्रेन टू पाकिस्तान', सलमान रुश्दी का 'मिडनाइट्स चिल्ड्रन', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' मंजूरे एहतेशाम का 'सूखा बरगद', असगर वजाहत का नाटक 'जिन लाहौर नहीं वेख्या वो जन्माइ नई', सआदत हसन मंटो की कहानियाँ 'ठंडा गोश्त', 'टोबा टेकसिंह', 'खोल दो', 'डॉग ऑफ टिटवाल', कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया', कृष्ण चंदर की 'पेशावर एक्सप्रेस', अज्ञेय की कहानी 'शरणदाता', मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' आदि का नाम लिया जा सकता है। विभाजन की विभीषिका के दर्द को केन्द्र में रखते हुए इससे प्रभावित देशों भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, ब्रिटेन समेत अन्य कई देशों में सिनेमा का निर्माण भी किया गया। इन फिल्मों में सआदत हसन मंटो द्वारा लिखित तथा मसूद परवेज़ द्वारा निर्देशित पाकिस्तानी फिल्म 'बेली'(1950), सैफ़ुद्दीन सैफ़ द्वारा निर्देशित तथा अलाउद्दीन, मुसर्रअत नाज़िर और सुधीर द्वारा अभिनीत पाकिस्तानी फिल्म 'करतार सिंह' (1959), पाकिस्तानी निर्देशक रज़ा मीर द्वारा निर्देशित फिल्म 'लाखों में एक' (1967), सबिहा सुमर द्वारा निर्देशित एवं किरण खेर अभिनीत पाकिस्तानी फिल्म 'खामोश पानी' (2003), रिचर्ड एटनबरो द्वारा निर्देशित 'गाँधी' (1982), केनेडियन निर्देशक विक श्रीन द्वारा निर्देशित फिल्म 'पार्टीशन' (2007), गुरिंदर चड्ढा निर्देशित फिल्म 'वॉयसराय हाउस' (2017) अपने-अपने देशों में प्रसिद्ध रही हैं। भारत में नेमि घोष की बांग्ला फिल्म 'छिन्नमूल' (1950), अर्जुन हिंगोरानी तथा दीपक आशा की सिंधी भाषा में बनी फिल्म 'अबाणा' (1958), मनोज पुन्ज द्वारा निर्देशित तथा गुरुदास मान, दिव्या दत्ता, रघुवीर यादव द्वारा अभिनीत पंजाबी फिल्म 'शहीद-ए-मुहब्बत बूटा सिंह' (1999) और अनूप सिंह द्वारा निर्देशित तथा इरफ़ान खान, टिस्का चोपड़ा, तिलोत्मा सोम द्वारा अभिनीत फिल्म 'क़िस्सा' (2013) जैसी फिल्मों के रूप में क्षेत्रीय सिनेमा के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर के सिनेमा में भी विभाजन को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करने के सफल प्रयास किए गए हैं। जिनका प्रारंभ सन् 1949 में एम.एल.आनंद के निर्देशन में बनी फिल्म 'लाहौर' से ही हो गया था। इसके बाद 'छलिया', 'धर्मपुत्र', 'गरम हवा', 'गाँधी', 'तमस', 'सरदार', '1947: अर्थ', 'ट्रेन टू पाकिस्तान', 'हे राम', 'गदर: एक प्रेमकथा', 'पिंजर', 'बेगम जान' आदि प्रसिद्ध फिल्में हैं। कहना न होगा कि हिंदी सिनेमा विभाजन की त्रासदी को विभिन्न दृष्टियों एवं

दृष्टिकोणों से उभारकर दर्शकों के सामने लाने का प्रयास निरंतर करता रहा है।

उपलब्ध साहित्य– हिंदी फिल्म समीक्षाएँ (ऑनलाइन/ऑफलाइन)–'लाहौर' (एम.एल. आनंद, 1949), 'छलिया' (मनमोहन देसाई, 1960), 'धर्मपुत्र' (यश चोपड़ा, 1961), 'गरम हवा' (एम.एस. सथ्यू, 1973), 'तमस' (गोविंद निहलानी, 1987), 'सरदार' (केतन मेहता, 1993), 'मम्मो' (श्याम बेनेगल, 1994), '1947: अर्थ' (दीपा मेहता 1998), 'ट्रेन टू पाकिस्तान' (पामेला जुनेजा रुक्स, 1998) 'हे राम' (मल हसन, 2000) 'गदर: एक प्रेम कथा' (अनिल शर्मा, 2001), 'पिंजर' (चन्द्र प्रकाश द्विवेदी, 2003), 'बेगम जान' (श्रीजीत मुखर्जी, 2017), 'पार्टीशन 1947' (गुरिंदर चड्ढा, 2017), 'मुल्क' (अनुभव सिन्हा, 2018), समाचार पत्र– नई दुनिया, पंजाब केसरी, सिनेमा आधारित आलोचनात्मक ग्रंथ, संदर्भित फिल्मों के लिंक आदि।

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोधपत्र लेखन के लिए तथ्याख्यानपरक विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को आधार बनाया गया है।

कुंजी शब्द– 'रेड–क्लिफ–लाइन', 'शरणार्थी', विस्थापन, नरसंहार, सिनेमाई।

विमर्श–भारत से जाते–जाते अंग्रेजों ने विभाजनकारी 'फूट डालो, शासन करो' नीति के बरक्स इस नीति के अनुसार अंग्रेजों ने जहाँ भारत के दो बड़े स्वाधीनता आंदोलनकारियों पंडित जवाहरलाल नेहरू और मोहम्मद अली जिन्ना को अपने आश्रित कर लिया वहीं दो राष्ट्रों के निर्माण का स्वप्न दिखाकर दोनों को प्रधानमंत्री पद के लिए महत्त्वाकांक्षी बना दिया। फलस्वरूप भारत विभाजन हुआ और देश के तीन टुकड़े कर दिए गए। जिन सेनानियों ने स्वाधीनता आंदोलन के समय अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए थे अब वे या तो देश विभाजन का मातम मनाते हुए बचे हुए को सहेजने में प्रयासरत् थे या फिर सद्भावना की नींव हिल जाने से उत्पन्न सांप्रदायिकता के दंगों और कत्लेआम से प्रभावितों की समस्याओं के समाधान में लगे थे। विभाजन की अग्नि में पंजाब, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, राजस्थान, गुजरात, असम, त्रिपुरा, मेघालय, बंगाल आदि होम हो रहे थे। इन दंगों ने हिंदू–मुस्लिम एकता को भेदकर रख दिया और देश में गृहयुद्ध जैसे हालात उत्पन्न हो गए। पंजाब केसरी में 11 अगस्त से 15 अगस्त 1947 के बीच दंगों के हालात पर आधारित एक लेख में बताया गया है कि ''15 अगस्त, 1947 को लाहौर में और पूरे पश्चिम पंजाब व सीमा प्रांत में हिन्दू–सिक्ख इलाके और

उनके घर धू-धू कर जल रहे थे। हजारों-लाखों के काफिले छोटा-मोटा सामान लेकर छोटे बच्चों को उठाए, महिलाओं को बीच में रखकर बड़े-बूढ़ों को संभालते हुए भारत की ओर आ रहे थे। स्थान-स्थान पर लूटपाट, अपहरण व हत्याएँ हो रही थीं। रेलगाड़ियाँ चल तो रही थीं परन्तु भीड़ इतनी अधिक थी कि लोग रेलगाडियों की छतों पर बाल-बच्चों समेत बैठने को मजबूर थे। छतों पर बैठे कितने ही पटरियों के पास बैठे पाकिस्तानी दरिंदों की गोलियों के शिकार होते रहे।''[1]

इस संदर्भ में एम.एल. आनंद द्वारा निर्देशित तथा नरगिस दत्त, करन दीवान द्वारा अभिनीत फिल्म 'लाहौर' (1949) में प्रथम बार विभाजन के संताप को दिखाया गया। इस फिल्म में विभाजन का दंश झेल रहे लोगों की पीड़ा को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। कहानी का नायक चमन और लीलो पड़ोसी हैं जो कॉलेज में साथ पढ़ते हैं तथा एक-दूसरे से प्रेम भी करते हैं। चमन छात्रवृत्ति पर शिक्षा के लिए मुंबई चला जाता है इसी बीच लीलो का विवाह तय हो जाता है जिसके कारण वह पुनः लाहौर आता है और भारत-विभाजन के दंगे भड़क जाते है जिसके चलते चमन अपनी माँ के साथ भारत में अमृतसर में बनाए गए शरणार्थी शिविर पहुँचता है तथा लीलो की तलाश करता है। उसे लीलो की माँ मिल जाती है जिससे चमन को ज्ञात होता है कि लीलो तो लाहौर में ही छूट गई है। लाहौर में लीलो के घर पर एक मुस्लिम व्यक्ति ने कब्जा कर रखा है। जिसकी माँ लीलो को लैला कहते हुए उसके साथ नौकरानी की तरह बर्ताव तथा अत्याचार होता है। इस फिल्म में लीलो, राधा और सलमा क्रमशः दो हिंदू और एक मुस्लिम युवती हैं जिनके साथ विभाजन के दौरान होने वाली घटनाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है जो अपने परिवारों से बिछड़ जाती हैं। इस फिल्म में विभाजन से उपजी परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में दिखलाने का प्रयास किया गया है।

मनमोहन देसाई द्वारा निर्देशित तथा राज कपूर, नूतन, प्राण और रहमान द्वारा अभिनीत फिल्म 'छलिया' (1960) रूसी उपन्यासकार फ्योदोर दोस्तोयेवस्की की एक कहानी पर आधारित है जिसमें विभाजन के कारण लाहौर से दिल्ली आने वाले एक परिवार की यात्रा तथा उसके जीवन के संघर्षों की गाथा सुनाई गई है। जिसमें विभाजन के दौर में छोड़ दी गई पत्नियों के दुःख का चित्रण किया गया है साथ ही इस फिल्म में विभाजन की भयावहता के बीच पल रहे

स्वप्न को देखने तथा उसे साकार करने का जज्बा दिखाई देता है। जिसमें भूले हुए अतीत की बजाए उसकी पीड़ा के उपचार तथा उसे भूलकर जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास पर आधारित यश चोपड़ा निर्देशित तथा अशोक कुमार, शशि कपूर, रहमान, माला सिन्हा और मनमोहन कृष्णा अभिनीत फिल्म 'धर्मपुत्र' (1961) में विभाजन की पृष्ठभूमि के बीच धार्मिक कट्टरता तथा सांप्रदायिकता के मुद्दों को समाने लाती है। जिसमें दिल्ली के बदरुद्दीन तथा गुलशन राय दो परिवारों की कहानी बताई गई है। जिसमें विरोध प्रदर्शन के दौरान नवाब की हत्या हो जाती है। विभाजन के कुछ वर्ष बीत जाने पर हुस्न बानो और जावेद के वापस लौटने पर राय परिवार द्वारा उनका उचित सत्कार किया जाता है। यहाँ उनकी मुलाकात दिलीप के उस रूप से होती है जो अब फासीवादी बन गया है तथा उसके मन में मुस्लिमों के प्रति घृणा का भाव घर कर गया है जिसके कारण वह मुसलमानों को भारत से निकालने के लिए चरमपंथियों का साथ देता है। इस प्रकार यह फिल्म आजादी के पूर्व तथा पश्चात् की परिस्थितियों एवं परिवर्तनों के कुचक्र में फँसी अविवाहिता माँ एवं उसके पुत्र की करुण कथा सुनाती है। समय के मारे मनुष्य पर बीतती त्रासदियों से उलझे मन का सूक्ष्म विश्लेषण करती यह फिल्म मनुष्यों में अराजकता तथा हिंसा के रूप में आने वाले अमानुषिक परिवर्तनों के साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

''विभाजन के नकारात्मक परिणाम स्पष्ट हैं। इसका पहला नकारात्मक परिणाम यही हुआ कि लाखों की संख्या में मनुष्यों की हत्याएँ हुईं। विभाजन के शिकार एक करोड़ साठ लाख मनुष्य हुए तो अपने ही घरों से बेघर हो गए। उनमें से लगभग 15 लाख तो उसी में जन्मी हिंसा में ही मारे गये। जो हताशा, दुःख और पीड़ा में डूब गये, उनकी कोई गिनती नहीं। पूर्वी पाकिस्तान के एक करोड़, 20 लाख हिंदू दूसरे दर्जे के नागरिक बन गए। भारत में रह गए साढ़े चार करोड़ मुसलमान भी दूसरे दर्जे के नागरिक बने और हमेशा के लिए असुरक्षा से ग्रसित हो गए। विभाजन का सबसे अधिक मूल्य इन्हें और भारतीय इस्लाम को चुकाना पड़ा। विभाजन का दूसरा नकारात्मक परिणाम यह था कि विभाजन ने किसी भी समस्या को अंतिम रूप से हल नहीं किया। पाकिस्तान बनाने का उद्देश्य यही था कि हिंदू-मुसलमान की समस्या का अंत हो जाए। समस्त मुसलमानों को उनकी पहचान और स्वतंत्र देश मिले। क्या यह हो पाया? दुभाग्यपूर्ण है कि आज

भी भारत और पाकिस्तान दोनों की यही सबसे बड़ी आंतरिक समस्या है।....क्या लाभ हुआ विभाजन का ? क्या इसीलिए विभाजन हुआ था ?.....विभाजन में जनता पर सबकुछ 'थोपा' हुआ था। उनकी सहमति-स्वीकृति या भावनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया गया।''[2]

इस्मत चुग़ताई की एक अप्रकाशित लघु कहानी पर आधारित कथानक को लेकर कैफी आजमी और शमा जैदी द्वारा लिखित, एम.एस. सथ्यू द्वारा निर्देशित तथा बलराज साहनी, फारुख शेख, गीता सिद्धार्थ, बदर बेगम, दीनानाथ जुत्सी, शौकत आज़मी, जलाल आगा और ए.के. हंगल द्वारा अभिनीत फिल्म 'गरम हवा' (1973) में गाँधीजी की हत्या के बाद विभाजित भारत में आगरा के एक मुस्लिम जूता व्यापारी सलीम मिर्जा के परिवार पर किए गए अत्याचार, ज्यादती और प्रताड़ना का चित्रण किया गया है जो विभाजन के समय अन्य मुसलमानों के पाकिस्तान चले जाने पर भी अपने छोटे बेटे सिकंदर के साथ भारत में ही रहने का निर्णय लेता है। विभाजन से फैले दंगों, अराजकता एवं लूटपाट के कारण सलीम मिर्जा के परिवार के अन्य लोग बाद में पाकिस्तान चले जाते हैं लेकिन सलीम मिर्जा अभी भी भारत में ही रहना चाहता है। सलीम की बेटी अमीना अविभाजित भारत में कासिम नाम के एक युवक से प्रेम करती है लेकिन उसके परिवार के पाकिस्तान चले जाने पर वह प्रेमी से बिछड़ जाती है। पुनः जब वह एक शमशाद नामक युवक में अपने प्रेम की पूर्णता खोजती है तो वह भी विभाजन के कारण पाकिस्तान चला जाता है। इस प्रकार सलीम की बेटी अमीना की अधूरी प्रेम कथा इस बात का साक्ष्य देती है कि विभाजन के समय कितने ही प्रेमी बिछड़ गए, और अंत तक मिल नहीं पाए। ''गर्म हवा'' में सथ्यु एक ऐसा पात्र उठाते हैं जो इस विश्वास में जी रहा है कि इस देश का विभाजन संभव ही नहीं है। किस प्रकार पूरे समाज तथा राजनीति की गलत सोच किसी एक व्यक्ति की सही सोच पर हावी हो जाती है तथा यह समाज अपनी गलतियों से कुछ सीखने की बजाए उस व्यक्ति के अस्तित्व को ही नष्ट करने पर तुल जाता है, 'गर्म हवा' इस मनोवृत्ति के रेशे उघाड़कर दिखाने वाली एक सशक्त रचना है।''[3]

विभाजन की त्रासदी से घुट रहे सलीम मिर्जा के माध्यम से परिवार की पीड़ा का विचलित कर देने वाला चित्रण निर्देशक ने किया है। 'गरम हवा' को सन् 1974 में राष्ट्रीय एकता पर बनी सर्वश्रेष्ठ फिल्म के राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। फिल्म निर्देशक एम.एस. सथ्यू अमर उजाला नामक

समाचार पत्र के एक साक्षात्कार में फिल्म 'गरम हवा' के निर्माण की पृष्ठभूमि पर बात करते हुए बताते हैं कि उनकी दृष्टि में ''देश के बँटवारे के दौरान कुछ ऐतिहासिक गलतियाँ हुई थीं, जो तत्काल नजर नहीं आई थीं। बँटवारे ने लाखों-करोड़ों लोगों को तकलीफ पहुँचाई थी। कुछ नेताओं की वजह से और कुछ सरमायेदारों की वजह से देश का विभाजन हुआ था। हमने इस देश के साथ हुई ऐतिहासिक घटना को अपनी फिल्म में एक परिवार की त्रासदी के बहाने दिखाया है। हमने विभाजन का माहौल नहीं दिखाया, बल्कि हमारी कहानी में आगरा में रहने वाला एक भाई हिंदुस्तान में रह जाना चाहता है और दूसरा पाकिस्तान जाना चाहता है। गरम हवा एक मानवीय कहानी है, जो बताती है कि बँटवारे का आम इंसान पर क्या असर हुआ? गरम हवा को बने 40 साल से ज्यादा हो चुके हैं और आज भी यह फिल्म प्रासंगिक है। सांप्रदायिक-सामाजिक स्थितियाँ और लोगों की सोच इतने बरसों में भी बहुत नहीं बदली है।''[4]

महात्मा गाँधी के जीवनवृत्त पर आधारित तथा रिचर्ड एटनबरो द्वारा निर्देशित तथा बेन किंगस्ले अभिनीत अंग्रेजी से हिंदी डब्ड फिल्म 'गाँधी' (1982) में संक्षिप्त रूप में ही सही पर विभाजन की त्रासदी का निरूपण किया गया है। यह बात सत्य है कि महात्मा गाँधी के मन में मुस्लिम कौम के प्रति सॉफ्ट-कॉर्नर था जिसके कारण विभाजन से वे अत्यधिक आहत हुए तथा उनकी सुरक्षा, इंतजाम तथा आर्थिक स्थिति को लेकर चिंतित हो गए। कदाचित् यही कारण है कि महात्मा गाँधी ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाने हेतु अथक परिश्रम किया। उनका यही प्रयास उनकी हत्या के प्रमुख करणों में से एक भी माना गया है। विभाजन की त्रासदी पर लिखे गए भीष्म साहनी के साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित उपन्यास 'तमस' पर केन्द्रित गोविंद निहलानी द्वारा सन् 1987 में निर्देशित तथा ओम पुरी, अमरीश पुरी, दीपा शाही, भीष्म साहनी, दीना पाठक, मनोहर सिंह, वीरेन्द्र सक्सेना, ए.के. हंगल, सईद जाफरी, उत्तरा बाओकर, इफ्तखार, के.के. रैना, बेरी जश्न, हरीष पटेल द्वारा अभिनीत इसी नाम से बनाई गई फिल्म 'तमस' को टेलीविजन शृंखला के रूप में प्रसारित किया गया। पंजाबी पृष्ठभूमि की यह फिल्म 'तमस' विभाजन के पीछे छिपे राजनीतिक षड्यंत्रों की कलई खोलकर सामने रख देती है।

महत्त्वाकांक्षाओं को सांप्रदायिक रूप देकर महाविनाश की जो पटकथा कुछ महत्त्वाकांक्षी नेताओं द्वारा लिख दी गई उसे इस फिल्म में भलिभाँति देखा जा

सकता है।''तमस' का व्यंग्य और विडंबना अधिक गहरी है क्योंकि देश विभाजन की इस त्रासदी के लिए एक समाचार स्वयं को दोषी महसूस करता है। 'तमस' सीरियल जब टेलीविजन पर दिखाया जा रहा था तब कट्टरपंथी हिंदू संगठनों तथा मुस्लिम संगठनों ने तो अपना गुस्सा जाहिर किया।.....प्रतिबंध लगा देने की माँग को लेकर प्रदर्शन किये गये। इन सभी को इस 'तमस' में अपना अक्स दिखायी दिया। मानों इन सभी ने एक स्वर में यह कहा कि जिस महान् घटना के लिए कांग्रेस, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, मुस्लिम लीग तथा अंग्रेज सभी जिम्मेदार थे उसका श्रेय एक मामूली नाथू चमार कैसे ले सकता है? 'तमस' में नाथू समझता है कि इन दंगों की शुरूआत उसके द्वारा मारे गये सूअर को मस्जिद के सामने रख देने से हुई है वह अपने इस पाप का प्रायश्चित प्राण देकर करता है।''[5]

इस महाविनाश के संदर्भ में रघुवेन्द्र तंवर अपनी पुस्तक 'भारत विभाजन की कहानी' में लिखते हैं- ''भारत विभाजन की भयावहता ने विशेषकर पंजाब में, आमजनों, छोटे किसानों, छोटे व्यापारियों, दुकानदारों और पुश्तैनी व्यवसाय में लगे लोगों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। समाज के बहुत बड़े भाग को कुछ पता नहीं था कि क्या हो रहा था और क्यों हो रहा था। अनभिज्ञ, भाग्यवादी और अंधविश्वास से ग्रस्त, उन्हें अपने घरों में शीघ्र ही अवांछित व्यक्ति बना दिया गया था। बड़े पैमाने पर इस आबादी को इधर-से-उधर किया गया और उसे यह भी नहीं पता कि हासिल क्या होना है। ब्रिटिश शासन से आजादी के परिणामस्वरूप हुआ भारत का विभाजन अभूतपूर्व अराजकता, लाखों परिवारों के मजबूरन पलायन, बर्बर, सांप्रदायिक हिंसा, मृत्यु और विनाश की कहानी है।''[6] इसी भयावहता की सिनेमाई प्रस्तुति करती 'तमस' सन् 1988 में राष्ट्रीय एकता पर बनी फिल्म के लिए निर्धारित सर्वश्रेष्ठ फिल्म के नरगिस दत्त पुरस्कार की विजेता भी रही।

इस फिल्म में पाकिस्तान के दंगों में फँसे हिन्दू-सिख परिवारों की पीड़ा से पाठकों को रू-ब-रू कराने का सफल प्रयास निर्देशक ने किया है। फ़िल्म में झूठ बोलकर नत्थू द्वारा सुअर को मरवाकर मस्जिद में फेंक दिए जाने की घटना को साम्प्रदायिक दंगे में बदलते हुए साफ-साफ देखा जा सकता है। इस घटना के कारण बख्शी जी जैसे नेता को भी पत्थरों से मारा जाता है। फिल्म यह संदेश देती है कि कैसे कुछ स्वार्थी नेता और शासक अपने स्वार्थ सिद्धि के निमित्त आम आदमी का शोषण करते हैं? और जनता ऐसी दुर्दशा का ज़िम्मेदार

स्वयं को ही मान लेती है। फिल्म में पाकिस्तान में मुसलमान बहुल क्षेत्र में रह रहे हिन्दू और सिक्खों पर अत्याचार किया जाता है जिसके कारण वे भारत में शरण लेना चाहते हैं। शरणार्थी शिविर में एक बच्चे के जन्म पर 'अल्ला हू अकबर' तो दूसरे बच्चे के जन्म पर 'हर हर महादेव' का नारा सुनाई देता है। ''मशहूर फिल्मकार गोबिंद निहलानी के निर्देशन में बनी इस फिल्म में दिखाया गया है कि देश विभाजन के दौरान किसी तरह से कुछ तथाकथित लोग दंगों को भड़काते हैं।''[17] इस उपन्यास का कथानक विभाजन के प्रारंभिक 5 दिनों पर आधारित है लेकिन इतने ही समय में निर्देशक ने विभाजन की त्रासदी के दर्द की सिनेमाई अभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

केतन मेहता द्वारा निर्देशित तथा परेश रावल, अन्नू कपूर, वेन्जामिन गिलानी, सुहासिनी मुले, रघुवीर यादव, गोविन्द नामदेव, श्री बल्लभ व्यास, एम के रैना अभिनीत फिल्म 'सरदार' (1993) अखण्ड भारत के स्वप्नदृष्टा लौहपुरुष महान् स्वतन्त्रता सेनानी सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन पर केन्द्रित है। ''इस फिल्म में बँटवारे के बाद रियासतों को भारत में जोड़ने की प्रकिया को फिल्माया गया है। फिल्म में स्वतंत्रता आंदोलन के लिए उनके संघर्ष और गांधी-नेहरू के साथ उनके संवाद को भी दिखाया गया है। सरदार पटेल पर बनी यह एकमात्र फिल्म है।''[18] इस प्रकार यह फिल्म विभाजन की त्रासदी के फलस्वरूप स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर देने वाली रियासतों के भारत में विलय, विभाजन से उत्पन्न दिल्ली एवं रेड-क्लिफ लाइन के सीमावर्ती क्षेत्रों में दंगों, तनाव और संघर्षों को शांत रखने में सरदार पटेल की भूमिका को केन्द्र में रखा गया है।

श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्म 'मम्मो' (1994) एक किशोरावस्था के बालक रियाज़ के जीवन की संक्षिप्त कहानी है जिसमें वह अपनी दादी फ़ैयाज़ी के साथ रहता है। एकबार उसकी दादी की बहन महमूदा बेगम अनवर अली जिन्हें सब 'मम्मो' कहते हैं, वे रियाज़ के घर आती हैं। विभाजन के दौरान मम्मो का परिवार अन्य मुसलमानों की तरह पाकिस्तान चला गया। पति की मृत्यु के बाद मम्मो को उसके ससुराल वालों द्वारा घर से निकाल दिया जाता है जिसके कारण वह अस्थायी वीजा पर मुंबई में रहने वाली अपनी विधवा बहन के पास रहने के लिए आ जाती है। मम्मो स्वभाव से तेल, मनमौजी, मनोविनोदी और जिंदादिल है। रियाज़ शुरू-शुरू में मम्मो को स्वीकार नहीं करता पर बाद में मम्मो का स्वभाव उसे अपनी ओर खींच लेता है। इस फिल्म में भारत विभाजन

के समय परिवारों के बीच होने वाले तनावों का स्त्री जाति पर होने वाले प्रभाव को बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार विभाजन ने दोनों देशों की महिलाओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया था।

वापसी सिधवा के उपन्यास 'आइस कैण्डी मैन' पर आधारित दीपा मेहता द्वारा निर्देशित तथा आमिर खान, नन्दिता दास, राहुल खन्ना, शबाना आज़मी अभिनीत फिल्म '1947: अर्थ' (1998) में विभाजन के दर्द को मानवीय मूल्यबोध के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। यह कहानी सन् 1947 के भारत-विभाजन से ठीक पहले और उसके दौरान लाहौर को केन्द्र में रखकर बनाई गई है। इसमें हिंदू-सिक्ख-मुसलमान मित्र दंगों के समय तटस्थ रहने का पूरा प्रयास करते हैं। शांता एक पोलियोग्रस्त बच्ची की आया है। दिनवाल और हसन नाम के उसके दो पुरुष मित्र उसे प्रेम भी करते हैं। इनकी मित्रता में विभाजन के दंगों के प्रति वैचारिक भिन्नता के कारण वैमनस्यता घर कर लेती है और ये त्रासदी का शिकार हो जाते हैं। इस प्रकार फिल्म के कथानक में मार्मिक घटनाएँ एक-दूसरे के मित्र पात्रों को शत्रुतापूर्ण कृत्य हेतु बाध्य कर देती हैं। खुशवन्त सिंह के उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' पर आधारित पामेला जुनेजा (रुक्स) द्वारा निर्देशित तथा निर्मल पाण्डेय, रजित कपूर, मोहन अगाशे, स्मृति मिश्रा, दिव्या दत्ता, मंगल ढिल्लो द्वारा अभिनीत फिल्म 'ट्रेन टू पाकिस्तान' (1998) में विभाजनोपरांत गाँव की पीड़ा को उजागर किया गया है।

''पंजाबी पृष्ठभूमि पर बनी 'ट्रेन टू पाकिस्तान' में भी भारत विभाजन की तस्वीर को पर्दे पर उतारा गया है। कहा जाता है कि यह उपन्यास विभाजन के दौरान रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुए दंगों और वहां से ट्रेनों में भर अमृतसर भेजी गई लाशों को केंद्रित कर लिखा गया था। इस फिल्म में भी विभाजन के दंश के साथ-साथ एक जुलाहे की लड़की और सिख युवक की प्रेम कहानी दिखाई गई है।'[9] जिस गाँव में पहले हिंदू-सिक्ख और मुसलमान भाईचारे की भावना से रहा करते थे विभाजन के बाद वे एक-दूसरे के खून से अपनी प्यास बुझाना चाहते हैं। फिल्म 'ट्रेन टू पाकिस्तान' की कहानी भारत और पाकिस्तान की सीमा पर स्थित काल्पनिक गाँव मनो-माजरा पर केंद्रित है। इस गाँव की अधिकांश भूमियों के स्वामी सिक्ख हैं जिनके यहाँ मुसलमान मजदूरी करके अपना जीवनयापन करते हैं। ये दोनों ही कौमें कई वर्षों से प्रेम-भाव के साथ मिलजुलकर रहती आई हैं लेकिन जैसे ही देश के बँटवारे की खबर इस गाँव

तक पहुँचती है, ऐसा सांप्रदायिक बवंडर उठता है कि समूचे गाँव में तबाही मच जाती है। पाकिस्तान की ओर से रेल में भरकर जब हिंदू-सिक्ख समुदाय के वृद्धों महिलाओं एवं बच्चों के लोगों के शव भारतीय सीमा में पहुँचते हैं तो वह मंजर कँपा देने वाला होता है।

विभाजन के फलस्वरूप निर्मित पाकिस्तान को दी जाने वाले धनराशि को लेकर गाँधीजी ने अनशन शुरू कर दिया जिसे समाप्त करने के लिए भारत ने दयनीय आर्थिक स्थिति के बावजूद पाकिस्तान को पूर्व निर्धारित 55 करोड़ की राशि दी, लेकिन असंतुष्ट पाकिस्तानी सरकार ने संपत्ति के बँटवारे की प्रकिया पूर्ण होने से पहले ही 22 अक्टूबर सन् 1947 को भारत के कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया, इन परिस्थितियों का जिम्मेदार गाँधीजी को मानते हुए उनकी हत्या कर दी गई। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि स्वतंत्रता की घोषणा पहले जबकि विभाजन की घोषणा बाद में की गई जिसके पीछे का मुख्य कारण ब्रिटिश शासन की विभाजन नीति और दूरदर्शिता का अभाव माना जा सकता है। विभाजन में इतनी बड़ी संख्या में जनता का विस्थापन और नरसंहार होगा इसकी कल्पना संभवत: किसी ने नहीं की होगी। दोनों ही देशों में धर्म के आधार पर लोगों को बेघर कर दिया गया। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार सात लाख से भी अधिक मुसलमानों ने भारत छोड़ दिया तथा लगभग इतनी ही संख्या में पाकिस्तान को छोड़कर हिंदू-सिक्ख भारत में चले आए। ब्रिटेन द्वारा अपने सामरिक एवं राजनैतिक हितों को साधने के लिए आयरलैंड, फिलिस्तीन और साइप्रस जैसे उपनिवेशों के जो चार विभाजन कराए गए उनमें भारत विभाजन सर्वाधिक हिंसक और विनाशकारी माना जाता है। बड़े पैमाने पर हो रहे खून-ख़राबे के उसी माहौल में आजादी के सूरज का उदय हुआ। इसी दु:खद माहौल में हिंदुस्तान की कोख से नये देश ''पाकिस्तान'' का जन्म हुआ था।''[10]

इस संदर्भ में कमल हसन द्वारा निर्देशित फिल्म 'हे राम' (2000) में महात्मा गाँधी की हत्या के तानेबाने में छिपे विभाजन के दर्द को सामने लाने का प्रयास किया है। यह फिल्म अतीत के दृश्यों को याद करके फिल्माई गई है जिसके कथानक का मरणासन्न पात्र राम सन् 1946 के उन दृश्यों को याद करता है जब तथा उनका मित्र अमजद अपनी युवावस्था में विभाजन और पाकिस्तान के अस्तित्व को नकार देते हैं। घटनाक्रम में उसकी पत्नी के साथ मुसलमानों के एक समूह द्वारा बलात्कार एवं हत्या कर उसपर हमला किया जाता है। दु:खी होकर भटकते

समय उसकी मुलाकात तंजावुर के मराठी श्रीराम अभ्यंकर से होती है जो इन दंगों का वास्तविक जिम्मेदार गाँधीजी को बताते हुए गाँधी की हत्या की साजिश रचने वाले समूह का सदस्य होता है घृणा में अंधा राम इस योजना में सम्मिलित हो दिल्ली के एक होटल में हत्या को अंजाम देने के लिए रुकता है। परिस्थितिवश राम की मुलाकात गाँधीजी से होती है जिसे वे पाकिस्तान की यात्रा पर आमंत्रित करते हैं राम का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह गाँधीजी की हत्या नहीं करने का संकल्प लेता है। इसी बीच गाँधी जी की हत्या कर दी जाती है। गाँधीजी से प्रभावित राम अपना बाकी जीवन अहिंसावादी सिद्धांतों पर बिताने का संकल्प लेता है।

अनिल शर्मा द्वारा निर्देशित तथा सनी देओल, अमरीश पुरी, अमीषा पटेल अभिनीत फिल्म 'ग़दर: एक प्रेम कथा' (2001) में विभाजन के दंगों और मारकाट के बीच उत्पन्न होने वाले प्रेम के विरुद्ध की जाने वाली राजनीति के दृष्टिकोण को बताने का प्रयास किया गया है। अनिल शर्मा द्वारा निर्देशित तथा 'गदर: एक प्रेम कथा' एक फ़ार्मूला फ़िल्म है जिसका प्रथम दृश्य ही पाकिस्तान से भारत आन वाली ट्रेन में भरकर आए सिक्खों और हिंदुओं के शवों से होता है जिसमें फिल्म के नायक तारासिंह के माता, पिता और दो बहनों के शव भी होते हैं जिन्हें देखकर सीधासादा तारासिंह भी दंगों की लपेट में आ जाता है, लेकिन अपने परिवार जनों को खो देने से गमज़दा तारा सिंह एक उत्तेजित सिक्ख समूह के कुछ लोगों से मुस्लिम युवती सकीना की जान बचाकर सीमा पर स्थित मुस्लिम शिविर पहुँचाने के लिए निकल पड़ता है। इस फिल्म में विभाजन के पीछे की राजनीति के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब किया गया है। विभाजन के वर्षों बाद सकीना को जब अपने परिवार के जीवित होने की जानकारी मिलती है तब वह पाकिस्तान जाती है जहाँ उसे विभाजन के समय सिक्खों और हिंदुओं के विरुद्ध फैली अफवाहों की जानकारी मिलती है, तारासिंह के साथ हुए उसके विवाह को सकीना के परिवारवालों द्वारा अस्वीकार करके पाकिस्तानी राजनीतिज्ञ परिवार के फौजी बेटे से निकाह तय कर दिया जाता है। तारासिंह जब अपनी पत्नी को लेने के लिए पाकिस्तान पहुँचता है तो उससे विभाजन के समय हुए दंगों की याद दिलाकर बदला लेने का प्रयास किया जाता है।

अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' पर आधारित चन्द्र प्रकाश द्विवेदी द्वारा निर्देशित तथा मनोज बाजपेई, उर्मिला मातोण्डकर, संदली सिन्हा, प्रियांशु चटर्जी,

ईशा कोप्पिकर, संजय सूरी, कुलभूषण खरवन्दा, दीना पाठक, फरीदा जलाल, सीमा विस्वास और सुधा शिवपुरी द्वारा अभिनीत फिल्म 'पिंजर' (2003) में स्त्री विमर्श की दृष्टि से विभाजन की त्रासदी का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं पर केन्द्रित फिल्मों में 'पिंजर' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। फिल्म में सीमांत ग्राम की निवासी पूरो और रशीद की कहानी नफरत से प्रेम में बदलती दिखाई गई है। इस फिल्म की कहानी में स्थानीय जमींदार की बेटी पूरो की शादी रामचंद से तय हो जाती है। एक बार जब पूरो जब जब अपनी छोटी बहन रज्जो के साथ एक यात्रा पर जाती है तो पारिवारिक विवाद के चलते रशीद नामक मुस्लिम युवक उसका अपहरण कर लेता है। एकबार पूरो के परिवार ने रशीद के परिवार की संपत्ति लेकर उन्हे बेघर कर दिया साथ ही पूरो के चाचा ने रशीद की चाची का अपहरण करके उसके साथ दुराचार किया था, जिसका बदला वह पूरो का अपहरण करके लेता है। अपहरण के बाद जब रशीद पूरो के साथ कुछ समय बिताता है तो उसकी नफरत धीरे-धीरे प्रेम में बदल जाती है। इधर मौका मिलने पर पूरो रशीद के पास से छूटकर अपने घर पहुँचती है जहाँ उसके परिवार वाले उसे लोकलाज के भय से अस्वीकार कर देते हैं, जिसके कारण वह आत्महत्या करने जाती है जिसे रशीद बचा लेता है।

देश का विभाजन हो जाने पर पूरो का परिवार भारत में आ बसता है लेकिन पूरो पाकिस्तान में ही रह जाती है वहाँ रशीद उसका सहायक होता है, जिससे आभारी होकर पूरो धर्मांतरण कर हमीदा बन जाती है तथा रशीद से निकाह कर लेती है। विभाजन के दंगों में जब गुंडे लाजो का अपहरण करते हैं तो पूरो रशीद की सहायता से अपनी बहन को छुड़ाती है। अंत में परिवार से मिलन हो जाने पर भी वह रशीद के साथ ही रहने का निर्णय लेती है। यह एक ऐसी फिल्म है जिसमें विभाजन संबंधी समस्याओं का हल सदभावना से बताने का प्रयास किया गया है। फिल्म की कहानी का प्रारंभ विभाजन के फलस्वरूप हिंदू और मुस्लिमों में पनपी वैमनस्यता से होता है किंतु फिल्म का समापन दोनों के बीच प्रेम-संबंधों पर समाप्त होता है। इस फिल्म को उस वर्ष राष्ट्रीय एकता के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया था। फिल्म के निर्देशक डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी से इस फिल्म के चुनाव का कारण पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि ''भारत-पाकिस्तान विभाजन और हिंदू-मुसलमान समस्या पर राजनीतिक बातें तो होती

रही हैं, लेकिन फिल्म व साहित्य में इनपर कम ध्यान दिया गया है। पिंजर दोनों समस्याओं को छूती है। दो लोग अपनी जिद से एक रिश्ते और विचार को कायम करते हैं। करुणा व प्रेम से देश, धर्म, कौम, जाति के विद्वेष को खत्म किया जा सकता है।.....पिंजर असहज स्थितियों में जन्मे प्रेम की कहानी है।''[11]

अनूप सिंह द्वारा निर्देशित तथा इरफ़ान खान, टिस्का चोपड़ा, तिलोत्मा सोम द्वारा अभिनीत फिल्म 'क़िस्सा' (2013) मूलरूप से पंजाबी में रिलीज की गई थी जो ''भारत-पाक विभाजन के दौरान अपना सब कुछ गंवा कर एक बार फिर नई जिदंगी की चाह लिए अपनी फैमिली के साथ पंजाब पहुंचे अंबर सिंह (इरफान खान) पर बेस्ड है। अंबर सिंह के पास रब का दिया सबकुछ है, खूबसूरत पत्नी (टिस्का चोपड़ा) और तीन बेटियां हैं। बेशक अंबर सिंह अपनी बीवी और बेटियों की हर खुशी का पूरा ख्याल रखता है, लेकिन उसे बरसों से एक बेटे का इंतजार है, अंबर की पत्नी जब तीसरी बार प्रेंग्नेंट थी, तभी अंबर उसे लड़का होने की बात कहता है, लेकिन लड़के की बजाए लड़की पैदा होती है। चौथी बार भी लड़की ने ही जन्म लिया, लेकिन इस बार अंबर सिंह अपने दम पर विधि का विधान ही बदलने का फैसला कर लेता है। अंबर इस बार अपने घर में लड़का पैदा होने का जश्न मनाता है और बेटी की परवरिश बिल्कुल लड़के की तरह करता है।''[12] नेशनल अवार्ड पाने वाली श्रीजीत मुखर्जी द्वारा निर्देशित विद्या बालन, इला अरुण, गौहर खान, पल्लवी शारदा, प्रियंका सेटिया, नसीरुद्दीन शाह, रजत कपूर, आशीष विद्यार्थी, चंकी पाण्डेय द्वारा अभिनीत फिल्म 'बेगम जान' (2017) में रेड-क्लिफ रेखा के बीच में आने वाले वेश्यालय की कहानी है जिसकी रक्षा के लिए सभी वेश्याएँ अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए स्वयं को होम तक कर देती हैं। इसमें जब कोठे मालिक बेगम जान को उसके कोठे को हटाने का नोटिस दिया जाता है तो उसमें रहने वाले सभी अपने तरीके से नोटिस का विरोध करते हैं।

''फिल्म की शुरूआत विभाजन और आजादी के साथ होती है। ऐसी आजादी जो अपने साथ त्रासदी लेकर आई और फिल्म में आजादी को लेकर जो तंज कसा गया है वह कमाल है क्योंकि जब बेगम यह सवाल करती है, ''एक तवायफ के लिए क्या आजादी.....लाइट बंद सब एक बराबर.....'' ऐसे में आजादी के मायनों पर सवालिया निशान लग जाता है। फिल्म में औरत और समाज में उसके अस्तित्व को लेकर जिस तरह सवाल पैदा किए गए हैं, वे वाकई लंबे समय

से बॉलीवुड में ढंग से नहीं आ सके थे। फिर विभाजन की त्रासदी के साथ एक वेश्यालय और उसमें रहने वाली औरतों की यह कहानी ऐसा मौका नहीं देती जहाँ कहीं भी स्क्रीन से इधर-उधर देखने को मौका मिले।''[13] अंततः फिल्म में सभी की मृत्यु हो जाती है। इन फ़िल्मों के माध्यम से हम विभाजन की त्रासदी को मानवीय मूल्यों के साथ समझ सकते हैं। फिल्म में मोड़ तब आता है जब ''भारत-पाक को विभाजित करने के लिए सरकारी अफसर दोनों देशों के बीच बँटवारे की लाइन खींचने का काम शुरू करते हैं।.....बेगम की आखिरी उम्मीदें राजाजी पर टिकी हैं जिन्होंने उससे दिल्ली जाकर उसके इस कोठे को बचाने का वादा किया है। दूसरी ओर, इस कोठे के आस-पास बँटवारे की कांटेदार लगने का काम शुरू हो चुका है। दो सरकारी ऑफिसर इलियास (रजत कपूर), श्रीवास्तव जी (आशीष विद्यार्थी) यहाँ के पुलिस कोतवाल और सिपाहियों की टुकड़ी के साथ यह काम कर रहे हैं, लेकिन बेगम जान के कोठे को तोड़कर यहां तार लगाने काम शुरू नहीं हो पा रहा है। बेगम जान की मुश्किलें उस वक्त बढ़ जाती है जब दिल्ली से लौटकर राजाजी उसे कोठा खाली करने की सलाह देते हैं, लेकिन बेगम और यहां रहने वाली लड़कियां इस कोठे को खाली करने के लिए तैयार नहीं। सो दोनों सरकारी ऑफिसर कोठा खाली कराने की डील इलाके के एक शातिर बदमाश कबीर (चंकी पांडे) को सौंपते है, जिसे अब किसी भी कीमत पर बेगम जान के कोठे को खाली कराना है।''[14]

गुरिंदर चड्ढा द्वारा निर्देशित तथा ह्यु बोनविल, हुमा कुरैशी, मनीष दयाल, गिलियन एंडरसन, ओम पुरी, राज जुत्शी, दर्शन जरीवाला द्वारा अभिनीत फिल्म 'वॉयसराय हाउस' को हिंदी में 'पार्टीशन 1947' (18 अगस्त 2017) के नाम से डब करके रिलीज किया गया। यह फिल्म लॉर्ड माउंटबेटन के अधीनस्थ अधिकारी के रूप में कार्य करने वाले वरिष्ठ लोक सेवा अधिकारी नरेन्द्र सिंह रसीला की पुस्तक 'द शेडो ऑफ द ग्रेट गेमः द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ इंडिया'ज़ पाटीर्शन' तथा डोमिनीक लापिएर और लैरी कॉलिन्स द्वारा लिखित पुस्तक 'फ्रीडम एट मिडनाइट' के हिंदी अनुवाद 'आजादी आधी रात को'(तेजपाल सिंह धामा) पर आधारित है। भारत में रिलीज होने से पहले इस फिल्म को 'वायसराय हाउस' नाम से 67वें अंतरराष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल बर्लिन में टाइटल से प्रस्तुत किया गया। यह फिल्म अंतिम वायसराय के रूप में ब्रिटेन से भारत में आने वाले लॉर्ड माउंटबेटन के दौर पर केन्द्रित है।

फिल्म का आरंभ ब्रिटिश शासन के अंतिम दिनों से होता है, जब लुई माउंटबेटन को वायसराय के रूप में भारत विभाजन के निमित्त भारत भेजा जाता है, लेकिन वे भारत विभाजन करने के पक्ष में नहीं थे जिसके कारण अंत तक हिंदू-मुस्लिम के आपसी टकराव और मुस्लिम लीग के प्रमुख जिन्ना और कांग्रेस प्रमुख जवाहरलाल नेहरू के बीच मध्यस्थता करते हुए उनकी अनबन को सुलझाने का प्रयास करते रहे। फिल्म में वायसराय कार्यालय के कर्मचारी आलिया और जीत एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। भारत विभाजन के कारण दोनों को एक-दूसरे से अलग होना पड़ता है, लेकिन भारत आने वाली ट्रेन में अकेली जीवित बची घायल आलिया शरणार्थी शिविर में जीत को मिल जाती है जहाँ दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है। फिल्म के अंत में विभाजन के अंतर्राष्ट्रीय कारणों पर विमर्श प्रस्तुत करते हुए बताया गया है। इस विभाजन का एक मिडिल ईस्ट के तेल के कुओं पर रूस के अधिकार को रोकना था ताकि रूस को एशिया में प्रवेश करने से रोका जा सके। फिल्म में खुलासा किया गया है कि भारत विभाजन की पटकथा सन् 1945 में ही लिखी जा चुकी थी, जिसका प्रमाण विभाजन संबंधी तैयार किए गए तत्कालीन दस्तावेजों से चल जाता है।

अनुभव सिन्हा द्वारा निर्देशित तथा ऋषि कपूर, तापसी पन्नू, प्रतीक बब्बर, मनोज पाहवा, आशुतोष राणा, नीना गुप्ता, कुमुद मिश्रा, रजत कपूर द्वारा अभिनीत फिल्म 'मुल्क' (2018) में भतीजे शाहिद की पहचान एक आतंकवादी के रूप में होने पर पूरे परिवार को आतंकी मान लिया जाता है। जिसके कारण उसके पिता को गिरफ्तार कर लिया जाता है तथा शाहिद के पिता के बड़े भाई मुराद अली मोहम्मद को भी आरोपी मान लिया जाता है। जहाँ उनकी बहू आरती उनकी बेगुनाही के लिए न्यायालय में केस लड़ती है। मुराद अली अपने देशप्रेम पर सवालिया निशान लगाये जाने पर भारत विभाजन की घटना और पृष्ठभूमि को याद करते हुए कहते हैं कि विभाजन के समय उनके पास अन्य मुसलमानों की तरह पाकिस्तान जाने का विकल्प होने पर भी वे अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम के कारण ही पाकिस्तान न जाकर भारत में रह जाते हैं। इस फिल्म में भारत विभाजन का प्रसंग सीधा-सीधा न आकर संदर्भ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। न्यायालय में ज़िरह के दौरान आरती का संवाद जिसमें वह कहती है कि ''एक मुल्क काग़ज़ पर नक्शों की लकीरों से नहीं बाँटता सर! मुल्क बाँटता है दिमाग में, रंग से, भाषा से, धर्म से और जात से.....जिसने 1947 ई. में मजहब और

मुल्क में से मुल्क को चुना था। वो मुल्क, जिसमें डेढ़ सौ भाषाएँ बोली जाती हैं, दसियों धर्म माने जाते हैं, उस मुल्क में 'हम और वो' की नज़र से जस्टिस को कैसे देखा जा सकता है?.....'हम और वो' मिलके इस मुल्क को थोड़ी न बनाते हैं, 'हम' इस मुल्क को बनाते हैं।''[15]

विभाजन के कई प्रसंगों को लेकर भारतीय सिनेमा ने कई फिल्में दी हैं जिनका सिनेमाई सफर हमें फिर से उसी दौर में ले जाने में सक्षम है। कुछ विद्वान कहते हैं कि अब न तो वे लोग बचे हैं, न ही वह परिदृश्य और न ही वैसी कट्टरता फिर उस हादसे पर फिल्मों का निर्माण अप्रासंगिक है। इस संदर्भ में यह कहना प्रासंगिक होगा कि ''एक हादसा जो 76 वर्ष पहले हुआ, आज भी ताजा है। जख़्म भरा ही नहीं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 14 अगस्त को विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस के रूप में याद करने की बात कही। बँटवारे की भयावहता का दंश झेल चुके लोगों को राष्ट्र ने नमन् किया है। अगस्त की 14 तारीख का देश और दुनिया के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आजादी के अमृत महोत्सव पर उस दौर को याद करना इसलिए भी प्रासंगिक है क्योंकि यह वो पेचीदा दौर था जब लाखों परिवारों ने बँटवारे का दर्द सहा। आज भी वे बँटवारे के प्रभाव महसूस करते हैं, यह कहना गलत न होगा। बीसवीं सदी की बड़ी त्रासदियों में भारत पाकिस्तान बँटवारे को दर्ज किया गया है। बँटवारे पर बनी फिल्में देखने में भारतीय दर्शक ही नहीं अन्य देशों के दर्शक भी रुचि लेते हैं।''[16]

उपसंहार- 'ट्रेन टू पाकिस्तान', 'पिंजर', '1947: अर्थ', 'मम्मो' जैसी फिल्मों में विभाजन के दौरान हुई हिंसा, आगजनी, दंगों, लूटपाट में हुई जानमाल की हानि का वीभत्स चित्र प्रस्तुत करती हैं। विभाजन के दौरान होने वाले विरोध का फायदा उठाकर कुछ दंगाइयों ने लूटपाट तथा बलात्कार जैसे अनाचार प्रारंभ कर दिए। विभाजनोपरांत बने पाकिस्तान एवं भारत दोनों ने यह संकल्प लिया कि दंगों में अपहृत और बलात्कार से प्रभावित महिलाओं के पुनर्वास का पूरा प्रयास किया जाएगा। गणना करने पर दंगों से प्रभावित हिंदू और सिख महिलाओं की संख्या 55,000 से भी अधिक निकली जबकि पाकिस्तान के अनुसार ऐसी मुस्लिम महिलाओं की संख्या 12,000 के आसपास थी। इनमें नोआखली हिंसा, कलकत्ता में डायरेक्ट एक्शन डे, 16 नवंबर 1946 के हिंदुओं और मुस्लिमों के बिहार-नरसंहार, गढ़मुक्तेश्वर में मुस्लिम भीड़ द्वारा हिंदू लड़कियों और औरतों

को नग्न कर जुलूस और बलात्कार की शिकार महिलाएँ, अमृतसर में मुस्लिमों द्वारा नग्न महिलाओं की परेड, आगजनी और सार्वजनिक बलात्कार की शिकार महिलाएँ, विभाजन के दौरान अन्य स्थानों पर आश्रय प्राप्त कर अधिक समय व्यतीत करने वाली ऐसी महिलाएँ जिन्हें उनके परिवार ने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया आदि शामिल थीं।

'पिंजर' की पूरो तथा लाजो, '1947: अर्थ' में लेनी की आया तथा घर काम करने वाले कर्मचारी की बेटी, 'गदर' की सकीना, 'ट्रेन टू पाकिस्तान' की नूरन, 'मम्मो' की मम्मो, 'खामोश पानी' की आयशा दंगों से प्रभावित ऐसी ही महिलाएँ हैं। 'धर्मपुत्र', 'तमस', 'गदर: एक प्रेमकथा', 'हे राम', 'बेगम जान', 'मुल्क' आदि फिल्में हिंदू-मुस्लिम कट्टरता, सांप्रदायिकता, धर्म की आड़ या वैमनस्यता को आधार बनाकर की गई राजनीति के कारण हुए दंगों, मारकाट और लूटपाट पर आधारित हैं। 'लाहौर', 'छलिया', 'गरम हवा' में परिवारों पर विभाजन के प्रभाव को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। 'सरदार', 'पार्टीशन 1947', 'हे राम' में विभाजन के पीछे की राजनीति, कूटनीति तथा सत्ता की महत्त्वाकांक्षा के कारण उपजे भौगोलिक व मानसिक विभाजन, राष्ट्रीय एकता, दंगों के दौरान राहत कार्य आदि हेतु किए गए प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार हिंदी सिनेमा विभाजन के मुद्दे से जुड़े पहलुओं को गंभीरता और संवेदनशीलता के साथ दिखाने में सफल रहा है।

संदर्भ-

1. भारत विभाजन की त्रासदी, पंजाब केसरी(अंक दिनांक- 01 अगस्त 2017)
2. प्रियंवद, भारत विभाजन की अन्त:कथा, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007, विषय प्रवेश भाग से
3. चड्ढा मनमोहन, हिंदी सिनेमा का इतिहास, सचिन प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990, पृ.-489
4. सथ्यू एम.एस., राजनीतिक सिनेमा की जरूरत, अमर उजाला, दिनांक 17 नवंबर 2014
5. चड्ढा मनमोहन, हिंदी सिनेमा का इतिहास, सचिन प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990, पृ.-463
6. साहित्य और आजादी विशेषांक, योजना, संपादक- डॉ ममता रानी, वर्ष-66, अंक-08, अगस्त 2022, पृ.-57

7. भट्ट कमलेश, आजादी के जश्न के साथ विभाजन के जख्म भी हो जाते हैं हरे, फिल्मी पर्दे पर भी खूब दिखी पंजाब की टीस, जागरण, दिनांक 14 अगस्त 2021
8. लालवानी करिश्मा, सरदार पटेल के व्यक्तित्व और संघर्ष को दिखाती हैं ये फिल्में, इन एक्टर्स ने निभाया किरदार, जागरण, दिनांक 31 अक्टूबर 2022
9. भट्ट कमलेश, आजादी के जश्न के साथ विभाजन के जख्म भी हो जाते हैं हरे, फिल्मी पर्दे पर भी खूब दिखी पंजाब की टीस, जागरण, दिनांक 14 अगस्त 2021
10. अहमद रजी, भारतीय उपमहाद्वीप की त्रासदी: सत्ता, साम्प्रदायिकता और विभाजन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2013, हमें भी कुछ कहना है.....! भाग से, पृ.-13
11. अजय ब्रह्मात्मज, नफरत में जन्मे मासूम प्रेम की कहानी 'पिंजर', जागरण, 1 मार्च 2013 को प्रकाशित
12. शर्मा चंद्रमोहन, क़िस्सा (फिल्म समीक्षा), नवभारत टाइम्स, दिनांक 20 फरवरी 2015
13. सैनी नरेन्द्र, समाज के मुँह पर करारा तमाचा है 'बेगम जान' (फिल्म समीक्षा), आज तक, दिनांक 13 अप्रैल 2017
14. शर्मा चंद्रमोहन, बेगम जान(फिल्म समीक्षा), नवभारत टाइम्स, दिनांक 23 अगस्त 2017
15. सिन्हा अनुभव, मुल्क, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.-152
16' मनवानी अशोक, एक बार फिर सेल्यूलाइट पर राष्ट्र विभाजन का दर्द, नई दुनिया में प्रकाशित, दिनांक 12 अगस्त 2023, पृ.-9

विभाजन की त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-जीवन
(राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

डॉ अम्बरीन आफ़ताब*

आधुनिक भारत के इतिहास में सन् 1947 का वर्ष, विभिन्न दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण घटनाओं का साक्षी रहा। एक ओर, दो सौ वर्षों के औपनिवेशिक शासन का अंत होकर देश को स्वाधीनता की प्राप्ति हुई; वहीं दूसरी ओर विभाजन के रूप में एक ऐसी त्रासदी का सूत्रपात हुआ जिसने समाज, इतिहास, संस्कृति, इतिहास, लोक जीवन — सभी को अपने कलुषित घेरे में ले लिया।

इस दौर में जिस व्यापक पैमाने पर हिंसा और नरसंहार को अंजाम दिया गया, उससे समूची मानव जाति स्तब्ध रह गई। अपनी समस्त विभीषिका के साथ इतिहास का अंग बन चुकी विभाजन के त्रासद प्रभावों के संबंध में राही लिखते हैं — ''कहने को तो सियासत ने एक लकीर खींची, मगर वह लकीर आग़ और ख़ून का एक दरिया बन गई और हज़ारों-हज़ार लोग अपनी जड़ों समेत बह गए उस दरिया में...।''[1] विभाजन के दौरान फैली अमानवीयता और बर्बरता ने स्त्री-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया। बँटवारे से उपजी हिंसा और सांप्रदायिक उन्माद के भयावह दौर ने न केवल स्त्रियों के वर्तमान को विद्रूप बनाया अपितु भविष्य को भी अपने घेरे में ले लिया।

चाहे सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर हो अथवा आर्थिक धरातल पर, स्त्रियों के लिए स्थितियाँ निरंतर निर्मम होती चली गईं। एक ओर अतीत की भयावह स्मृतियाँ उन्हें कचोटती हैं, दूसरी ओर संशयग्रस्त भविष्य की आहट परिस्थितियों

* सहायक प्राध्यापक, वीमेंस कॉलेज, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उ.प्र.-202002 ईमेल- ambreenaffan@gmail.com संपर्क - 8791411898

को और अधिक कारुणिक बना देती है। कह सकते हैं कि स्त्रियों पर पड़ने वाले ये प्रभाव व्यक्तिगत, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक धरातल पर विशिष्ट थे जिसकी टीस एक लंबे समय तक उनके जीवन में बनी रहती है। विभाजन के दीर्घकालीन प्रभावों के आलोक में देखें तो उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने अपनी रचनाओं में अत्यंत कुशलता से स्त्रियों पर पड़ रहे उन प्रभावों को रेखांकित किया है। विभाजन-जनित परिस्थितियों के आघात झेलते हुए एकांकीपन और संत्रास से घिर चुकी असंख्य स्त्रियों की मनोव्यथा राही के उपन्यासों में भली-भाँति रूपायित होती है।

यद्यपि विभाजन के तत्कालीन समय में स्त्रियाँ यौन हिंसा के क्रूरतम रूप का शिकार हुई थीं, परंतु विभाजन का तूफान थमने के बाद भी उनके दुख और संताप का अंतहीन सिलसिला अनवरत जारी रहा। मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक धरातल पर उभर रही समस्याएँ विकराल रूप धारण कर रही थीं। अतएव विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से लिखे गए प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य राही द्वारा लिखे गए उपन्यासों के माध्यम से विभाजन के परवर्ती काल में स्त्रियों पर पड़ने वाले उन मनोवैज्ञानिक प्रभावों एवं आर्थिक दबावों के संदर्भ में पड़ताल करना है जो उन्हें घोर हताशा और अवसाद की ओर धकेलते हुए प्रतीत होते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में विभाजन पूर्व से लेकर पश्चात तक की विभिन्न मानवीय समस्याओं का विस्तृत परिदृश्य उपस्थित किया है। विभाजन-जन्य स्थितियों, संबंधों, मनोदशाओं एवं विसंगतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए राही उस दौर के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण में आ रहे उतार-चढ़ावों की गहन पड़ताल करते दिखाई पड़ते हैं। विभाजन के कारण जिस तीव्र गति से सभ्यता, संस्कृति, देश, धर्म, राष्ट्र आदि से जुड़ी जनसामान्य की अवधारणाओं में परिवर्तन आता गया, उसके परिणाम परवर्ती काल में भी दृष्टिगोचर होने लगे। विभाजन ने साधारण जनमानस की चेतना को गहरा आघात पहुँचाया जिससे उसके आचार-विचार, व्यवहार, आचरण व संवेदनाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। विभाजन के पश्चात समाज एवं सामाजिक संबंधों में जो टूट-फूट मची और परस्पर वैमनस्य का भाव उपजता चला गया, यह विस्तार से राही के उपन्यासों में प्रतिबिंबित हुआ है। पात्रों की मन:स्थिति, हाव-भाव, घटनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया विभाजन के बाद बदलते समय की गवाही देते प्रतीत होते हैं।

राही के उपन्यासों में चूँकि विभाजन की उपस्थिति विमर्श के स्तर पर चिह्नित होती है, ऐसे में यह स्वाभाविक है कि उनमें विभाजन के दौरान उपजे दंगों या हिंसा की घटनाओं और प्रसंगों का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा दर्ज नहीं हो पाता है। इसके विपरीत विभाजन को आधार बनाकर लिखे गए अन्य रचनाकारों जैसे यशपाल, भीष्म साहनी आदि के उपन्यासों को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि उनमें बँटवारे के दौरान घटी हिंसा और दंगों का व्यापक चित्र उपस्थित होता है। इन रचनाओं से गुज़रते हुए हम यह देख पाते हैं कि विभाजन के क्रूर परिणामों के प्रभावस्वरूप जनसाधारण, विशेष रूप से स्त्रियों का जीवन भयावह दु:स्वप्न में बदलता चला गया। शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर, स्त्रियों के हिस्से में अनेक ज़ख़्म आए, जिनकी टीस लंबे समय तक महसूस की जाती रही। सामान्यत: देखा जाए तो विभाजन के अतिरिक्त दंगे, युद्ध अथवा ऐसी किसी भी हिंसात्मक घटना के सर्वाधिक दुष्परिणाम स्त्रियों ने ही झेले हैं। हिंसा-जनित स्थितियों-परिस्थितियों के स्त्रियों पर पड़ने वाले गहन प्रभावों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा लिखती हैं — ''जब हम स्वार्थ के उस हुंकार को संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रतिध्वनित होते सुनते हैं, तब मन में यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता कि इन भिन्न देश और जातियों की, दुधमुँहे बालकों को अंचल की छाया में छिपाये और बड़ों को वात्सल्य से आर्द्र करती हुई माताएँ तथा आनेवाली आपत्ति की आहट सुनकर मुरझाई हुई स्नेहमयी पत्नियाँ क्या सोच रही हैं। युद्ध स्त्रियों की मनोवृत्ति के अनुकूल है या नहीं और यदि नहीं है तो पुरुषों ने उससे सहयोग पाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न किये, ये प्रश्न सामयिक लगने पर भी जीवन के समान ही पुराने हैं।''[2] इसी संदर्भ में, गरिमा श्रीवास्तव की क्रोएशिया प्रवास के दौरान लिखी गई डायरी 'देह ही देश'[3] का स्मरण हो आता है जिसमें युद्ध के दौरान व्यापक पैमाने पर बरती गई क्रूरताओं व नृशंसताओं की शिकार उन असंख्य स्त्रियों की त्रासद गाथा दर्ज है जिन्हें इतिहास ने विस्मृत कर दिया था। स्त्रियाँ युद्ध या हिंसा की पक्षधर न होते हुए उसकी सबसे सहज शिकार रहीं। विभाजन के दौरान भी यही स्थिति रही। राही के उपन्यासों में विभाजन का संदर्भ पृष्ठभूमि के स्तर पर उभरता है जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों पर पड़ रहे प्रभावों का संवेदना के धरातल पर सूक्ष्म अंकन उपस्थित रहता है और उसकी पीड़ा, व्यथा मनुष्य को भीतर-भीतर लंबे समय तक सालती रह जाती है। संभवत: यही कारण

है कि उनमें स्त्रियों पर विभाजनजनित हिंसा का प्रभाव सीधे-सीधे चित्रित नहीं होता है और न ही उनके प्रत्यक्ष अनुभवों को रचनाओं में बुना गया है। परंतु ऐसा नहीं है कि उनके समूचे रचनात्मक परिदृश्य में स्त्रियाँ सर्वत्र अनुपस्थित हैं। यहाँ वे विभाजन के परवर्ती काल में पारिवारिक स्तर पर उत्पन्न उन विभिन्न स्थितियों की विडंबनाओं के बीच उपस्थित मिलेंगी, जिनके साथ संवेदनात्मक और आर्थिक पहलू गुंथे हुए हैं। राही के उपन्यासों में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनके मध्य से गुज़रते हुए तत्कालीन समय और समाज में स्त्रियों के जीवन की समूची पीड़ा और उसकी कारुणिकता को गहराई से महसूस किया जा सकता है।

विभाजन के कारण बाह्य परिवेश में जितनी उथल-पुथल मची, उससे कहीं अधिक टूट-फूट मनुष्य के आंतरिक जगत में हुई। इस संपूर्ण प्रकिया के दुष्प्रभावों ने सामाजिक जीवन को तो क्षति पहुँचाई ही, साथ ही वैयक्तिक स्तर पर भी अनेक ग्रंथियों एवं मनोवृत्तियों को जन्म दिया। उपन्यास 'टोपी शुक्ला' की पात्र सकीना कई वर्षों के बाद भी अपने पिता और भाइयों की मृत्यु को नहीं भुला पाती जो विभाजन-पूर्व फैले दंगों की भेंट चढ़ गए थे। उस हृदयविदारक घटना की टीस उसके मन-मानस में संप्रदाय-विशेष के प्रति घृणा की ग्रंथि के रूप में बद्धमूल हो जाती है जिससे वह आजीवन मुक्त नहीं हो पाती। यही कारण है कि उसके व्यक्तित्व में आचरणगत असामान्यता दिखाई पड़ती है।[4] इसी प्रकार, उपन्यास 'ओस की बूँद' की हाजरा अपने बेटे अली बाक़र के पाकिस्तान चले जाने के दु:ख को सहन नहीं कर पाती। धीरे-धीरे वह तनाव और पीड़ा के गहरे दलदल में धँसती चली जाती है और अंतत: अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। हाजरा की बदलती मनोदशा को रेखांकित करते हुए राही लिखते हैं — 'हाजरा के लिए तो समय उसी दिन रुक गया था, जिस दिन अली बाक़र पाकिस्तान गया था।... हाजरा के अंदर होने वाले इस परिवर्तन की ख़बर किसी को नहीं थी। यह कोई नहीं देख रहा था कि वह समय की कगार पर खड़ी है। और नीचे एक अँधेरी खाई है और हवा का कोई झोंका उसे नीचे गिरा सकता है।'[5] स्पष्ट है कि विभाजन के बीतने के एक लंबे अरसे बाद तक उससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक गुत्थियों तथा विभिन्न ग्रंथियों के बीच स्त्रियाँ किस तरह उलझकर रह जाती हैं, इसे इन प्रसंगों के माध्यम से बख़ूबी समझा जा सकता है।

विभाजन से उपजी विभिन्न मानवीय समस्याओं में विस्थापन की आपदा

प्रमुख रही जिसमें असंख्य लोग अपने घर, अपने देश से कटकर शरणार्थी बनने पर विवश हुए। राही के उपन्यासों की पृष्ठभूमि चूँकि विभाजन-प्रभावित सीमावर्ती क्षेत्रों से दूर ग़ाज़ीपुर के एक गाँव गंगौली के ग्रामीण परिवेश से संबद्ध है, अत: वहाँ विस्थापन का आधार सांप्रदायिक हिंसा अथवा दंगे नहीं बनते अपितु यह सीधे-सीधे आर्थिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ता चला जाता है। सुनहरे भविष्य के स्वप्न लिए अधिकांश घरों के पुरुष सदस्य पाकिस्तान चले जाते हैं और पीछे रह जाती हैं - निराश्रित और एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त स्त्रियाँ। वे भूल जाते हैं कि उनके साथ इन स्त्रियों के जीवन भी जुड़े-बँधे हैं। जबरन हाशिए पर धकेल दी गई इन स्त्रियों की पीड़ा को उकेरते हुए राही ने मानवीयता के पक्ष को तीव्रता से उद्घाटित किया है। चाहे 'आधा गाँव' की सल्लो हो, सद्दन की पत्नी हो अथवा 'ओस की बूँद' की आबेदा, एक त्रासद घटना की अनुगूँजें इन पात्रों के भीतर तक सुनी जा सकती हैं। अली बाक़र के चले जाने के बाद आबेदा के दुर्भाग्य से घिरे जीवन के विषय में सोचती हाजरा के माध्यम से राही लिखते हैं — ''हाजरा ने कनखियों से बहू की तरफ़ देखा। इस शीशे की धूल कौन साफ़ करेगा आख़िर? अली बाक़र तो तलाक़ देकर अलग हो गया। सुना है, वहाँ उसने दूसरी शादी भी कर ली।... तो इस आबेदा का क्या होगा? मायकेवाले पाकिस्तान चले गए। ख़ुदा उनको ज़िंदा रक्खे, परंतु हमारे बाद क्या होगा इस आबेदा का?... क्या इसकी तक़दीर में कोई भविष्य नहीं है?''[6] इसी तरह, उपन्यास 'आधा गाँव' में तन्नू के पाकिस्तान चले जाने के बाद सल्लो अपने माता-पिता के घर तनावग्रस्त जीवन जीने को विवश है। घर के अन्य सदस्यों द्वारा अपशब्द कहे जाने और निरंतर अपमानित होने के कारण उसकी पीड़ा और अधिक गहराती चली जाती है जिससे वह धीरे-धीरे संवेदन-शून्य होती जाती है। वह स्वयं से प्रश्न करती है — 'ख़ुदा अब्बा को ज़रूर ज़िंदा रखे ! मगर कोई हमेशा नहीं जी सकता...तो उनके बाद तुम्हारा क्या होगा? तुम्हारी सात-आठ साल की इस ख़ूबसूरत और शोख़ बच्ची का क्या होगा? तुम्हारा तो कोई भाई भी नहीं है। यह लड़की तीन-चार साल में जवान हो जाऐगी, तब क्या होगा?..तुम्हारी शद्दो का क्या हश्र होगा। इस 'मगर' के बाँस में ये तमाम बातें फरहरे की तरह हवा के रुख़ पर तड़प रही थीं।'[7] ऐसे बहुत से प्रश्न उभरते हैं जो एक लंबे समय तक उसकी मानसिकता के साथ लिपटे रहते हैं। वस्तुत: सल्लो और आबेदा के जीवन से जुड़े प्रसंगों के माध्यम से राही उन अनगिनत स्त्रियों की अन्तर्वेदना को मुखर अभिव्यक्ति

प्रदान करते हैं जो विभाजन के पश्चात, वैयक्तिक स्तर पर अकेलेपन, खीझ, घुटन और मानसिक तनाव का अनुभव करने के साथ ही आर्थिक समस्याओं से भी बुरी तरह घिर जाती हैं। वर्तमान की दयनीय दशा और भविष्य की अनिश्चितताओं के बीच उनके जीवन में दुखों और संतापों का अंतहीन दौर प्रारंभ हो जाता है, जिसे राही ने अपने पात्रों के जीवन-प्रसंगों में गूँथकर इस रूप में निरूपित किया है कि विभाजन की मानव-विरोधी भूमिका स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ जाती है। यह विडंबना ही है कि परिवार व पारिवारिक दायित्वों से किनारा करते हुए जहाँ पुरुषों ने अपने लिए सुनहरे भविष्य का रास्ता चुना, वहीं स्त्रियों के खाते में आईं — पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के बोझ के साथ-साथ अंधकारमय भविष्य की आहटें। पुरुषों का स्वप्न स्त्रियों के लिए दु:स्वप्न सिद्ध हुआ। वे कहाँ जाएँ? वे कहीं नहीं जा सकती थीं, उनके पास सामाजिक-राजनीतिक चक्र में पिसने के अतिरिक्त विकल्प ही क्या था। अतीत का अंधेरा वर्तमान से होते हुए धीरे-धीरे भविष्य में उतरता चला जा रहा था, और वह इसे रोकने में असमर्थ थीं।

भावनात्मक रूप से टूटी हुई स्त्रियों के सामने अब एक नई समस्या विकराल रूप धारण कर रही थी जिसका सिरा आर्थिक पक्ष से जुड़ रहा था। जीवनयापन के ख़र्चों के लिए क़ानूनी दाव-पेंच में उलझी स्त्रियों की मार्मिक स्थिति पर विचार करते हुए उपन्यास 'ओस की बूँद' का पात्र वहशत सोचता है — 'यह तो तै नहीं हुआ जिन्ना साहब कि निकाह शेख़ फ़िरासत अली से होगा और देन मेहर का दावा कस्टोडियन पर ! यह कस्टोडियन कितनी बीवियों का शौहर बना हुआ है ! बीवियाँ क्या कस्टोडियन के नाम की चूड़ी पहनें ? बच्चे क्या कस्टोडियन से ईदी माँगें?'[8] बदलती परिस्थितियों के साथ निरंतर विकट होती गई आर्थिक समस्या ने स्त्रियों के जीवन को किस प्रकार विसंगति-बोध से भर दिया, इसे इन पंक्तियों के माध्यम से सहज ही समझा जा सकता है। उनकी विडंबना देखिए कि भरण-पोषण का जो दावा उन्हें अपने पति पर करना चाहिए, वह उन्हें कस्टोडियन पर करना पड़ता है। क्या ये स्त्रियाँ उन निर्जीव मकानों अथवा संपत्तियों की श्रेणी में गिनी जा रहीं थीं जिनके मालिक दूसरे देश जा चुके थे और उनकी देखरेख का जिम्मा कस्टोडियन का था? इस संदर्भ में राही लिखते हैं — 'अकबरियाँ, और फ़ातमाएँ और ग़फूरनें... खूँट में अपने भूत के नोट बाँधे चली आ रही हैं। ताँता बँधा हुआ है। कहानी एक ही है। नाम अलग-अलग हैं।

मुसम्मात अकबरी बनाम कस्टोडियन, मुसम्मात फ़ख़रुन्निसा बनाम कस्टोडियन... मेरा शौहर पाकिस्तान चला गया है। मेरा बेटा पाकिस्तान चला गया है।

'भगवान की तरह इस कस्टोडियन के कितने रूप हैं ! आख़िर हर घर में कस्टोडियन का प्रेत जमा हुआ है।'[9] कहना न होगा कि जो व्यवहार पीछे छूट चुकी वस्तुओं, निर्जीव मकानों आदि के साथ हो रहा था, वही इन स्त्रियों की भी नियति बन गई थी। इस तरह, चरमराते आर्थिक ढांचे के बीच स्त्री-जीवन की दारुण स्थितियों की आंतरिक परतों को, उनमें छिपे सच और सन्नाटे को परस्पर गुँथकर जिस तरह राही प्रस्तुत करते हैं, उससे विभाजन से जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के कई आशय खुलने लगते हैं।

वास्तव में, ये स्त्री-पात्र जिस समय और परिस्थिति से गुज़रते हुए हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं, उसमें बीते दिनों की स्मृतियाँ एक दु:स्वप्न बनकर उनके समूचे अस्तित्व को अपने घेरे में क़ैद किए रहती है। वर्तमान की विद्रूपताओं और भविष्य की दुश्चिंताओं के बीच ये अतीत की स्मृतियों में आश्रय ढूंढ़ने के निष्फल प्रयास करती प्रतीत होती हैं जिससे कि उनके जीवन की हताशा और अवसाद कुछ दूर हो सके। इस संदर्भ में उपन्यास 'आधा गाँव' का यह उद्धरण दृष्टव्य है — 'हर ज़नाने कमरबंद में कुँजियों का भारी गुच्छा था, पर बक्स खाली थे। तालों की कोई ज़रूरत न थी, पर औरतें कुँजियों के गुच्छे से चिमटी हुई थीं। क्योंकि वही उनकी खुशहाली के ज़माने की यादगार रह गए थे।...'है' और 'थी' — ये दो लफ्ज़ भी कितने अजीब हैं ! एक ज़िंदा है और दूसरा लाश की तरह भारी है। गुच्छों में फँसी हुई हर कुँजी एक लाश थी और उत्तर और दक्खिन की सैदानियाँ इन लाशों से चिपटी पड़ी थीं। इन कुँजियों का नग़मा उन्हें जिलाए हुए था, वरना उनकी आँखें बुझ चुकीथी।'[10] स्पष्ट है कि इन स्मृतियों से उनका जीवन जुड़ा हुआ है। अतीत से लिपटी हुई इन स्मृतियों में बीते दिनों का वैभव, ऐश्वर्य रचा-बसा है और उससे कहीं अधिक बसी है संबंधों की ऊष्मा जो पात्रों के भीतर जब-तब कौंधते हुए शून्यता का तीव्र एहसास जगा जाती हैं।

विभाजन पूर्व एवं पश्चात की स्थितियों में आर्थिक धरातल पर आए बदलावों की विडंबना और उससे स्त्री-जीवन में उपजे गहन विक्षोभ को व्यक्त करते हुए राही उसमें सन्निहित संवेदनात्मक पहलुओं को बारीकी से रेखांकित करते चलते हैं। सर्जनात्मक स्तर पर, इन स्त्री-पात्रों के चरित्र की रेखाओं को लेखक ने इस

खूबी से उभारा है कि इनकी मन:स्थिति और पीड़ा का विस्तार से वर्णन न होने के बावजूद भी पढ़ते हुए गहन मनोवैज्ञानिक दबाव महसूस किया जा सकता है। विभाजन के दीर्घकालीन प्रभावों, परिणामों के परिप्रेक्ष्य में टूटी-बिखरी स्त्रियों की पीड़ा और दुर्दशा के संवेदनात्मक चित्र विभिन्न प्रसंगों में उभरकर सामने आते हैं। स्पष्ट है कि राही के उपन्यासों का यह पाठ लेखकीय बोध के स्तर पर स्त्री-जीवन से जुड़े उन संवेदनशील पहलुओं को उद्घाटित करता है जिनमें विभाजनजन्य भावनात्मक टूटन के साथ-साथ आर्थिक स्तर पर उभरी विद्रूपताओं की मार भी सन्निहित थी।

हालाँकि जब भी राही के उपन्यास-साहित्य के विवेचन-विश्लेषण का प्रश्न आता है, तब स्त्रियों से जुड़ा पक्ष कहीं पीछे छूट जाता है। और ऐसी स्थिति केवल राही के साथ ही नहीं है, बल्कि हम यह देखते हैं कि अधिकांशत: जिन भी रचनाकारों ने सांप्रदायिकता, विभाजन आदि को आधार बनाकर लेखन किया तो रचना के स्तर पर, भले ही स्त्रियों की पीड़ा को अत्यंत सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिली परंतु आलोचना के स्तर पर यह पक्ष नितांत ओझल ही रहा। उनके साहित्य के मूल्यांकन-विश्लेषण के क्रम में हम स्त्री-पक्ष से जुड़े संवेदनात्मक पहलुओं को विस्मृत करते चले गए। राही के रचना-कर्म के समग्र मूल्यांकन की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि विभाजन के संदर्भ में राही की वैचारिकी और सृजनशीलता पर खूब मंथन किए जाने के बावजूद भी स्त्री-पक्ष अलक्षित ही रहा। धर्म, राष्ट्र, संप्रदाय, भाषा, संस्कृति आदि विषयों के ही आलोक में राही द्वारा रचित साहित्य बार-बार नए-नए सिरे से व्याख्यायित और विश्लेषित किया जाता रहा और उसमें रूपायित स्त्री जीवन की ही तरह स्त्री-प्रश्न भी कहीं अंधकार में दुबके रहे जिन तक पहचान का उजाला पहुंचा ही नहीं। ऐसे में, विभाजन के स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभावों के विश्लेषण के संबंध में राही के उपन्यासों का यह पाठ मानवीय चेतना की परिधि को विस्तार प्रदान करने का प्रयास तो है ही, साथ ही साथ स्त्री-जीवन के उन मार्मिक क्षणों, जो विभाजन की भेंट चढ़कर हाशिये पर चली गई थी, की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए रचना के पाठ की बँधी-बँधायी परिपाटी से इतर पुन:पाठ की संभावनाओं को भी उजागर करने का प्रयत्न है।

संदर्भ :

1. राही मासूम रज़ा, नीम का पेड़ (उपन्यास), छठी आवृत्ति, 2014, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 19
2. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, तृतीय संस्करण, 1944, साधना-सदन, प्रयाग, पृ.सं. 29
3. गरिमा श्रीवास्तव, देह ही देश, पेपरबैक संस्करण, 2017, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
4. राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला (उपन्यास), तेरहवाँ संस्करण, 2016, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 58
5. राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद (उपन्यास), पाँचवीं आवृत्ति, 2013, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 34
6. राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ.सं. 28
7. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव (उपन्यास), तेरहवीं आवृत्ति, 2014, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 321
8. राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ.सं. 32
9. राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ.सं. 33-34
10. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृ.सं. 329

झूठा सच उपन्यास के आईने में विभाजन की त्रासदी

डॉ. उषा दुबे *

स्वतंत्रता प्राप्ति और अंग्रेजी दासता से मुक्ति की प्रबल आकांक्षा को पूर्ण करने के साथ ही देश-विभाजन की विषबुझी कटार ने भारतमाता के हृदय को किस तरह तार-तार कर दिया,यह हम भारतीयों से छिपा नहीं है। इस निर्णय से भारत देश और मानवता दोनों का सिर शर्म से झुकने पर मजबूर हो गया।

रचनाकारों ने भी इस गहन पीड़ा को सहा तथा लेखनी से व्यथा-कथा को लिपिबद्ध किया। प्रसिद्ध रचनाकार यशपाल के वृहदाकार उपन्यास -'झूठासच' के बरक्स उस त्रासदी को देखा-समझा जा सकता है।

झूठा सच उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में विभाजन पर आधारित एक बृहद उपन्यास है। यह केवल आकार में ही नहीं बल्कि कथा दृष्टि से भी अत्यधिक विस्तारित है। 1250 पृष्ठों में यशपाल जी ने वतन और देश तथा देश का भविष्य इन दोनों भागों में देश के विभाजन के फलस्वरूप हुए विघटन एवं नवीन संघठनात्मक ढांचे को उकेरा है। प्रथम भाग में देश के विभाजन के पूर्व और विभाजन के समय को यथार्थ स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें मुस्लिम लीग की राजनीति, विभाजन के कठोर निर्णय का कारण, तथा नेहरू जी के विचार और गांधीवादी विचारधारा को बड़ी सूक्ष्म रूप में रखा है। विभाजन के बाद देश किन-किन परिस्थितियों से गुजरा, जिसके अंतर्गत पाकिस्तान से पलायन हुए हिन्दू शरणार्थी के चित्रण के साथ-साथ मुस्लिम शरणार्थियों का भी मार्मिक चित्रण है। शरणार्थी कैंप की स्थिति महिलाओं पर अमानुषिक व्यवहार लूटमार आदि का चित्रण है।

* हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द महाविद्यालय, परेल, मुंबई-12

दूसरा भाग देश का भविष्य है। जिसके अंतर्गत देश के संगठित स्वरूप के निर्माण की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। लेखक ने न केवल उपन्यास में पात्रों के माध्यम से केवल घटनाओं को सामने रखा है। बल्कि यह भी बताया है कि एक विभाजित देश किस प्रकार स्वतंत्र होकर अपने नए स्वरूप को सुनियोजित कर रहा है। उपन्यास में लोगों को स्थायित्व प्रदान करने से लेकर उनकी मनोदशा को भी चित्रित किया गया है। तत्कालीन भारत में कांग्रेस शासन के अंतर्गत पल्लवित होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक और टूटते बिखरते हुए परिवारों तथा बदलते हुए मानवीय मूल्य पर प्रकाश डाला है। राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार भ्रष्ट होती जा रही है। इस पर भी लेखक ने अपनी चिंता व्यक्त की है। उपन्यास के बारे में समीक्षकों का कहना है कि ''यह न केवल यशपाल की रचनात्मकता की एक बहुत बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है, बल्कि इसे प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा के विकास की एक सशक्त कड़ी भी बताया गया है।''

उपन्यास के अंतर्गत पंजाब तथा लाहौर की स्थिति के साथ-साथ विभाजन से प्रभावित अन्य स्थानों का चित्रण है।

उपन्यास की शुरूआत लाहौर के भोला पांधे की गली से होता है। जहां सौहार्द पारस्परिक प्रेम दैनदिन के कार्यों को पड़ोसियों के साथ साझा करते हुए दिखाया गया है। जहां धर्म या जाति केआधार पर लेश मात्र भी भेदभाव दिखाई नहीं पड़ता है। सुख-दुख के ये यह साथी सभी परिस्थितियों को मिल बाँटकर सामना करते हैं। इसी गली में मास्टर राम लुभाया रहते हैं। जिनकी दो संताने तारा और जयदेव पुरी है। जो उपन्यास की कथा के केन्द्रीय पात्र है।

जयदेव और तारा दोनों ही शिक्षित और परंपरावादी विचारधारा के परिवार में पले-बड़े होने के बावजूद एक स्वतंत्र विचारधारा के हैं। निम्न मध्यम वर्ग के परिवार से संबंध होने के कारण यह दोनों ही अपने परिवार के आर्थिक स्थिति के लिए सहयोग देते हैं। इस दौरान तारा असद के साथ संपर्क में आती है। और जयदेव कनक से मेलजोल बढ़ाता है। तारा के समक्ष धर्म की दीवार,और जयदेव की समक्ष आर्थिक विपन्नता की चुनौती थी। तत्कालीन परिस्थितियों में देश कठिन समय से गुजर रहा था। अंग्रेजों को जब यह आभास होता है कि अब भारत में उनकी दाल नहीं गलने वाली है। तब उन्होंने ''फूट डालो और राज्य कर वाली नीति अपनाई''। इस पर प्राण ब्रिटिश सरकार की इसी नीति पर टिप्पणी करते

हुए कहता है कि ''जैकिंग्स की तो चाल है कि पाकिस्तान डोमिनियन में ही बना रहे।''[1] विभाजन को समझने से पहले उसके कारण की ओर भी लेखक हमें ले जाते हैं। जहां पर अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति को समझा जा सकता है। वस्तुत: प्रथम स्वाधीनता संग्राम के क्रूर दमन के बाद ही ब्रिटिश रणनीति कारों का ने अलग-अलग चालें चली थी। किंतु जन आंदोलन के विरोध करने पर उन्हें पीछे हटना पड़ा।

स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने के लिए अंग्रेजों ने मार्ले मिंटू योजना लागू की। जिसके अंतर्गत हिंदू मुस्लिम को अलग-अलग बताया गया। इसके पश्चात 1919 में एक और योजना आई। जिसे मांटेग्यू माउंटबेटन योजना कहते हैं। जहां देश में सिर्फ हिंदू मुस्लिम समुदाय ही नहीं बल्कि और भी धार्मिक संप्रदायों को पृथक किए जाने का प्रयास किया गया। इन सब का उद्देश्य यही था, कि भारत की स्वाधीनता आंदोलन कमजोर पड़े भारत की एकता को आघात पहुंचना था।

यहीं पर वैचारिक भिन्नता भी दिखाई पड़ती है। जिसमें कांग्रेस के अलग विचार थे। दूसरी ओर मुस्लिम लीग के अलग। दोनों में ही वैचारिक विभिन्नता दिखाई पड़ती है। मुस्लिम लीग द्विराष्ट्र का सिद्धांत रखते हैं। जिसमें हिंदू और मुस्लिम को अलग-अलग कर दिया जाए। मुस्लिम लीग ने धर्म के आधार पर विभाजन की बात को रखी। मुस्लिम लीग जातिय कट्टरवाद की राजनीति का प्रतिफलन है। अंग्रेजों ने जो फूट डालो वाली नीति अपनाई थी, उसमें वह कामयाब हो जाता है। वह अपना पूरा सहयोग मुस्लिम लीग को देता है। उपन्यास के पात्र पंडित गिरधारी लाल ब्रिटिश का मुस्लिम लीग को सहायता प्रदान करने के बारे में कहता है कि ''भई लीग तो एब्स्ट्रेक्ट डिमांड करेगी ही इटली ने उन्हें बढ़ावा दे दिया है कि जिस तस्वीर में लोग शामिल नहीं होंगे उसे ब्रिटिश सरकार मंजूर नहीं करेगी। जब आप डेमोक्रेसी की बात करते हैं तो लीग और कांग्रेस का क्या सवाल है? जो मेजोरिटी में हो उसकी बात मानिए।''[2]

परंतु कांग्रेस भी द्विराष्ट्र के पक्ष में न थी। जिसे हम जयदेवपुरी के माध्यम से समझ सकते हैं जयदेवपुरी आरंभ में राष्ट्रीय विचारों में गहरी साहित्य का अभिरुचि वाला व्यक्ति है। अपने विचारों के कारण 1943 में जेल भी जाता है। उसका कम्युनिस्ट से विरोध है, क्योंकि वे दो कौमों के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। लेखक ने ब्रिटिश शासन की मनोदशा को भी उजागर किया है। तत्कालीन

परिस्थितियों में भारत ने बड़े ही मुश्किल से अंग्रेजों को खदेड़ा था। अंग्रेजों के पास हथियार डालने के अलावा अतिरिक्त विकल्प नहीं बचा था। हमारे स्वाधीनता के संघर्ष में सत्य अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले गांधीवादी विचारधारा तथा सुखदेव, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी भी थे। इतने शक्तिशाली देश के सामने टिकना अब उन लोगों का मुश्किल होगा। किंतु खिसियानी बिल्ली की तरह वे लोग भारत को चोट पहुंचाना चाहते थे। इसलिए वह पूरी तरलीग को सपोर्ट कर रहा था। लीग की जिद के कारण स्वतंत्रता आंदोलन कमजोर करने के आसार नेहरू गांधी जी आदि बड़े नेताओं के मन में आया, कि इस मुद्दे को ज्यादा खिंचना मुनासिब नहीं समझे। क्योंकि फिर अंग्रेज हम पर हावी ना हो इसलिए भी वे विभाजन को स्वीकार करते हैं। तब जाकर आजादी का रास्ता साफ हुआ।

भारत में धर्मनिरपेक्ष की बात कहते हुए विभाजन को स्वीकार किया। दोनों देशों में घोषणा हुई कि कोई भी धर्म का व्यक्ति कहीं भी जा सकता है उनके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं होगा लेखक के शब्दों में ''हिंदुस्तान में अल्पसंख्यक मुसलमान और पाकिस्तान में अल्पसंख्यक संख्या हिंदुओं और सिखों की जानो-माल की पूरी रक्षा की जिम्मेदारी नई सरकारी लेगी। दोनों ही देश में अल्पसंख्यकों की समान ही सब नागरिक अधिकार होंगे और उनकी सांस्कृतिक तथा धार्मिक आचार व्यवहार की स्वतंत्रता की पूरी रक्षा की जाएगी।''[3] बावजूद इसके विभाजन का जहर चारों ओर फैल रहा था। लेखक के शब्दों में ''जहर फैलाने वालों ने तो जहर फैला दिया आदमी जहर खा ले तो इलाज करना चाहिए या उसे गोली मार देना ठीक होगा''[4] लेकिन पुरी यह बात अपने तक ही सीमित रखता है, क्योंकि उसे लगता है कि यह आग आगे तक बढ़ चुकी है। यहां से शुरू होती है विभाजन की त्रासदी जिसे लेखक ने भोला पांधे की गली के माध्यम से शुरूआत की है। जिसका चित्रण इस प्रकार है- ''सैदमिट्ठा में मुसलमान की भीड़ ने आधी रात में बन्नी के हाते को घेर कर बहुत से मकानों में एक साथ आग लगा दी थी। दोनों तरफ से खूब बंदूक चली थी। सोमराज की बुआ और तारा का पता नहीं चल रहा था। उनके पड़ोसी माधोदास का बाप भी आग से नहीं निकल सका था। लाला सुखलाल के कंधे में गोली लगी थी। उनका मकान उन दोनों ओर के मकान और सामने माधोदास का मकान भी जल गए थे। सुखलाल के मकान के पिछवाड़े का खाली मकान भी जहां खोजा रहा था। जल गया था।''[5]

हम देख सकते है कि किस प्रकार प्रेम का स्थान सांप्रदायिक नफरत में बदल जाता है।

यह त्रासदी केवल यही तक नहीं रह गई कुछ लोग ऐसे थे जो हैवानियत पर उतर गए थे। ''सुखलाल अपनी की बहुत ड़िंगे मारता था। लोग कह रहे हैं उसकी बहू को मुसलमान छीन ले गए हैं। इज्जत बचाने के लिए बात बना दी है की जलकर मर गई।''[6] मौका देख लड़कियों की खरीदी बिक्री होने लगी। ''मैं इसे खराब करके खलीफा के यहां रु. 50 में दे आऊंगा।''[7] इसी दौरान तारा जैसी कई महिलाओं के साथ बलात्कार की घटना घटती है। विभाजन की त्रासदी की पीड़िता तारा, बंती, अमरों जैसे और भी लोग थे। जो अपने परिवार से बिछड़ कर कई-कई दिनों तक भूखे रहने के लिए विवश थी। लेखक शब्दों में ''भूख के कारण तारा को बहुत रात गये तक नींद तक भी नींद ना आयी। स्त्रियाँ आंगन से उठकर कोठारियों में हो गई। नींद टूटने से भूख जाग उठी थी। उसे भुलाने के लिए वह फिर बातें करने लगी।''[8] विभाजन के दौरान स्त्रियों को अपनी स्त्रीत्व होने पर गुस्सा आता है और वह कहती है कि ''सब ज़ोर जुल्म के लिए औरत ही रह गई है। बेहया ओनिचों का सब गुस्सा इसी बात में उतरता है। गाली भी देते हैं, तो इसी बात की। बेहया जहां से आते हैं फिर उसी में डूबते-मरते हैं। उसे ही बेइज्जत करते हैं। औरत पर इसी बात का गुस्सा है कि इन्हें जना क्यों?''[9] पाकिस्तान से हिंदुओं कि दयनीयता को प्रकट करते हुए लेखक कहते है कि ''पाकिस्तान से हिंदू अक्सर चले गए हैं या निकाल दिए गए हैं। शेष को निकाला जा रहा है। यही पॉलिसी है।''[10] पाकिस्तान में हजारों की संख्या में लाशें पड़ी हुई है। लेकिन उसकी अंतिम क्रिया कर्म के लिए भी कोई आगे नही आता। राजनीति इतनी भ्रष्ट हो गई है कि लावारिस लाशें ऐसे ही सड़ गल रही है।'' कैसी बदबू फैल रही है लाशे हिंदुओं की है पर इसे सड़ांध से बीमारी फैलेगी तो मरने वाले तो पाकिस्तान के ही रिआया होगी। इस सरकार को अपनी रिआया के मरने-जीने का भी ख्याल नहीं। बहन जी सुना है, इस काफिले में से एक भी हिंदू नहीं बचा था। 200 से कम आदमी नहीं कटा होगा। जनाना को तो बेईम बकरियों की तरह खींच ले जाते हैं।''[11] विभाजन के कारण हिंदू और मुस्लिम दोनों ही अपने को छोड़कर पलायन होने के लिए मजबूर हुए। ड्राइवर इन सबको देखकर कहता है कि ''रब ने जिन्हें एक बनाया था, रब के बंदे ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।''[12]

सारा पंजाब और लाहौर तनावग्रस्त था। क्योकि विभाजन के बाद इन्हीं दो राज्यों में दंगों ने अधिक प्रभावित किया। यहां पर सांप्रदायिक दंगे अपने चरमोत्कर्ष पर थे।

यहां तारा और जयदेव की तरह कई लोग अपने-अपने परिवार से बिछड़ जाते हैं। लाहौर में अधिकतर हिंदू जनता थी। वहां की जायदाद भी अधिकतर हिंदुओं की ही थी। लोगों ने सोचा था कि यह सिर्फ कुछ ही दिनों की समस्या है। इसके पश्चात तो उन्हे लौटना है। किसी ने भी यह सोचा नहीं था किये लौटना अब कभी नहीं होगा। डॉ प्राणनाथ की हवेली में आग लगा दी जाती है। जिसके कारण उसका पूरा परिवार लखनऊ शिफ्ट हो जाता है। कनक का परिवार नैनीताल। पुरी ने कभी नहीं सोचा था कि वह लाहौर कभी नहीं लौटेगा। हिंदुओं की दुकानों को तुड़वाकर उनमें आग लगा दी गई।

उपन्यास के प्रथम भाग वतन और देश में लाहौर की गली भोला पांडे को केंद्र में रखकर वहां की सामाजिक जीवन का अंकन किया है। स्वाधीनता संग्राम की संघर्ष क्रांति को धीमा करने के लिए ब्रिटिश सरकार की नीतियों को बड़ी विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के दूसरे भाग में देश का भविष्य को केंद्र में रखकर स्वाधीनता के बाद देश और विशेष रूप से पंजाब की वास्तविक स्थिति को लेखक ने यथार्थ स्वरूप की स्थिति को बताया है। सत्ता की राजनीति, पंजाबियों की विस्थापन और पुनर्वास, राजनीतिक मूल्यहीनता को सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पात्रों के माध्यम से देश के सुनियोजन को भी चित्रांकन किया है। देश किस प्रकार नवनिर्माण के राह की ओर अग्रसर हो रहा है।

जयदेव पुरी नौकरी की तलाश में नैनीताल गया हुआ था। विभाजन की खबर सुनने के बाद जब लाहौर अपने परिवार के पास लौटता है तो वह देखता है कि लाहौर अब दूसरे देश के अंतर्गत आ चुका है। वस्तुत: उसे वहां भी सफलता नहीं मिलती है। जयदेव पुरी जैसे कई शिक्षित युवक ढाबे पर बर्तन साफ करने, दर-दर भटकेंहोंगे। तारा भी शरणार्थी शिविर में असहाय और निरीह होकर जीती है। किंतु हार नहीं मानती है। अपनी कठिन परिश्रम के कारण नरोत्तम के प्रयासों से शरणार्थी सहायता संबंधित सरकारी नौकरी मिल जाती है। अपने परिश्रम के बल पर वह शीघ्र ही अच्छे पद पर भी पहुंच जाती है। जयदेव भी रिफ्यूजी संगठन का मंत्री और सूद जी का दाहिना हाथ बनकर और एक पत्रकार की हैसियत

से उसे भी काफी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। कई ऐसे पात्र हैं जो अपनी जिंदगी में आगे बढ़ चुके हैं।हर कोई किसी न किसी मुकाम पर पहुंच गए हैं। उपन्यास में मूल कथा के अतिरिक्त और भी उपकथाएं हैं। जिनका संबंध मूल कथा से है।

उपन्यास में लेखक ने यह बताया है कि किस प्रकार आजादी की लड़ाई में लोग एकजुट हुए थे और स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सत्ता सुख की आकांक्षा में वह अवसरवादी पार्टी में बदल गई है। ''अब कांग्रेस का चंदा चार-चार आने और रुपये-रुपये की रसीदों से इकट्ठा नहीं की जाती है। चुनाव फंड में मिलो, कंपनियों और बड़े-बड़े करोड़पतियों से हजारों और लाखों में चंदा आता था।''[13] यह वह दौर था जिसमें मंत्रियों के दामादों के लिए मैनेजिंग डायरेक्टर से कम कोई पद सोचा ही नहीं जा सकता था। देश की अर्थव्यवस्था को देखते हुए सरकार के प्रति भी लोगों की खीज उठती है। अपनी खीज प्रकट करते हुए कनक तारा और गिल इस प्रसंग पर बहस भी करते हैं, और वह इस बात पर टिप्पणी भी करते हैं कि ''प्रधानमंत्री की आंखों में घी की सलाई लगा दीजिए। उन्हें कुछ दिखाई नहीं देगा। उन्हें जो कुछ आप कहेंगे इस पर विश्वास करना होगा।''[14] (उपन्यास का अंत आशावादी दृष्टिकोण से होता है। जब सूद के हजारों वोटो से चुनाव हार जाता है। जबकि सूद और उसकी पार्टी साधन संपन्न थे। और विजय पार्टी के पास उतना नहीं था। लोग इस खबर को सुनकर ''इंकलाब जिंदाबाद''। और तानाशाही मुरादाबाद के नारे लगाने लगते हैं। समाज की स्थिति पर डॉक्टर सहसा गंभीर होकर टिप्पणी करता है। गिल अब तो विश्वास करोगे जनता निर्जीव नहीं है। जनता मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेता और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं देश की जनता के ही हाथों में है। नाथ की टिप्पणी से उपन्यास का अंत होता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि उपन्यास के दोनों भागों में विभाजन के पूर्व विभाजन के समय तथा उत्तर विभाजन की परिस्थिति का सूक्ष्म आकलन किया गया है। प्रभावशाली पात्रों के माध्यम से खोती हुई मनुष्यता, नष्ट होते मानवीय मूल्य, स्वार्थी राजनेता जन विरोधी तत्व को लेखक ने सही रूप से पहचाना है। विभाजन की भयानकता के उथल-पुथल वाले कालखंड की बहू रूपा गतिविधियों को प्रस्तुत करते हुए अंतत: सूत्र रूप में अपना यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है कि ''देश का भविष्य नेतओऔर मंत्रियों

की मुट्ठी में नहीं देश की जनता के ही हाथ में है।''

साथ इस बात को भी स्पष्ट किया कि देश का विभाजन किसी हिंदू या मुस्लिम समुदाय की आम जनता ने नहीं बल्कि तथा तथा कथित नेताओं ने अपने स्वार्थ साधने के लिए विभाजन को साधन के रूप में इस्तेमाल किया है।

संदर्भ सूची

1. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 356
2. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 198
3. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 323
4. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 169
5. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 324
6. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 325
7. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 363
8. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 462
9. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 466
10. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 473
11. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 477
12. झूठा-सच उपन्यास भाग एक पृष्ठ 482
13. झूठा-सच उपन्यास भाग दो पृष्ठ 139
14. झूठा-सच उपन्यास भाग दो पृष्ठ 649

परंपरागत लेखनी से परेः विभाजन की त्रासदी और इंतज़ार हुसैन

डॉ. गुलजबीं अख्तर अंसारी*

शोधसार

भारत का विभाजन न केवल दो सम्प्रभु राष्ट्र भारत व पाकिस्तान के गठन की ओर ले जाने वाली एक असाधारण व अविस्मरणीय घटना है अपितु हज़ारों लोगों के दर्दनाक अनुभवों का दस्तावेज़ी सबूत भी है। सत्ता के हस्तानान्तरण के नतीजे में हुई क्रूरता, हिंसा, विस्थापन और अव्यवस्था से परिवारों के विभाजन, विनाश, और प्रवासन का बेहद मार्मिक चित्रण आत्मकथाओं कहानियों, रिर्पोताजों व उपन्यासों के माध्यम से विभिन्न लेखकों द्वारा इतिहास में दर्ज किया गया है। अपनी जड़ों से उखाड़ कर फेंक दिये जाने के पश्चात परायी ज़मीनों पर बसाये जाने वाले इन प्रवासियों की समझ से ये बात परे थी कि इस कड़ी और लम्बी जद्दोजहद के बाद मिली इस स्वतन्त्रता का जश्न मनाएं या एक युग के ख़ातमे का शोक या फिर अपनी पहचान खो जाने का संताप करें। उस थकी हारी नस्ल के लिए अपनी शिनाख़्त का संकट नज़र आने लगा। भारत में वह साझा सस्कृति के मानदंडों और मूल्यों में साझेदार थे मगर हिजरत के बाद नई सस्कृति को आत्मसात करने और अनुकूलन की समस्या से जूझते हुए ये मुहाजिर स्थानीय लोगों की घृणा और तिरस्कार झेलने पर मजबूर हो गए। बेघर और खाली पेट ये मध्यमवर्गीय लोग जब संकट महसूस करते तो अतीत में शरण लेते जहां खोई

*एसोसिएट प्रोफेसर,उर्दू, लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुगलसराय, चन्दौली, यूपी-232101 मो.:9450907747

हुई ख़ुशियों का विलाप करके वह इस घुटन को कम करने का प्रयास करते। मुनीर नियाज़ी ने अपने इस शेर मे इन मुहाजिरों की पीड़ा को इस प्रकार बयान किया है, 'वतन में अजनबी बाहर मुहाजिर, पलट जाने का भी रस्ता नहीं है'। सवेंदनशील लोगों ने लेखन को अपना आशियाना बना लिया जहां वो अपने आबाई घरों के बारे में लिखते हुए घर जैसा महसूस करने लगे। अपने अनुभव को सामूहिक सांस्कृतिक अनुभवों में बदल दिया। अतीत के क़िस्से कहानियो, दंत कथाओं और मिथकों में खोकर अपनी गुमशुदा पहचान को टटोलना शुरू किया।

इंतज़ार हुसैन के विभाजन और प्रवासन का साहित्य प्रगतशील लेखकों के 'फ़साद के साहित्य' से बिल्कुल भिन्न है। उनका उपन्यास 'बस्ती' विभाजन के इतिहास, हिंसा और स्मृतियों से संबंधित है। संबंधों में विच्छेद की पीड़ा को दर्शाता है। यह उपन्यास उन प्रवासियों की दर्द भरी आवाज़ है जो नए स्वार्थ, वादों, संभावनाओ और अवसरों की तलाश में बेहतर भविष्य और समृद्वि की आशा लिए नए सपनों की भूमि पाकिस्तान हिजरत कर गए जिनमें से कुछ लोग युद्ध और हिंसा से होने वाले आघात से डर कर भी पलायन कर गए थे। वहां उन्हें आन्तरिक और बाह्य दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ा और उन्हें आतंक और युद्ध की विभीषिका के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। इन प्रवासियों के आदर्श और सौहार्दपूर्ण समाज का सपना खोखला निकला। परिचित नामों का ह्रास, मित्रों और पड़ोसियों से वियोग, इलाक़ों की वीरानी ने उन्हें अलग-थलग कर दिया जिससे वह पुरानी यादों में खो गए। यह विभाजन का वह सियाह पक्ष था जिसने कुर्रतुल एन हैदर को लिखने पर विवश कर दिया कि अब 'हम वो लोग हैं जिनका कोई देश अपना नहीं'। स्मृति अतीत के अनुभवों का मानसिक अभिलेख है, ज्ञान का स्त्रोत है तथा अतीत और वर्तमान को जोड़ने में सेतु का काम करती है। आघात स्मृति का एक विशेष रूप है, इस सिद्धांत के अन्तर्गत भारतीय विभाजन और विस्थापन से हुए मानसिक आघात का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उनके अंतरसंबंधों का अध्ययन करना इस पत्र का उद्देश्य है। यह शोध पत्र बुनियादी तौर पर विस्थापन का दंश झेलने और उसके परिणाम स्वरूप विस्थापितों की मनोदशा, मानसिक वेदना एंव संमवेदना के अध्ययन का प्रयास है।

बीज शब्द : हिंसा, त्रासदी, विभाजन, विस्थापन, संस्कृति, आघात, संवेदना, स्मृति, हिजरत, मुहाजिर।

बीसवीं सदी को मानव इतिहास की हिंसक सदी कहा गया है। इस सदी के माथे पर कई कलंक हैं। दो विश्वयुद्ध झेलने के अलावा राजनीतिक–धार्मिक हिंसा, भाषा और सांस्कृतिक हिंसा, क्षेत्रीय और जातीय हिंसा, भावनात्मक और वैचारिक हिंसा के दाग़ भी इसके दामन में हैं। विभाजन के परिणामस्वरूप सामूहिक जीवन में जो सांप्रदायिक दंगे हुए उनका प्रभाव गहरा और स्थाई साबित हुआ। ये घटना उसी एक कालखंड में सीमित होने के बावजूद व्यापक परिपेक्ष्य की गुंजाइश रखती है। इस त्रासदी की छाया हमारे साहित्यिक व सांस्कृतिक रचनात्मक जीवन में भी बहुत गहरी नक़्श हुई जिसे विभिन्न लोगों ने भिन्न भिन्न नज़रिए से देखा और अलग अलग अर्थ देकर उसे लिपिबद्ध किया। भारत का विभाजन उपमहाद्वीप के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर किए गए इस विभाजन से समस्याओं का समाधान नहीं हुआ बल्कि नई समस्याएं पैदा हो गईं। साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा भारत के इस विभाजन में तक़रीबन एक करोड़ लोगों को बेघर कर दिया। उनके साथ अभूतपूर्व क्रूरता की गई। मनुष्य मानवता के सबसे निचले स्तर पर आ गया। अज्ञानता, पूर्वाग्रह, द्वेष और लहू के इस समंदर से गुज़रने वालों में अधिकांश उर्दू भाषी समुदाय के थे। इसीलिए इस विभाजन ने इन लोगों को अधिक प्रभावित किया। नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली 2004 में प्रकाशित अपनी पुस्तक भारत का विभाजन में अनीता इंदर सिंह लिखती हैं,

> ''इस विभाजन के साथ भी विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच हिंसा और दंगे भी आए लेकिन इस विभाजन के परिणामस्वरूप ऐसे किसी भी अन्य विभाजन की तुलना में अधिक जानें गईं। भारत के विभाजन में कितने लोग मारे गए, कितने लोग उजड़े (कतई तौर पर) कुछ पता नहीं। ये तादाद दो से तीस लाख तक कुछ भी हो सकती है। 1946 से 1951 के बीच लगभग नव्वे लाख हिन्दुओं और सिखों ने पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की सरहद में क़दम रखा और तक़रीबन साठ लाख मुसलमान पाकिस्तान गए''[1]

यहां पर कई प्रश्न उठते हैं, क्या विभाजन पर मतभेद कभी समाप्त हो सकते थे, यदि विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक राष्ट्रीयताएं एक साथ नहीं रह सकीं तो क्या विभाजन ही एक मात्र इस मसले का हल था। बँटवारे के बाद एक मुल्क

से दो मुल्क तो बन गए लेकिन हर भूमि विभाजन की तरह इसमें भी राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से नए प्रश्न खड़े हो गए। जिनका जवाब विभिन्न शिक्षाविद एंव इतिहासविद अपने अपने हिसाब से तलाश करते रहते हैं। इफ़्तेख़ार आरिफ़ का शेर है,''पयम्बरों से ज़मीनें वफा नहीं करतीं, हम ऐसे कौन ख़ुदा थे जो अपने घर रहते।''

साहित्य सृजन का उद्देश्य कठिनतम आज़माइशों के माहौल में भी सार्वभौमिक मानवीय सत्य तक पहुंचना है। स्थिति कितनी ही खराब क्यों न हो, साहित्यिक विमर्श, समाजशास्त्रीय ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक विमर्श से अलग अपनी अभिन्न पहचान रखता है। रचनात्मक और सहित्यिक अभिव्यक्ति और शैली की गिरफ़्त में आने के बाद लेखक किसी वर्ग विशेष का समूह का हो कर नहीं रह जाता। प्रत्येक राष्ट्र की साहित्यिक और रचनात्मक परंपरा उस राष्ट्र की मानसिक सजगताओं, मान्यताओं, रीति रिवाजो, भावनात्मक और आर्थिक जीवन शैली से प्रभाावित होती है। विभाजन के साथ ही साहित्य एंव रचना की दृष्टि से मानसिक और भावनात्मक अंतर विरोध और एक संघर्ष का वातावरण उत्पन्न होना लाज़मी था क्योंकि यह समय निश्चित रूप से भावुकता, उग्रवाद, अनियंत्रित राजनीतिक मतभेद और अपनी राष्ट्रीय पहचान पर ज़ोर देने का था। त्रीव मानसिक विखंडन और एक दूसरे के प्रति अविश्वास का था। सामूहिक आतंक, पागलपन, घबराहट और चारित्रिक पतन चरम पर था। विभाजन के बाद के माहौल में कई लेखकों के लिए अपना भावनात्मक संतुलन बनाए रखना मुश्किल हो गया था। साहित्यिक हलकों में एक नई पहचान की स्थापना को केंद्रीय मुद्दा दिया जाने लगा।

भारत विभाजन की पृष्ठभूमि में लेखकों के साहित्य का प्रमुख विषय खंडन है। सांस्कृतिक अलगाव की भावना और धुंधली अनिश्चित्ता की निरन्तर स्थिति ने उस अवधि के रचनात्मक साहित्य को आमतौर पर गहरी चिंता और अभाव की अभिव्यक्ति बना दिया। पलायन, दंगों और बेबसी की बाढ़ थमने के बाद वैचारिक और राष्ट्रीय पहचान का मुद्दा सामने आया। जिनके लिए अपने घर के उजड़ने, राज्यविहीनता और भूमिहीनता की पीड़ा इतनी तीव्र थी कि वो अपनी जातीय स्मृति का घेरा तोड़कर अस्थायी रूप से बाहर आ गए। उनके पीछे सामाजिक जीवन की अराजकता और आंतक की कहानियां थी और सामने अनिश्चित भ्रामक भविष्य की एक तरल तस्वीर। लोगों को घटनाओं के इस अचानक मोड़ एंव इतिहास की अप्रत्याशित करवट के बारे में सोचने का मौक़ा

ही नहीं मिला। मुनीर नियाज़ी इस पीड़ा को शब्दों में पिरो कर इस तह लिखते हैं। सुन बस्तियों का हाल जो हद से गुज़र गयीं, उन उम्मतों का ज़िक्र जो रस्तों में मर गयीं। यह आम आदमी के लिए सामूहिक आतंक और विशृंखलता का दौर था। और राजनेताओं के लिए अना की कश्मकश का। सामूहिक जीवन पूर्णता अस्त व्यस्त था और भावनात्मक उदवेग के उन्मादी वातावरण में रहते हुए प्रकृति के किसी सिद्धान्त, किसी मूल्य, किसी परंपरा, किसी सहिंता और किसी क़ानून को स्वीकार करने को तैयार नहीं था। साझी विरासत, मानवीय संबंधों की व्यवस्था, राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ आयी प्रकाश की किरण इसमें से किसी का कोई मतलब नहीं रह गया था। हम सब अपने आप से अजनबी हो गए। फैज़ उस धुंधली सुबह का चित्रण इस तरह करते हैं। ये दाग़ दाग़ उजाला ये शब गज़ीदा सहर, वो इंतेजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं। हिन्दुस्तानी भाषाओं में इस भयावह त्रासदी पर विभिन्न दृष्टिकोण से यर्थाथ और कल्पना के माध्यम से संवेदनाएं प्रकट की गयीं हैं। कहीं पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में तत्कालिक घटनाओं का मार्मिक चित्रण है तो कुछ लोगों ने इसके दीर्घकालिक प्रभावों से होने वाले मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक आघातों का बयान किया है। विभाजन के अनुभव पर आधरित उर्दू उपन्यासों में आग का दरिया (क़ुरतुल एन हैदर), उदास नस्लें, (अबदुल्ला हुसैन), आगंन, (ख़दीजा मस्तूर), बस्ती, (इंतेज़ार हुसैन) क़ाबिले ज़िक्र हैं।

> ''आग और ख़ून के इस समंदर में गुज़रने वालों की अक्सरियत उर्दू दां तबके से ताल्लुक़ रखती है। हिंदुस्तान से हिजरत करके पाकिस्तान जाने वाले और वहां से हिजरत करके हिंदुस्तान आने वाले दोनो फिरक़ों की मादरी ज़बान उर्दू ही थी। मुहजरीन के ये दोनो फिरक़े बैक वक्त ज़ालिम भी थे और मज़लूम भी। ऐसे हालात में उर्दू अदब में फ़सादात और हिजरत से मुताल्लिक मसाएल का ज़िक्र आना लाज़मी था''।[2]

विभाजन और दंगों के खूनी माहौल में कई लेखक साहित्य और ग़ैर साहित्य के बीच अंतर करना भूल गए। मानवीय मूल्यों के पतन और आस्था व विश्वास की शिकस्त के इस युग में सलीके के साथ लेखन के आदाब की परवाह किए बिना गहराई से सोचने के शिष्टाचार को बनाए रखना भी कठिन हो गया। इस तरह के मनोवैज्ञानिक माहौल मे अपने आप में भ्रमित होना या खुद को भावनात्मक

अतिवाद के रास्ते पर डालना आसान था। जोश मलिहाबादी की नज़्म, किस किस मज़े से हमने उछाली हैं औरतें, साचें में बेहयायी के ढाली हैं औरतें, शहवत की भट्ठियों में उबाली हैं औरतें, घर से बरहना करके निकाली हैं औरतें। निश्चित ही विभाजन की वारदात बहुत विचलित कर देने वाली थी, इन अशार में जोश की प्रतिक्रिया उनकी मानवीय चिंता, उनका दर्द उनके अनुभव की सच्चाई को व्यक्त करती है। ये किसी कवि या रचनात्मक व्यक्ति का दुख और क्रोध नहीं है बल्कि आम आदमी का क्रोध, क्षोभ और निराशा है जो न अपने ज़ज़्बात की सभ्यता पर क़ाबू पा सकता है और न ही अभिव्यक्ति पर नियंत्रण। विभाजन और उसके बाद के दंगे, पलायन का अनुभव, भूमिहीनता की भावना और मानवीय संबंधों की क्षति ने नासिर काज़मी की शायरी में एक नया अर्थ पाया। कुछ यादगार-ए-शहर-ए-सितमगर ही ले चलें, आये हैं इस गली में तो पत्थर ही चलें। पाकिस्तान चले गए लगभग सभी लेखक जिस त्रासदी से दो चार हुए वो त्रासदी थी अपनी जड़ों से कटने की, साझी विरासत में बंटने की, अपनी मिट्टी से बिछड़ने की और परायी ज़मीनों पर बसाए जाने की। इंतज़ार हुसैन अपने लेखन में नौस्टालजिया को जीते रहे और अपनी ज़मीन खोजते रहे। नासिर ने विभाजन की पीड़ा को अपनी शायरी में ढाल लिया। जॉन एलिया के लिए प्रवासन रोग बन गया। लिखते हैं, अब हमारा मकान किस का है, हम तो अपने मकां के थे ही नहीं, उस गली ने ये सुन के सब्र किया, जाने वाले यहां के थे ही नहीं। युद्ध केवल सैनिक ही नहीं लड़ते, जो लोग रचनात्मक अभिव्यक्ति का प्रयास करते हैं वह भी इन अनुभवों का बोझ उठाते हैं। बेदी की लाजवंती, मंटो की ठंडा गोश्त और खोल दो जैसी कहानियां रूमानवीय दर्द से पूरी तरह रचित हैं लेकिन पाठक चैन से एक पल भी शांत नहीं बैठ सकता। इन कहानियों का अध्ययन हमारे सामूहिक अतीत या इतिहास के अध्ययन मात्र नहीं हैं। भीषण हिंसा और आतंक की गहराइयों से उबरने के बावूजूद ये कहानियां मानवीय नियति और अनुभव के रचनात्मक दस्तावेज़ के रूप में सामने आती हैं। ये लोग बँटवारे और दंगों को विषय तो बनाते हैं लेकिन इसे बँटवारे और दंगों के साहित्य का हिस्सा नहीं बनने देते। उनमें दिखावे की भावुकता, आत्मदया, निष्क्रियता या पाखंड नहीं है। बौद्धिक ज़िम्मेदारी की भावना त्रीव भावनात्मक क्षणों में भी बनी रहती है। मुमताज़ शीरीं ने लिखा है कि कई लेखक स्वयं इस तूफ़ान की चपेट में आ गए और कइयों के मन इस त्रासदी की भयावहता से इतने प्रभावित हुए

कि कि वह कुछ लिखना चाहते थे लेकिन संभल कर लिख नहीं सके। ये त्रासदी बड़ी ही नहीं अपनी प्रकृति में इतनी भयानक थी कि किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि कि इसे कैसे प्रस्तुत किया जाऐ। अख्तर हुसैन रायपुरी ने सभी लिखने वालों से खासकर उर्दू लेखकों से इस मुश्किल समय में अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने और उसके इंसानी पहलुओं पर ग़ौर करने की अपील करते हुए कहा था के तारीख़ की इस कठिन मंज़िल में हमें अदब और इंसानियत दोनो से इंसाफ बरतना है। फसादात होते हैं और उसके ज़िम्मेदार हम इंसान हैं जो हिन्दू, मुस्लिम या सिक्ख के बहरूप में नज़र आते हैं।

इस दौर में मन्टो जैसे लेखक धार्मिक सीमाओं से मुक्त होने तथा साम्प्रदायिक मागों की परवाह न करने पर स्वयं पर गर्व करते थे और अपनी हिन्दू या मुस्लिम पहचान को मिटाकर मानवता के उँचे सिहांसन पर विराजमान हो जाने को वे प्रगति और आधुनिकता के लिए ज़रूरी करार देते थे। किसी खूनी मंजर की भयावहता और पीड़ा को समझने के लिए उसे दूर से देखना ज़रूरी है। मन्टो इस मायने मे असाधारण हैं कि हिंसा के अनुभव के बावजूद अपने रचनात्मक स्वभाव की गंभीरता और अपनी दिव्य क्षमता के कारण उन्होने खुद को स्थिति से अभिभूत नहीं होने दिया, हर तरह की भावुकता, सतही रूमानियत और ख़ूनीपन से खुद को बचाया। ज़ालिमों के जाल में फंसने के बजाए अपने किरदारों को सिर्फ इंसान के तौर पर देखने और समझने के पक्षधर थे। मन्टो ने होश और नीम बेहोशी दोनो सूरतों मे जाना था कि सरहदों का होना मनुष्यता के लिए मकानी ग़ुलामी से ज़्यादा नहीं। किसी को ये समझ में नहीं आ रहा था कि होश मंदी का इलाका कहां से शुरू हो कर कब बेहोशी की दुनिया पहुंच जाता है। दोनो की सीमाएं कुछ इस तरह गड्ड-मड्ड हो गयी थीं कि मन्टो खुद को नो मैन्स लैन्ड में महसूस करते। ''हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया था। पाकिस्तान आलम ए वजूद में आते ही आज़ाद हो गया था। लेकिन इंसान इन दोनों मुमलिकतों में ग़ुलाम था। तास्सुब का ग़ुलाम, मज़हबी जुनून का ग़ुलाम। हैवानयित ओ बरबरियत का ग़ुलाम।''[3]

उनका मानना था कि ये मत कहो इतने हिन्दुओं और इतने मुसलमानों का नरसहांर किया गया, यह कहो कि इतने मनुष्यों का वध किया गया। और ये त्रासदी इन मानो में बड़ी नहीं है कि इतने इंसानों को मार दिया गया हो असली त्रासदी यह है कि मृतकों को उनका अपराध बताए बग़ैर ख़त्म किया गया।

पाकिस्तान की स्थापना के उपरान्त मन्टो के शब्द हैं,

> ''समझ में नहीं आता था कि हिन्दुस्तान अपन वतन है या पाकिस्तान। और वह लहू किसका है जो हर रोज़ इतनी बेदर्दी से बहाया जा रहा है। वह हड्डियां कहां जलायी या दफ़न की जाएंगी जिन पर से मज़हब का गोश्त पोश्त, चीलें और गिद्ध नोच नोच कर खा गए थे। हिदू और मुसलमान धडाधड़ मर रहे थे। कैसे मर रहे थे क्यों मर रह थे, इन सवालों के मुख़्तलिफ जवाब थे, हिन्दुस्तानी जवाब, पाकिस्तानी जवाब, अग्रज़ी जवाब, हर सवाल का जवाब मौजूद था मगर इस जवाब में हक़ीकत तलाश करने का सवाल पैदा होता तो उसका कोई जवाब न मिलता, कोई कहता उसे ग़दर के खन्डहरात में तलाश करो। कोई कहता नहीं ये ईस्ट इडिया कम्पनी की हुकूमत में मिलेगा। कोई और पीछे हटकर उसे मुग़लिया खानदान की तारीख में टटोलने के लिए कहता। सब पीछे ही पीछे हटते जाते और क़ातिल और सफ़्फाक़ बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे। और लहू और लोहे की ऐसी तारीख़ लिख रहे थे जिसका जवाब तारीख-ए-आलम में कहीं भी नहीं मिलता''।[4]

मन्टो कभी विभाजन के पक्ष में नहीं थे और उन्होंने नवगठित पाकिस्तान जाने से इंकार कर दिया था। बँटवारा उनके ख़्याल से महज़ पागलपन था लेकिन एक घटना ने उन्हे भीतर तक झकझोर कर रख दिया था कि अगले ही दिन मन्टो परिवार समेत लाहौर चले गए। इस घटना का ज़िक्र उन्होने अपने एक खाके मुरली की धुन में किया है, ''मैंने श्याम से कहा, मैं मुसलमान हूँ क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मुझे क़त्ल कर दो। श्याम ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया, 'इस वक़्त नहीं, लेकिन उस वक्त जबकि मैं मुसलमानों के ढाए हुए मज़ालिम की दास्तान सुन रहा था, मैं तुम्हें क़त्ल कर सकता था''[5] परिस्थितियों में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ आ गया था। उन दंगों का मनोवैज्ञानिक पसमंज़र मन्टो समझ गए थे जो प्रतिदिन सैंकड़ों गुनाहगार लोंगों को मौत के घाट उतारे जाने का सबब था और मन्टो के हिजरत का भी। फ़तेह मोहम्मद मलिक की किताब सादत हसन मन्टो, एक ताबीर में एक उद्धरण है,

''मन्टो तहरीक ए पाकिस्तान से इस हद तक ला ताल्लुक थे कि जब पाकिस्तान क़ायम हो गया, फ़िरकावाराना फ़सादात की आग भड़क उठी और मन्टो के हिन्दुस्तानी दोस्तों तक ने उसकी इंसान पहचान को फ़रामोश करके उसके मुसलमान पर इसरार किया तब उसकी आँखें खुलीं और उसने इस हकीकत को तस्लीम किया कि वह ख़ुद तो बेशक दीन-ओ-मिल्लत और तहज़ीब व मुआशरत के छोटे बड़े इख़्तेलाफ़ात को ख़ातिर में ना लाने वाला इंसान हुआ करे मगर बोहरान की इस घड़ी में उसका मुक़द्दर मुसलमान क़ौम से ही वाबस्ता रहेगा। वहाँ उसका मुक़द्दर ना तो सेकुलरिज़्म के नाम पर निजात पा सकता है और नही अपने आप आफ़ाक़ी-ए-तर्ज-ए-फ़िक्र की बुनियाद पर। जहाँ फ़सादात में मुसलमान क़त्ल किए जा रहे होगें वहाँ क़ातिल का खजंर उसे भी वाजिब-ए-क़ातिल ठहराएगा।''[6]

मंटो के अफ़साने टोबा टेक सिहं में बँटवारे की त्रासदी का जो मार्मिक चित्रण किया है वह अकल्पनीय परन्तु सत्य है। टोबा टेक सिहं के माध्यम से आम लोंगों पर दमन के प्रभाव को दर्शाया है। मन्टो तत्कालीन सरकार की अतार्किक मानवीयता और संकीर्ण दृष्टि को चिन्हित करते हैं जिन्होने विभाजन को स्वतंत्रता की महान उपलब्धि समझकर अपने समुदायों में महिमा मंडित किया। टोबा टेक सिहं बँटवारे के दो तीन साल बाद की कहानी है। लाहौर के पागलखाने में बंद पागलों की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक विश्लेषण उसके मुख्य पात्र बिशन सिहं के माध्यम से किया गया है। एक उहापोह की स्थिति केवल उन पागलों के दिमाग में चल रही थी बल्कि उन लाखों लोगों के दिमाग में भी जो रातों रात अपने घरों से बेघर होने वाले थे। मन्टो ने इस पीड़ा को झेला था उनका गुस्सा उनकी विभाजन की कहानियों में उभरकर सामने आया है। छोटे-छोटे प्रसगों और संवादों के माध्यम से मन्टों ने त्रासदी का पूर नक़्शा खींचा है। पागलों के तबादले जैसे सवेंदनशील मुद्दे पर इस क़दर असंवेदनशील होकर फ़ैसला लेना इस बात को सोचने पर विवश करता है कि पागल वो थे जो अंदर थे या वो जो बाहर ? असंवेदनशीलता का चरम उनकी कहानी का अंत है जहां बिशन सिंह की लाश ख़ारदार तारों के बीच पड़ी है जिसके एक तरफ हिंदुस्तान है और दूसरी

तरफ पाकिस्तान और दो मुल्कों के बीच दरम्यानी जगह खोजता एक बिशन सिह, खुद मन्टो के भीतर मौजूद था। गम, गुस्सा, बौखलाहट, दूसरी जगह पर बसाने क दोहरा चरित्र, लोग बँटवारे का मतलब ही नहीं समझ पाये। पीड़ित अपने गौरवशाली अतीत और खडिंत भविष्य को याद करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते, अपने एक ख़त में वह लिखते हैं कि ''मेरा मुल्क कटकर आज़ाद हुआ उसी तरह मैं कटकर आज़ाद हुआ और चचा जान ये बात तो जैसे हमादान आलिम से छुपी हुई नहीं होनी चाहिए कि जिस परिंदे के पर काटकर आज़ाद किया जाएगा उसकी आज़ादी कैसी होगी''[7]

मन्टों की कहानी दर्शाती है कि विभाजन सांप्रदायिक हिंसा का रूपक बन गया था। दोनो देशों के लोग पहचान के सकंट से पीड़ित थे क्योंकि वह खुद को कहीं जोड़ नहीं पा रहे थे। एक तरफ वह संयुक्त अतीत के मोह से निकल नहीं पाये थे दूसरी तरफ भयानक वर्तमान हमेशा उनके गौरवशाली इतिहास की याद दिलाता रहता। उनकी कहानी ''खोल दो'' का एक पात्र दंगों की भेंट चढ़ गयी बेटी की तलाश में अस्पताल पहुंच जाता है जहाँ उसकी बेटी सकीना की याददाश्त बस एक पीड़िता की शिकार की याददाश्त तक सीमित रह जाती है जो एक निर्मम सामूहिक बलात्कार के बाद अस्पताल में मृत शय्या पर पड़ी है। डाक्टर के शब्द 'खोल दो' सुनते ही उसके अवचेतन मन से बिना रुके उथल पुथल की बिखरी हुई छवियां बाहर आ गयीं। मन्टो ने यहां अपने व्यक्तिगत आघात को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है जो पूरे भारतीय और पाकिस्तानियों का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। 'खोल दो' में मन्टों सरकार और स्वयंसेवी संगठनों की पाखंडी कार्यवाइयों के उजागर करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है। उनकी कहानी शरणार्थियों की वास्तविक समस्याओं का मार्मिक चित्रण है। जो कथाकथित उच्च पद पर विराजमान लोगों की पाखंडी कार्यवाइयों से पीड़ित थे।

अतीत क्या है? इतिहास, धर्म, नस्ल, अकीदा, जातीयता, पौराणिक कथाएं, परंपराएं, रस्म-ओ-रिवाज। स्मृति अतीत की घटनाओं का भंडार गृह है। व्यक्ति के मनोविज्ञान में यादें बार-बार तब सताती रहती है जब उनका अतीत की घटनाओं से गहरा संबंध होता है या उनके प्रिय व्यक्ति को हुई दर्दनाक घटनाओं से गहरा रिश्ता हो। यह याददाश्त हमेशा दर्दनाक और दुखदायी नहीं होती हैं कभी-कभी अच्छी प्रतिक्रिया भी देती हैं, दुख तब देती हैं जब व्यक्ति के दिमाग में

बार-बार घूमती रहती हैं और इस बँटवारे के इतिहास का ये भी एक सियाह पक्ष है कि दो समुदायों के बीच शांति, एकीकरण और सद्भाव स्थापित नहीं कर पाया। इस मानवीय त्रासदी ने लेखकों को प्रभावित किया। अधिकांश लोंगों ने इस बँटवारे को मानसिक रूप से स्वीकार नहीं किया। धार्मिक कट्टरता से उपजे उन्माद और घृणा की अपने लेखों में कड़ी निंदा की। शरणार्थियों की समस्या को विभाजन के दौरान फैले सांप्रदायिक दंगों का परिणाम समझा गया लेकिन जब तूफ़ान थमा तो स्थिति स्पष्ट हुई के प्रवासन अपने आप में एक गंभीर समस्या है। एक प्रवासी की पहचान तब असुरक्षित हो जाती है जब उसे विदेशी भूमि और उसकी संस्कृति को आत्मसात करने पर मजबूर होना पड़ता है। अहमद मुश्ताक़ का शेर है, पता अब तक नहीं बदला हमारा, वही घर है वही कस्बा हमारा।

कुछ लेखक 1947 के आसेब से बाहर निकले और इस पूरी घटना को एक अलग नज़रिए से देखा, सांस्कृतिक विरासत और मूल्यों को साझा करने में गहन जागरूकता का परिचय दिया, उदाहरण के लिए इंतज़ार हुसैन, जिनका सम्पूर्ण रचनात्मक जीवन एक अलग पहचान रखता है। उर्दू कथा साहित्य के इतिहास में इंतज़ार हुसैन एक महत्त्वपूर्ण नाम है उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में ''बस्ती'', ''चाँदगहन'', ''तज़किरह'' और ''आगे समुंदर है'' शामिल हैं। इंतज़ार हुसैन के सभी उपन्यासों या कहानियो में पुरानी यादों का प्रभाव है। ''बस्ती'' में ये प्रभाव हर पन्ने पर महसूस किये जा सकता है, इन प्रभावों के कारण इन कहानियों का एक अलग मिज़ाज है। विभाजन के साथ हुसैन का रिश्ता सामान्य रिश्ता नहीं है। उन्होने सांप्रदायिक सद्भाव के नुकसान पर शोक नहीं जताया ना ही उन्होंने मन्टो के अलावा, उस छुपी हुई बुराई को उजागर करने का प्रयास किया, जिससे मनुष्य बना है, जो विभाजन के दौरान खुद ही दिखायी देने लगी। उन्होंने कुर्रतुल-एन-हैदर की तरह अतीत की रूमानी ट्रष्टि का गुणगान नहीं किया बल्कि उन्होनें विभाजन को एक नए युग की शुरूआत के रूप में देखा, उन्होने अतीत को उसके लिए नहीं, बल्कि वर्तमान के लिए दोहराया,

> ''इंतज़ार हुसैन तब्दीली से डरते हैं जिसकी एक सूरत हिजरत भी हैं, जो ज़मानी भी है और मकानी भी। इस हिजरत के ख़्वाब से बचने की एक ही सूरत जो इंतज़ार हुसैन के नावलों का मुस्तक़िल मौज़ू है यानी तारीख़ से फ़रार। चुनांचे तारीख़

से फ़रार की एक सूरत यह है उसे नावॅल बना दिया जाए। तख़य्युल की चमक से उसकी तारीकियों को ढाप दिया जाए। हक़ीक़त को अफ़साने में बदल दिया जाए। असातीरी रंग दाख़िल करके उसमें रूमानियत भर दी जाए''[8]

1947 के बाद उन्होंने यह सब बहुत उत्साहपूर्ण ढंग से लिखा और कहा फ़सादात के अफ़साने के बारे में बुनियादी सवाल यह है कि ये दंगों की कहानियां हैं भी या नहीं। यह सच है कि इन कहानियों का विषय दगें हैं लेकिन समस्या ये है कि इन दंगों का वर्णन केवल हत्या, अपहरण, बलात्कार, आगज़नी जैसी घटनाओं के माध्यम से किया गया है जो दंगों की एक सीमित अवधारणा है। इतिहास विभाजन का महिमामंडन कर सकता है लेकिन इंतज़ार हुसैन नवनिर्मित सरहदों के लोंगो की दर्दनाक स्मृतियो को दिखाकर इस अवधारणा को नष्ट कर देते हैं। पाकिस्तान में विस्थापित मुसलमानों को अनगिनत और अविस्मरणीय पीड़ा एंवम तकलीफों का सामना करना पड़ा। अपने एक निबंध ''हमारे अहद का अदब'' में उन्होंने लिखा है,

''उस वक्त हम सब पाकिस्तानी मुहाजिर थे ग़ैर मक़ामी भी और मक़ामी भी। इसलिए सवाल असल में एक इलाके से दूसरे इलाके में नक़ल-ए-वतन का नहीं बल्कि एक पुराने मुल्क से एक नए मुल्क में हिजरत का था। कुछ लोगों ने यहीं बैठे-बैठे अपने आपको पुराने मुल्क से दूसरे मुल्क में दाख़िल होते देखा, उनके पैरों के नीचे की ज़मीन जो पहले हिंदुस्तान थी वह अब पाकिस्तान बन गयी थी''[9]

इंतज़ार हुसैन स्वयं एक मुहाजिर थे जो पहले रूपनगर से व्यासपुर और फ़िर वहां से लाहौर हिजरत कर गए। स्मृति और नॉस्टैलजिया उनके साहित्य के दो महत्त्वपूर्ण पहलू और प्रेरक शक्तियां भी हैं जिनके माध्यम से उन्होंने प्रवासन की उदासीनता के साथ पीड़ितों के व्यक्तिगत संस्मरणों पर ज़ोर दिया है। स्वंय के अनुभवों को पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है जो कल्पना एंव यर्थाथ के मध्य धुंधली सी सरहद बनाता है। ये दुखद स्थिति उन्हें याद दिलाती है कि अतीत कितना सुंदर था। लेखक उन लोगों, स्थानों, पेड़ पौधों, परिन्दों अपने वतन की तहज़ीबी परंपराओं की यादों को अतीत में पुकारते हए व्यक्तिगत पीड़ा, नुकसान एंव विभाजन के घाव भरने की कोशिश करते हैं।

''जाड़े की रातें लम्बी होती हैं जंग की रातें उनसे ज़्यादा लम्बी होती हैं, ना कदमों की आहट, ना बच्चों का शोर-ओ-गुल, न बच्चों को पुकारती हुई माओं की चीख-ओ-पुकार। बस एक दम से सन्नाटा हो जाता है। सन्नाटा, फिर सायरन और सीटियां। फिर कहीं दूर आसमान पर उड़ते जहाज़ों की बहुत मद्धम घों घों। मेरी समझ में इन रातों को गुज़ारने का तौर नहीं आ रहा था''[10]

नॉस्टैलजिया शब्द ग्रीक भाषा से आया है जिसका अर्थ है ''घर लौट जाने की तीव्र इच्छा''। इंतज़ार हुसैन भी इसी वर्ग से थे उनकी कहानियों में यही स्थिति मिलती है। अपने वतन वापस जाने की इच्छा को लेकर अतीत में उदासीन स्थिति को एक बीमारी माना जाता था जो निराशा और अवसाद से ग्रस्त रहते थे। उन दिनों हिन्दू और मुसलमान बिना किसी भय के एक दूसरे के त्योहारों में भाग लेते थे। युवा हुसैन दिवाली की रात अपने पड़ोसियों की छ़त से दीपक उठा लाते थे और इस पर किसी को कोई एतराज़ नहीं होता। इसका ये अर्थ नहीं कि वहां जीवन पूर्णता आनन्दमय था, मगर लोग अप्रिय पहलुओं को याद नहीं रखना चाहते, वह हमेशा अपने अतीत के बारे में चयनात्मक होते हैं, वही बातें याद रखते हैं जो याद रखना चाहते हैं अगर कहीं कोई हिंदू-मुस्लिम दंगा होता भी है तो बेहतर है कि उसे याद न रखा जाए। क़ाज़ी जावेद अपने एक उद्धरण में इसके विषय में लिखते हैं, ''विषाद, कई अन्य विचारों और भावनाओं की तरह हमारे जीवन को प्रभावित करता है यह हमें पिछले क्षणों और स्थानों में उन सामग्रियों की तलाश करने के लिए प्रेरित करता है जो हमारी वर्तमान स्थिति की अप्रियता को ठीक कर सकते हैं''[11]

इंतज़ार हुसैन उपन्यासकारों की इस पीढ़ी से हैं उनकी कहानियों में भारत की साझी संस्कृति निहित है। उनके पात्र अतीत में अटके हुए हैं और कभी-कभी ऐसा लगता है कि मानो ये पात्र अपने प्रवासन पर पछता रहे हों। स्पष्ट है कि प्रवास ने लोगों के दिलों में नफ़रत की दीवार खड़ी कर दी थी। हुसैन के लिए प्रवासन एक सामूहिक त्रासदी है,जिसमें सामंतवादी विचारधारा वाला वर्ग अपनी जड़ों से उखाड़ कर अन्य भूमि पर बसने की वास्तविकता को समझने में विफल रहा। खोई हुई यादो की तलाश, कर्बला से लाए गए कफ़न को 25 साल बाद सूरज दिखाने की इच्छा, कोयल की आवाज़ और नीम के पेड़ की

तलाश आदि यूपी की प्राचीन संस्कृति विभाजन पूर्व शहरी जीवन का हिस्सा थी मगर लाहौर और कराची में स्थिति बिल्कुल भिन्न थी एक निबन्ध में वो लिखते हैं कि लाहौर में जहां वह रहते हैं वहा सीधी और चमकदार सड़कें हैं, जहां बसें चलती हैं वे न तो किसी को रास्ता भटकने देती हैं और न ही किसी की कल्पना को उत्तेजित करती हैं वह एक पेड़ की कटाई से इतने व्यथित हुए कि उन्होने उस पे एक कालम लिख डाला ये बिल्कुल उसी तरह था कि जैसे-जैसे प्रकृति पर आधुनिक का कब्जा हो गया और बजरी पर कंकरीट और डामर का एकाधिकार। हुसैन को अपनी आंतरिक दुनिया और पुरानी यादों में सांत्वना मिलती गयी जिसका सबसे अच्छा उदाहरण उनके 1980 के उपन्यास बस्ती है। इस संबंध में खालिद अशरफ इस उद्धरण में लिखते है, ''इंतज़ार हुसैन उर्दू के ऐसे लेखक हैं जिनके उपन्यास और कथा साहित्य किसी न किसी रूप में प्रवास, विभाजन और उससे उत्पन्न मानवीय स्थित का वर्णन करते हैं। ये वह लोग हैं जो द्विराष्ट्र सिद्धान्त की वास्तकिता और निहितार्थ को समझने की कोशिश कर रहे थे''[12] इंतज़ार हुसैन के दिल में वह पुरानी सभ्यता जीवित है। नये परिवेश की सभी परिस्थितियां उन्हें उनके अतीत के मूल्यो ंकी याद दिलाती हैं। वे मानसिक रुप से वहां यात्रा करते हैं। यही उदासीन स्थिति उन्हें वर्तमान स्थिति पर शोक मनाने के लिए मजबूर करती है। यह उपन्यास बस्ती का स्वरूप उनके लिए एक आदर्श रुपक गांव जिसमें पुराने मूल्य जीवित थे। उस माहौल में आशावाद का माहौल था लेकिन चांदगहन में यह स्थिति है, ''फसाद शुरू हुआ और आग की तरह फैल गया, हर मोहल्ले पर योरिश और हर बस्ती पर हमले की तैयारियां हैं। ये खौफ़नाक शोर आदमी को पागल कर देने के लिए के लिए काफ़ी था, इस फ़साद की नौइयत मेरी समझ में नहीं आती, सारे माहल्ले में खौफ़-ओ-हरास फैला हुआ है, हर चेहरे पर हवाइयां उड़ती नजर आती हैं। ये कोई बड़ी कयामत है 1857 से भी बड़ी कयामत''[13]

ये उदधरण बताते हैं कि इंतज़ार हुसैन के विचारों में उदासीन दृष्टिकोण बहुत साफ है। उनका पहला उपन्यास चांदगहन 1953 में प्रकाशित हुआ जबकि बस्ती 1980 में आया लेकिन उनके सभी उपन्यासों में परिवर्तन का विषय हर जगह है यह परिवर्तन लौकिक, स्थानिक और मनोवैज्ञानिक है। वह अपने उपन्यास तज़किरह में लिखतें हैं, जितना मैं जी रहा हूं मैं अतीत में जी रहा हूं। उनके रवैये के बारे में रज़ी आबिद लिखते हैं,

''इंतज़ार हुसैन के नावलों का मौजू तबदीली है, ये तबदीली ज़मानी भी है और मकानी भी और नफसयाती भी। यह महज़ इत्तेफ़ाक़ है कि वह यूपी से हिजरत करके पाकिस्तान आ गए, हालाँकि हकीकत ये है कि अगर इंतज़ार हुसैन हिजरत न भी करते तो भी वह ज़माने में मुहाजिर होते, बिल्कुल ऐसे ही जैसे बस्ती का सुरेन्द्र, जो खुद अपने देश में मुहाजिर है। क्या उसके इस करब को भी नॉस्टालजिया समझ कर नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है।''[14]

बस्ती का समय पूर्वी पाकिस्तान से अलग होने कुछ समय पहले का है। यह बस्ती यूपी के एक कस्बे रूपनगर में आबाद है। 1974 में प्रोफेसर ज़ाकिर पाकिस्तान चले गए लेकिन उसकी बचपन की माशूका साबरा नहीं आ सकी, प्रोफेसर ज़ाकिर की प्रेमिका और उसकी यादें उसी शहर में हैं जो ज़ाकिर को जीवन भर बेचैन रखती हैं। इस उपन्यास में ज़ाकिर और साबरा के साथ अफ़ज़ल, उमर ख़ान, सलामत और अजमल जैसे अन्य पात्र भी मौजूद हैं। ज़ाकिर का घर, चाय घर (शिराज़) और बाज़ारों का इतने मनमोहक ढंग से उल्लेख किया है कि ये स्थितियां विभिन्न पात्रों में एक उदासीन प्रवृति पैदा करती हैं और उनकी यादों में बस जाती हैं। इन यादों में खूबसूरत नज़ारे उनके दिल-ओ-दिमाग़ को तर-ओ-ताज़ा कर देते हैं। प्रोफेसर का भावनात्मक लगाव और पुरानी यादों में उनका गृहनगर बसा हुआ है जहां गौरैया चहचहाती है, कोयल गाती है, पेड़ झूमते हैं और बन्दर मस्ती करते हैं, वहां इंतेज़ार हुसैन रहते हैं। उनके रमणीय निवास में मानव और प्रकृति के बीच, वास्तविक और अलौकिक के बीच कोई दूरी नहीं है। वास्तव में दोनों दुनियाएं एक दूसरे से मिलती हुई दिखायी देती हैं। एक दूसरे से कोई संक्रमण नहीं है बल्कि एक सतत प्रवाह है जिसमें सब कुछ यहां तक कि घर, सड़कें, पेड़, भूत प्रेत जीवन का एक अविभाज्य घटक प्रतीत होते हैं। दुख की बात है कि ये आवास केवल फंतासी में मौजूद है। वह अपनी स्मृतियों के बारे में इस प्रकार लिखते हैं, ''गुमशुदा पेड़, गुमशुदा परिंदे, गुमशुदा सूरत, नीम के मोटे टहने में पड़ा हुआ झूला, साबरा, लम्बे झोंके, नींब की निबोंली, सावन कब कब आवेगा, बूंद से भीगे गाल पर गिरी हुई गीली लट, ज्यों मोरी मां का जाया, डोली भेज बुलावेगा, दूर के पेड़ से आयी हुई कोयल की आवाज़।

कोयल की आवाज़, अम्मी ने सुनी तो अजब तरह चौंकी, आए हे कोयल बोल रही है, फिर बिल्कुल चुप हो गयीं। कान कोयल की आवाज़ पर लगे हुए और फ़िर मैंने देखा कि उनकी आंखें भीगने लगी हैं।''[15]

उपरोक्त उद्धरण में जाकिर की मां की उदासीन स्थिति को अच्छी तरह समझा जा सकता है उनके गांव रूपनगर में उनके घर के पास कोयल की आवाज़ सुनायी देती थी, वही आवाज़ उनकी मां को भावुक कर देती है इससे पता चलता है कि अपनी माँ के अतीत की सुखद यादें उसे बेचैन कर देती थीं। इसी प्रकार एक अन्य जगह पर पिता के बारे में लिखते हैं, ''मैं तो खुद चाहता था कि चलने से पहले रूपनगर का एक फेरा लगा लूं, बुजुर्गों की क़ब्रों पर आख़िरी फातेहा तो पढ़ ही ली होती, अब्बा जान रुके फिर बोले और कम-से-कम अपना कफन तो ले आता, रुके और उससे मुखातिब हुए, बेटे वहां तो हम ने अपने कफन दफन का सब इंतज़ाम कर रखा था, क़फन आया रखा था कब्र की जगह भी तय कर ली थी बस अज़ीज़ को इतनी ज़हमत करनी पड़ती कि बेरी की चार टहनियां तोड़कर हमें गुसल दे दें और कंधा दे कर क़ब्र में उतार दें मगर यहां कोइ इंतज़ाम नहीं है सब इंतज़ाम तुम्हें करना है''[16]

उपरोक्त पैराग्राफ से पता चलता है कि बुज़ुर्ग अपने अतीत अपनी मातृभूमि से कितना प्यार करते हैं उन्हें उनके अतीत से अलग नहीं किया जा सकता। किसी तरह अगर उन्हें वह जगह छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़े तो उनका पूरा अतीत उनके दिमाग से नहीं मिटता और वे बार-बार अपने अतीत की खूबसूरत यादों में खोये रहते हैं। दशकों पहले पलायन कर चुके ये बुजुर्ग अब भी अपनी नयी भूमि और उसकी बदलती हुई वास्तविकताओं से परिचित नहीं हो पाए हैं क्योंकि पुरानी यादों और पुराने मूल्यों के बिना उनका व्यक्तित्व अधूरा है। लिखते हैं, ''फिर पनाह देने वाले और पनाह लेने वाले मिलकर उन्हें याद करते हैं जिन्होंने ज़मीन पकड़ी और अपने घरों को और बुज़ुर्गों की क़ब्रों को नहीं छोड़ा। उन्हें ध्यान में लाते जो साथ-साथ निकले मगर रास्ते में बिछड़ गए और जिन्हें वह अजनबी राहों में बे-गोर-ओ-कफ़न छोड़ आए। वह मिलकर इन सब पीछे रह जाने वालों को एक मलाल के साथ याद करते। दिल उनके भर आते और आखें डबडबाने लगतीं और फिर आखें पोछते और अगले दिन की सोचते कि यहां कैसे गुज़र बसर करनी है''[17]

अफज़ल बट के नज़दीक बस्ती अतीत के माहौल को जीवित रखने का

न केवल एक प्रयास है बल्कि उन खोये हुए दिनों की कहानी भी है जिसमें ज़िन्दगी बड़ी सादगी और मासूमियत के साथ एक अजीब खेल खेलती है। बस्ती में विभाजन, पलायन, सांस्कृतिक संकट और नैतिक मूल्यों के ह्रास का विलाप है। वह स्वयं प्रवास की कठिनाइयों से गुज़रे इसलिए सीमा पार की सड़कें, बाज़ार, पुराने रिश्तेदार और उनसे जुड़ी घटनाएं उनके उपन्यासों का हिस्सा हैं। उनके उपन्यासों में मातृभूमि के अलगाव प्रवासन खोए हुए अतीत के सांस्कृतिक और भावनात्मक संबन्धों की कहानियां हैं। अतीत की ये स्मृतियां पूरे उपन्यास में दिखायी देती हैं रूपनगर का वातावरण जीवनशैली संस्कृति और रीति रिवाज उन्हें लगातार अतीत की याद दिलाते हैं। एक जगह लिखते हैं ''वही एक बस्ती अपने एक बासी के लिए कि, हिजरत कर गया है पहले से बढ़ कर बामानी हो गयी कि उसे वह ख़्वाबों में देखता है और दूसरे के लिए उसके सारे मानी जाते रहे कि वह इसी देश में है मगर कभी उसके यहां इस बस्ती को दोबारा देखने की आरजू पैदा नहीं होती। हिजरत नें रुपनगर को कितना बामानी बना दिया है''[18]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि इंतज़ार हुसैन अपने गांव की एक एक निशानी और उससे जुड़े इतिहास और अपने बचपन की यादों को लेकर कितना चिंतित हैं। मनुष्य प्रगतिगामी है, अतीत चाहे कैसा भी हो इंसान को वह खूबसूरत ही लगता है और यही यादें उसके जीवन की अनमोल यादें बन कर रह जाती हैं। लेकिन इन मधुर यादों का एक विशेष कारण है कि जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है मूल्य बदलते जा रहे हैं और नया युग पिछले युग से बदतर होता जा रहा है, हर जगह लोग अपने ही मानस में भ्रमित हैं। वैचारिक बहसें हर जगह बदल रही हैं जहां अतीत शांतिपूर्ण था लेखक अवश्य ही अतीत में जीना पसंद करेगा। इतिहास और कल्पना इस तरह एक दूसरे से गुंथे हुए हैं कि उन्हें अलग करना मुश्किल हो जाता है ऐसा इसलिए है क्योंकि वह अपने अतीत का इतिहास बताने से परहेज़ नहीं करते हैं। बस्ती में स्मृतियों की पंक्तियां इतनी गहरी हो गयी हैं कि वह कल्पना से निकलकर स्मृतियों का अथाह सागर बन गयी हैं लेकिन अतीत की यादों का ये सिलसिला इतना दिलचस्प है कि कोइ भी इसमें खो जाता है। ज़ाकिर अपनी कहानी में कहते हैं, ''मेरी यादें ही मेरा जंगल हैं यह जंगल कहां से शुरू होता है? नहीं... मैं कहां से शुरू करुँ और वह फिर से जंगल में था, मानो वह जंगल के अंत तक पहुंचना चाहता हो जैसे कि वह अपनी तलाश कर रहा हो''[19]

इंतज़ार हुसैन का यह उपन्यास अपने समय की त्रासदियों को देवमालाई सन्दर्भ और कहानियों के सन्दर्भ में वर्णित करते हुए इतिहास की निरंतरता में मनुष्य के हाथों बस्तियों के विनाश की कहानी कहता है। भारत के विभाजन के बाद उनका रूपनगर और व्यासपुर गांव छोड़ कर लाहौर आना, ज़ाकिर का पार के घने जंगलों में भटकना, कभी अतीत को देखना कभी वर्तमान को प्रतिबिंबित करना, उपन्यास की कहानी इस तरह अंतरात्मा में उतरती है और अपनी पहचान का पता लगाती है। एक कठिन यात्रा चलती रहती है। अतीत की इस खोज नें उन्हें अपने लेखन में भारत के मुसलमानों के पिछले प्रवासन और कष्ठों के अनुभव को शामिल करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रयास में उनके उपकरण धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ मुस्लिम पौराणिक पात्र और प्रतीक भी थे। अपने एक निबंध 'इन्तेमायी तहज़ीब और अफसाना' में लिखा है,

> ''मैं अफसाना लिखता हूँ, खोये हुवों की जुस्तजू करता हूँ और आतिश-ए-रफ्ता के सुराग का सिलसिला शुरू हो जाए तो ये बात सन सत्तावन तक महदूद तो नहीं रह सकती, पहुंचने वाला मैदान ए कर्बला तक भी पहुंच सकता है और इससे पीछे जंग-ए-बदर तक भी, कि ये हमारी तारीख़ की अव्वलीन आग है''[20]

बस्ती में एक ऐसी बस्ती का ज़िक्र है जो नायक के सामने है। यह समझौता पाकिस्तान को सन्दर्भ्रित करता है। यही वह बस्ती है जिसमें उन्हें कठिनाइयों और कष्टों का सामना करना पड़ा, यही कारण है कि वह रूपनगर और बस्ती के बीच फंसे हुए हैं हालांकि बस्ती का अस्तित्व उन्हें प्रिय है और वह उसी की शांति की तलाश में हैं जो उन्हें रूपनगर में मिली थी। वो खोये रहते हैं अतीत में, पेड़ों और पक्षियों में, खोये हुए चेहरे, नीम की मोटी शाख में। उपन्यास के नायक ज़ाकिर के लिए विषाद की स्थानिक दूरी बहुत लम्बी है। काली मंदिर से कर्बला तक, कर्बला से किले तक, किले से रावण तक, सब कुछ एक जैसा था।

इस सारी चर्चा से पता चलता है कि इंतज़ार हुसैन के उपन्यास बस्ती में उदासीन गुणों के सभी आयाम समाहित हैं, इस उपन्यास में जहां रुपनगर से जुड़ी यादें उन्हें बेचैन करती हैं वहीं उसकी दीवारें और तमाम तथ्य और मूल्य उनके दिल व दिमाग पर अपना रंग जमाए हुए हैं। बस्ती इंतज़ार हुसैन का प्रतिनिधि

उपन्यास है, इंतज़ार हुसैन के कइ अन्य उपन्यास हैं लेकिन बस्ती उन में सबसे महत्त्वपूर्ण है और उदासीन प्रवृतियों में पहले अक्षर के रुप में खड़ा है। इस संबन्ध में यह भी सवाल उठाया गया है कि दंगों के विषय में लिखते समय क्या वह सिर्फ एक लेखक के तौर पर लिख रहे हैं, क्या एक नागरिक के रूप में उनकी भूमिका उनकी साहित्यिक स्थिति को प्रभावित करती है या नहीं? स्पष्ठ है कि मनुष्य समाज में एक से अधिक स्तरों पर एक साथ रहता है इसीलिए ये रचनाएं न केवल भावनाओं के धरातल पर हमसे संवाद स्थापित करती हैं बल्कि हमें मानव अस्तित्व और उसके रहस्य से भी परिचित कराती हैं। अक्सर हमें अपने अतीत और वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के बारे में भी सोचने का रास्ता दिखाती हैं। प्रतीत होने वाले सामान्य और घृणित पात्र बड़ी और अधिक असाधारण और सामाजिक समस्याओं की ओर इशारा करते हैं और इस प्रकार न केवल इतिहास के लिए बल्कि मानवता की हमारी समझ के लिए भी एक रूपरेखा प्रदान करते हैं। तीन नावेल निगार में रज़ी आब्दी लिखते हैं, ''कुछ लोग अभी तक इस मखमसे में गिरफ्तार हैं कि पाकिस्तान एक अमानत है या एक ज्योग्राफियाइ और सियासी हक़ीक़त है और इसी वजह से कभी-कभी यह मुबहम सा सवाल भी ज़हन में उभरता है कि क्या पाकिस्तान ठीक बना था?''[21]

संदर्भ

1. पृष्ठ 192, मन्टो हक़ीकत से अफ़साने तक, दिल्ली किताब घर, 2012
2. पृष्ठ 161, बरसग़ीर में उर्दू नावेल, ख़ालिद अशरफ, एजूकेशनल पब्लिशिगं हाउस, दिल्ली
3. पृष्ठ 190, मुरली की धुन, गंजे फ़रिश्ते, सआदत हसन मन्टो, साकी बुक डिपो दिल्ली 1993
4. पृष्ठ 189, उपरोक्त
5. पृष्ठ 187, उपरोक्त
6. फतेह मोहम्मद मलिक की किताब, सआदत हसन मन्टो, एक नयी ताबीर, बहवाला शमीम हनफ़ी, रेख़्ता
7. पृष्ठ 165, चचा साम के नाम पहला ख़त, उपर नीचे और दरमियान, सआदत हसन मन्टो, गोश ए अदब, लाहौर, 1954
8. पृष्ठ 97, तीन नावेल निगार, रज़ी आब्दी, किताबी दुनिया 2001
9. पृष्ठ 94, अलामतों का ज़वाल, इंतज़ार हुसैन मकतबा जामिया लिमिटेड दिल्ली 2011

10. पृष्ठ 144.145, इंतज़ार हुसैन, मकतबा जामिया लिमिटेड दिल्ली 1980
11. पृष्ठ 27, क़ाज़ी जावेद, पुरानी यादों के बारे में कुछ यादें मासिक पत्रिका 1986
12. पृष्ठ 184, बरसग़ीर में उर्दू नावेल, ख़ालिद अशरफ, एजूकेशनल पब्लिशिगं हाउस, दिल्ली
13. पृष्ठ 99, चाँद गहन, इंतज़ार हुसैन, अर्शिया पब्लीकेशन्स दिल्ली 2013
14. पृष्ठ 91, तीन नावेल निगार, रज़ी आब्दी, किताबी दुनिया 2001
15. पृष्ठ 86, इंतज़ार हुसैन, मकतबा जामिया लिमिटेड दिल्ली 1980
16. पृष्ठ 133, उपरोक्त
17. पृष्ठ 80, उपरोक्त
18. पृष्ठ 127, उपरोक्त
19. उपरोक्त
20. पृष्ठ 21,
21. पृष्ठ 103, तीन नावेल निगार, रज़ी आब्दी, किताबी दुनिया 2001

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सीता हरन कुरतुल एन हैदर एजूकेशनल पब्लिशिगं हाउस, 1998
2. नुस्खा हाय वफ़ा, एजूकेशनल पब्लिशिगं हाउस, 2009
3. दीवान ए नासिर क़ाज़मी, मकतब ए ख़्याल, लाहौर 1981
4. फ़साने मन्टो के, डाक्टर ख़ालिद अशरफ, किताबी दुनिया, दिल्ली 2007
5. आज़ादी के बाद उर्दू नावेल,मुमताज़ अहमद ख़ान, अन्जुमन तरक़्क़ी उर्दू पाकिस्तान 1997

1 Ice candy man, Bapsi sidhwa, penguin random house, India 1989

2 https://www.rekhta.org/articles/fasaadaat-ke-afsaanon-ka-propeganda-ee-pahloo-intizar-hussain-articles?lang=ur

3 https://www.studocu.com/in/document/university-of-kalyani/english-honours/11602-article-text-22947-1-10-20230202/59772806

4 https://www.rekhta.org/ghazals/sun-bastiyon-kaa-haal-jo-had-se-guzar-gaiin-muneer-niyazi-ghazals

5 https://www.rekhta.org/ghazals/pataa-ab-tak-nahiin-badlaa-hamaaraa-ahmad-mushtaq-ghazals

6 https://www.rekhta.org/ghazals/ham-to-jaise-vahaan-ke-the-hii-nahiin-jaun-eliya-ghazals?lang=hi

भारत विभाजन त्रासदी: समकालीन हिन्दी उपन्यासों में शरणार्थियों एवं स्त्रियों की दुर्दशा

डॉ महात्मा पाण्डेय*

भूमिका :

भारत विभाजन की त्रासदी भारत के इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। एक ऐसा देश जिसकी सीमाएँ मौर्य साम्राज्य से लेकर औरंगजेब तक लगभग एक जैसी ही रही हैं। 1947 में धर्म के नाम पर बंद कमरों में बैठकर देश को दो टुकड़ों में बाँट दिया गया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की बुनियाद को हिन्दू-मुस्लिम एकता के आधार पर मजबूत किया गया था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में दोनों समुदाय के लोग कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे। वह देश धर्म के नाम पर बंट गया। एक अखंड भारत की संभावना का अंत हो गया। यह क्यों हुआ? इसका जिम्मेवार कौन था? इतिहास की वे कौन-सी ऐसी अन्त:धाराएँ थीं,जिन्होंने ऐसे प्रबल प्रवाह को जन्म दिया, जिसे रोकने में सब असमर्थ थे। हिन्दू और मुसलमान जहाँ सदियों से एक साथ रहते आ रहे थे, मिली-जुली संस्कृति जिसकी एक राष्ट्रीय पहचान थी,उस देश के हिन्दू और मुसलमान साथ क्यों नहीं रह सके? जब धर्म के नाम पर निर्दोष लोगों की हत्याएँ की जा रही थीं, तब देश का शीर्षस्थ नेतृत्व क्या कर रहा था? क्या भूमिका थी उनकी? कहाँ थे इस विभाजन के बीज? तत्कालीन परिस्थितियों में शरणार्थियों और स्त्रियों की क्या मनोदशा रही होगी? तमाम ऐसी घटनाओं ने जिन्होंने हिन्दू व मुस्लिम संबंधों को प्रत्यक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से गहराई तक प्रभावित किया, उनके बीच की खाई को निरंतर चौड़ा किया,उन्हें दो अलग-अलग दिशाओं में ढकेला और उनके बीच उस

* सह-अध्येयता भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला
मो. 8454028185 ईमेल-mahatmapandey1982@gmail.com

विघटन को निरंतर बढ़ाया, जो अंततः विभाजन की त्रासदी के रूप में फलीभूत हुआ।

स्वतंत्रता मिलने के साथ ही विभाजन के भीषण और भयानक दौर से भारतीयों को गुजरना पड़ा। तमाम यातनाओं और संघर्षों का एक नया सिलसिला शुरू हुआ जिसका आज भी कोई अंत होता दिखाई नहीं दे रहा है। एक ही झटके ने सभ्यता और संस्कृति, राष्ट्र और कौम संबंधी अवधारणाओं में ऐसा बदलाव ला दिया है कि लोग हतप्रभ से देखते रह गये। आज भी भारतीय जनमानस उन प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाया है। भारत की वर्तमान सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक हालत के कारणों की खोज में जब जुटते हैं तो यह पाते हैं कि उनकी जड़ें विभाजन की त्रासदी से होती हुई इतिहास में दूर-दूर तक विस्तृतहैं। निश्चित रूप से विभाजन जैसी घटना एक बड़ी त्रासदी है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने इस त्रासदी के विभिन्न पक्षों को चित्रित करके विभाजन के संकट का संवेदनात्मक तथा बौद्धिक दृष्टि को सामने लाने की पूरी कोशिश की है। विभाजन संबंधी हिन्दी उपन्यासों में ऊपर से लेकर निचली परतों तक धँसी हुई रंग-रेखाओं से दहला देने वाले सन्नाटे तथा हाहाकार की तस्वीरें बारंबार उभरती रहती हैं। 15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन हो गया। अमानवीय कारनामों का न खत्म होने वाला सिलसिला शुरू हो गया। विभाजन के समय और बाद में जो नरसंहार हुआ, वह भारत के इतिहास की एक करुण त्रासदी बन गई।

सन 1947 में अगस्त से लेकर नवम्बर के बीच जो सांप्रदायिक लड़ाई लड़ी गई, उसमें कितने लोग मारे गए, कितने घायल हुए इसका आंकड़ा बता पाना आसान नहीं है। सांप्रदायिकता के राक्षसों ने दोनों जातियों को अपने जबड़े में भींचकर लहूलुहान कर दिया। दंगों के कारण दहशत का जो माहौल निर्मित हुआ उससे एक गहरा असुरक्षा का भाव पैदा होने लगा। मौत का डर भीतर तक समाता गया और लोगों को अपनी जन्मभूमि छोड़करभागने पर विवश होना पड़ा। बँटवारे से जो हिंसा और अराजकता फैली, विस्थापन की जो बहुमुखी आपदाएँ फूटीं उसने तो हिन्दू और मुसलमानों तथा सिक्खों को भी सालों-साल तक जकड़ कर रखा। आज भी भारत उसके परिणामों को किसी न किसी रूप में भुगत रहा है। यह दुर्घटना लाखों लोगों के स्थानान्तरण की समस्या से जुड़कर और भी अधिक भयावह हो उठी। विस्थापन की त्रासदी से निपटने के लिए कोई यथोचित योजना और व्यवस्था के अभाव में लोग बुरी हालत में फँस गये। अगर जनसंख्या

की अदला-बदली योजनाबद्ध रूप में हुई होती तो विभाजन के पश्चात् हुए रक्तपात को काफी हद तक रोका जा सकता था। बड़े पैमाने पर हो रहे खून-खराबे और मानव विरोधी कारनामों के बावजूद भी दोनों पक्ष में से ऐसे लोग थे जो जानते थे कि भौगोलिक रूप से सीमाएँ निर्धारित हो जाने से दिल नहीं बँट पाते। ऐसे संवेदनशील व्यक्तियों ने ही संस्कृति को पूरी तरह से मिटने से बचाए रखा। इतिहास और सांस्कृतिक क्षेत्र में पैदा हुई उस बड़ी घटना से साहित्यकार भी गहरे प्रभावित हुए। साहित्य और इतिहास, साहित्य और संस्कृति के अन्त:संबंधों पर सर्जनात्मक लेखन की जो शुरूआत तब हुई, वह आज अधिक विकट और भयावह शक्ल अख्तियार कर चुकी है। विभाजन के दौर का अग्निकांड विभाजन के बाद जगह बदल-बदलकर सामने आ रहा है और साहित्य की विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त हो रहा है। विभाजन केकारण हुई विभीषिकाओं और दहशतों का दिल दहला देने वाले वर्णनों के साथ-साथ विभाजनोपरान्त भारत में मुसलमानों की अवस्था तथा शरणार्थियों की समस्याओं का भी दस्तावेज समकालीन हिन्दी उपन्यास है। विभाजन की थीम पर लिखे गये अधिकांश उपन्यासों में मानवीय करुणा की झलक दिखाई देती है। ये उपन्यास किसी एक सतह पर ठहरे हुए नहीं हैं, बल्कि कई आयामों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। कहीं यह परिवर्तित संबंधों और विघटित मूल्यों पर आधारित है, तो कहीं विभाजन से निर्मित क्रूर मानसिकता का उद्घाटन करने वाले उपन्यास हैं। कहीं-कहीं ये उपन्यास अपनी जमीन, अपने वतन सेउजड़े हुए लोगों की अंतर्वेदना से जुड़े हैं तो कहीं औरतों पर हुई घिनौनी वारदातों से भी जुड़े हुए हैं।

भारत विभाजन विश्व मानचित्र को प्रभावित करने वाली एक बड़ी दुर्घटना भी थी। देश विभाजन का अदूरदर्शी निर्णय साम्प्रदायिकता की समस्या के निदान के रूप में किया गया समझौता था। विभाजन के तुरंत बाद की विस्फोटक प्रतिक्रियाओं ने सदियों के हमसायों में धार्मिक असहिष्णुता,आपसी वैमनस्य और अतार्किक बर्बरता का संचार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप हुई मानव निर्मित भीषण तबाही की मिसाल विश्व के इतिहास में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। दो-दो राष्ट्रों एवं कौमों को प्रभावित करने वाली इस त्रासदी के दुष्प्रभाव से पचहत्तर साल बाद भी इससे मुक्ति नहीं मिल सकी है। साम्प्रदायिकता से मुक्ति पाना तो दूर, अपितु एक सोची समझी नीति के तहत साम्प्रदायिकता की भावना को वोट बैंक में परिवर्तित करने का कार्य आज भी सत्तालोलुप राजनेता लोग कर

ही रहे हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण बाबरी मस्जिद का टूटना। बाबरी मस्जिद टूटने के पश्चात् दिसंबर 1992 के साम्प्रदायिक दंगों ने यह सिद्ध कर दिया कि साम्प्रदायिक भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए अतीत की कुरूप विरासत से वैमनस्य के प्रतिदिन नए संस्करण निकालकर व्यापक जनसमूह को सरलता पूर्वक गुमराह किया जा सकता है।

विभाजन की पृष्ठभूमि :

विभाजन के समय साम्प्रदायिक विवेकहीनता के फलस्वरूप लगभग पूरे राष्ट्र को प्रलयकारी परिणामों से गुजरना पड़ा। साम्प्रदायिक दंगों ने मानव व्यथा का एक रक्तमय सैलाब ही ला दिया था। अपने-अपने धर्मों के देश में लोग दु:ख, नि:सहायता का पुलिंदा लेकर भागने को विवश हो गए थे। विभाजन जैसी राष्ट्रीय त्रासदी जनमानस को शायद ठीक से कोई सीख नहीं दे पाई इसीलिए साम्प्रदायिक विद्वेष की धारा सुप्त रूप से धर्म पर आधारित राज्य पाकिस्तान और धर्म निरपेक्ष राज हिंदुस्तान के बाशिंदों के बीच मौजूद रही। व्यापक रूप से यह प्रतिक्रिया तीन पड़ोसी राष्ट्रों में एक साथ उस समय हुई जब बाबरी मस्जिद का ढाँचा तोड़कर धर्मनिरपेक्षता को आहत किया गया। बाबरी मस्जिद का टूटना न सिर्फ सोलहवीं सदी के स्थापत्य पर किया गया आघात था, बल्कि उन करोड़ों लोगों के विश्वास पर किया गया आघात भी था, जिनकी मौजूदगी भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र साबित करती है। यह भारत की ढाई-तीन हजार साल प्राचीन उस शानदार संस्कृति और सभ्यता पर आघात था जो धार्मिक सहिष्णुता, उदारता, सयंम और अहिंसा के उच्च आदर्शों पर टिका है। यह भारत की आठ सौ साल पुरानी उस सामाजिक संस्कृति पर भी आघात था जो 'सर्वधर्म समभाव' को अपना आदर्श मानती है।

शताब्दियों के मुस्लिम शासन ने उच्चता की एक ग्रन्थि उनमें बिठा दी थी और शासित हिन्दू समाज उससे मुक्ति की राह तलाश रहा था। अलगाव, अविश्वास और संशय ने दोनों के मन की धरती को खोद-खोदकर रख दिया और अंग्रेजों द्वारा फेंका गया विष बेल पनपकर एक छतदार पेड़ बन गया। भारत की आज़ादी से पहले तक एक विशेष तबके और विचारधारा के मुसलमान नेताओं ने आम भारतीय मुसलमान जनता को समझा दिया कि नया बनने वाला पाकिस्तान उनके सपनों का देश होगा। यह समझ धर्म के नाम पर पैदा की गई और मुसलमानों

में यह डर पैदा किया गया कि बहुसंख्यक हिन्दू समाज, इस्लाम धर्म और संस्कृति के लिए खतरा बन जाएगी। परिणामस्वरूप पाकिस्तान की घोषणा होते ही भारत से, विशेषकर बिहार और उत्तर-प्रदेश से मुसलमानों का पश्चिमी-उत्तर पूर्वी पाकिस्तान के लिए प्रयाण आरंभ हो गया। साधारण जनता भारत-पाक मुद्दों से अनजान थीं। जमींदार लोगों के अनुसार आज़ादी मिलने के बाद हिंदुस्तान में कांग्रेस जमींदारी समाप्त करेगी क्योंकि जमींदार ज्यादातर मुसलमान ही हैं। आम भारतीय मुसलमान पाकिस्तान जाना नहीं चाहते थे फिर भी लीग को मतदान देकर उसकी ताकत को बढ़ाने के पीछे जमींदारी जाने का भय था।

वास्तव में दुनिया के कोई भी दोधर्मावलंबी इतनी गहराई के साथ इतने लंबे समय तक आत्मीय रिश्तों में नहीं जुड़े हैं जितने हिन्दू और मुसलमान। किन्तु कुछ राजनीतिज्ञों के चलते भौगोलिक अलगाव की यह त्रासदी भी इन्हीं दो धर्मावलंबियों के हिस्से में आई थी। अब तक सबसे ज्यादा खून भी इन्हीं देशों के बीच बहा है। 1947 के खूनी विभाजन से लेकर भारत-पाकिस्तान के बीच हुई लड़ाईयों तथा दोनों के बीच हुए सांप्रदायिक दंगों तक भारतीय उपमहाद्वीप की धरती खून से जितनी लाल हुई उसे देखते हुए ऐसा लगता है कि ब्रिटिश सरकार ने यहाँ इनके बीच नफरत की जो बीज बोई है उसकी नामुराद फसल यहाँ कभी नहीं सूखेगी। बँटवारे के फलस्वरूप आज हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच एक-दूसरे की हर बात पर शक, एक-दूसरे के हर काम में आपसी डर रह-रहकर बवंडर की तरह उठते हैं और दोनों देशों की सीमा के इस पार तनाव फैलाते घूम जाते हैं।

मस्जिद टूटने की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत,पाकिस्तान और बांग्लादेश के अल्पसंख्यकों को साम्प्रदायिक हमले का शिकार बनना पड़ा। फिर यह लगा कि कट्टरपंथियों द्वारा मौत के फरमान की सजा भुगत रही आधुनिक सुकरात तसलीमा नसरीन की चेतावनी कि ''भारत कोई विच्छिन्न जंबूद्वीप नहीं है। भारत में यदि विष फोड़े का जन्म होता है तो उसका दर्द समूची दुनिया में कम-से-कम पड़ोसी देशों में तो सबसे पहले फ़ैल जाएगा।''[1]

हमारी चेतना को आंदोलित करने में यह टिप्पणी सहायक हो सकती है। दिसंबर 1992 के बाद कुछ ऐसा हुआ कि भारत व पाकिस्तान में राजनीतिक ही नहीं सामाजिक स्थितियों पर भी साम्प्रदायिक कट्टरवाद का वर्चस्व बढ़ने लगा। आज तो स्थिति यह है कि पाकिस्तानी हुक्मरान अपने देश में इस्लामी कानून

लागू करने की प्रकिया में सक्रिय हैं और भारत में केंद्र सहित राज्यों में कट्टर साम्प्रदायिक पार्टियों ने अपना कब्जा जमा लिया है। सिर्फ इतना ही नहीं भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में धर्म के साथ-साथ जातिवाद भी खूब जोर पकड़ रहा है। जातिवाद और नस्लवाद भारत के साथ ही पश्चिमी देशों में भी अपने चरम पर है। विभाजन के अड़तालीस घंटे बाद ही हिन्दू और मुसलमानों के बीच का तनाव भीषण साम्प्रदायिक दंगों में बदल गया। अंध-साम्प्रदायिकता का एक आत्मघाती दौर सरहद के दोनों तरफ चलने लगा। बँटवारे के फलस्वरूप देश के कई भागों में खून की नदियाँ बहने लगीं। दंगों की शुरूआत पूर्वी व पश्चिमी पंजाब में भयंकर हिंसा व रक्तपात के साथ हुई। ''पता चला कि पूर्वी पंजाब में हिन्दुओं और सिखों की भीड़ों ने मुसलमानी गाँवों पर हमले किए हैं। वे लोग घरों को जला रहे थे,निर्दोष आदमियों,औरतों और बच्चों की हत्याएँ कर रहे थे।''[2]

ऐसी ही खबरे पश्चिमी पंजाब से भी आ रही थीं-''मुसलमान हिन्दू और सिक्ख सम्प्रदाय के आदमियोंऔर बच्चों को अंधाधुंध मार रहे थे। समूचा पंजाब मृत्यु और विनाश का श्मशाम बन गया था।''[3]

विभाजन की त्रासदी:

राष्ट्र के विभाजन का आधार था हिन्दुओं और मुसलमानों की पारस्परिक दुश्मनी। पाकिस्तान बनते ही इस अदावत को एक स्थायी संवैधानिक रूप मिल गया था। यद्यपि राष्ट्रीय नेताओं को खूनी उन्माद के इस दौर का पूर्वानुमान था। बँटवारे के पूर्व ही मौलाना आज़ाद ने इस भीषण रक्तपात की आशंका लार्ड माउन्टबेटन से व्यक्त की थी। ''बँटवारा हुआ नहीं तभी कलकता, नोवाखली, बिहार, बंबई और पंजाब में दंगे हो चुके हैं...ऐसे वातावरण में देश का बँटवारा हुआ तो देश के अलग-अलग हिस्सों में खून की नदियाँ बहेंगी।''[4]

इस साम्प्रदायिक उत्पात के परिणामस्वरूप लगभग एक करोड़ साठ लाख व्यक्ति बेघर हो गए और छः लाख लोग मौत के घाट उतार दिए गए। दिल्ली और कलकत्ते में भी साम्प्रदायिक विभीषिका का फैलाव पंजाब के समान ही हो रहा था। गांधी जी एक तरफ दंगों को बंद कराने के लिए प्रयासरत थे तो दूसरी तरफ कुछ लोग हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु मुसलमानों को मार रहे थे। केन्द्रीय व प्रांतीय लीगी नेता भी हिन्दुओं पर संगठित आक्रमण करवा रहे थे। ''आमतौर

पर लोगों का विश्वास था कि केन्द्रीय और प्रांतीय मुस्लिम लीग के नेता हिन्दुओं पर संगठित हमले करवा रहे थे। इसी तरह हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ उकसाने का आरोप हिन्दू महासभा के नेताओं पर लगाया जा रहा था।'[5]

लूटपाट, हत्या, बर्बरता, हिंसा, घृणा और अमानवीयता के इस दौर में गुलामी की जंजीरों में जकड़े दब्बू व कायर लोग भी धर्म के नाम पर बलवान होकर खूँखार दरिन्दे बन गए थे। इस भीषण राष्ट्रीय त्रासदी ने समूचे समुदाय को स्तब्ध कर दिया था। जिन गली मुहल्लों में लोग बे-रोकटोक आते-जाते थे, जिस बुनियाद के साए में पीढ़ियाँ गुजर गई थीं, उन्हीं गली-मुहल्लों में मौत का पंजा आक्रामक मुद्रा में सतर्क था। 'पूरब का पेरिस' कहे जाने वाले शहर लाहौर के क्लबों में सिक्ख, मुसलमान और हिन्दू, मर्द और औरतें एक साथ अंग्रेजी नाच नाचते थे और उनके बीच साम्प्रदायिक दूरी सिर्फ साड़ी की मोटाई के बराबर रह जाती थी। ऐसा रंगीन शहर भी साम्प्रदायिकता के उन्माद से खुद को बचा नहीं पाया। न्यूयार्क टाइम्स के तत्कालीन संवाददाता रोबर्ट ट्रमदुल्ला ने महायुद्ध से भी बुरी हालत बताया था। उन्होंने लिखा था-''आज हिंदुस्तान में जितनी बार पानी बरसता है, उससे ज्यादा बार खून बहता है। मैनें सैकड़ों लोगों की लाशें देखीं और सबसे निर्मम दृश्य मैंने उन हजारों हिन्दुस्तानियों का देखा है जिनकी आँखें निकाल ली गई थीं या हाथ-पाँव काट लिए गए थे। गोली मारकर किसी की हत्या कर देना तो बहुत रहम की बात समझी जाती है और यह बहुत कम होता था। आमतौर पर मर्दों, औरतों और बच्चों को डंडों और पत्थरों से बुरी तरह से घायल करके मरने के लिए छोड़ दिया जाता था। गर्मी और मक्खियों की वजह से उनकी मृत्यु की पीड़ा बढ़ जाती थी।'[6]

जो लोग धर्मान्ध थे वे निर्दोष व्यक्तियों के रक्त से होली खेलने में गर्व का अनुभव करते थे। छुरेबाजी, आग, लूटमार, हत्या और बलात्कार बिलकुल साधारण हो गये थे। देखते-देखते हरे-भरे चहचहाते प्रदेश वीरान हो गए। गगनचुंबी अट्टालिकाएं राख के ढेर में परिवर्तित हो गईं। उस धधकती आग में निर्दोष नारियों और भोले-भाले बच्चों को फेंकते थे जैसे किसी नरमेध यज्ञ में आहुति डाली जाती हो। कलकत्ता, नोवाखली, बिहार, पंजाब, दिल्ली और सीमाप्रांत एक के बाद एक सब इस भयानक पैशाचिकता का शिकार होते चले गये। विभाजन के कारण पाकिस्तान की ओर हुए पलायन में युवा पीढ़ी ने अधिक उत्साह दिखाया और अधिकतर मुसलमान युवक पाकिस्तान चले गये। इस सामूहिक प्रयाण से

मुस्लिम समाज में भी अनेक समस्याएँ पैदा हुईं। गाँवों की बुढ़ाती पीढ़ी असहाय और विपन्न हो गई, जवान होती लड़कियों के लिए लड़के मिलने मुश्किल हो गये और बहुत सी शादियाँ टूट गईं। एक ही दिन में हमें आजादी मिली और देश भी विभाजित हो गया। संवैधानिक तरीके से एक देश को फाड़कर उसके अंदर से ही उसके दूसरे प्रतिद्वंद्वी देश को जन्म दे दिया गया। आज़ादी और विभाजन का फंदा गर्दनों के गिर्द कसने के कारण साँस लेना भी मुश्किल हो गया। यह विभाजन भारतीय अन्तश्चेतना में ठहरा हुआ एक ऐसा तीर है जो वैसे तो जिगर के पार नहीं हुआ था इसलिए हमें आज भी कसक और दर्द दे जाता है।

हिन्दू-मुसलमानों की पृथक जीवन पद्धति, पृथक धर्म, पृथक परंपराओं को उनकी सभ्यता मूलक आधारों और पैमानों को अक्सर विभाजन का कारण माना जाता है, जबकि वास्तव में विभाजन विस्तार पर खेली जा रही एक बाजी थी जिसमें मोहरों की जगह करोड़ों व्यक्तियों के जीवन दाँव पर लगे और नष्ट हो गये। अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' नीति ने दोनों जातियों को मजहब के नाम पर जलने-मरने को विवश कर दिया था। इस नीति का परिणाम यह है कि गरिमामयी भारतीय संस्कृति की छत्रछाया में पल्लवित-पुष्पित दोनों जातियां पशुता के स्तर पर उतर आईं।

विभाजन की त्रासदी और समकालीन हिन्दी उपन्यास :

भारत की इस मिट्टी में शताब्दियों से हिन्दुओं और मुसलमानों का जीवन पलता आया था। परन्तु इस माँ मिट्ठी से उनकी जुदाई बहुत ही व्यथापूर्ण और घृणित रूप में हुई। मानवता को दानवता के कराल हाथों के बीच फँसना पड़ा। विभाजन से जुड़ी विभीषिकाओं को अपने उपन्यासों द्वारा प्रस्तुत करके मनुष्यता के भाल पर अंकित हुए कलंक की अमिट रेखा को दर्शाने में समकालीन हिन्दी उपन्यासकार सफल हुए हैं। वर्षों से हिल-मिलकर साथ रहने वाले मनुष्यों को धर्म और राजनीति के गलत संदर्भ में किस तरह से बाँट देते हैं, किस तरह मानवता की लाश पर पाशविकता अट्टहास करती है। यशपाल कृत 'झूठा-सच' उपन्यास का केंद्र कथ्य है। इसमें पाकिस्तान बनने से उत्पन्न हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य, दंगे एवं जन-निष्क्रमण से जुड़ी बहशीपन, बर्बादी और नारी उत्पीडन की कथा है। यह उपन्यास एक ऐसा महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जो सदियों तक आने वाली पीढ़ी

को लाखों की लाशों पर खड़ी की गई पाकिस्तान की भव्य इमारत के दर्शन कराकर आँसू बहाने के लिए विवश करता है। इसमें कई लाशें पड़ी हैं जिनमें गिद्ध मंडरा रहे हैं, कहीं असह्य बोझ से लदी गाड़ियाँ हैं, कहीं साम्प्रदायिक नारों की गूँज है तो कहीं आग की लपटें, कहीं उजड़ी जनता की पुकारें हैं तो कहीं अपमानित नारियों की चीत्कार है। भारतीय विभाजन की वेदना का औपन्यासिक महाकाव्य 'झूठा-सच' है।

लाखों की तादाद में लोग अपने वतन से विस्थापित होकर पराए देश की ओर जाते वक्त घटित रक्त-रंजित, अमानवीय और क्रूर इतिहास उपन्यास के पहले खंड 'वतन और देश' का मुख्य कथ्य है। लाहौर के भोला पांडे की गली में एक हिन्दू मध्यवर्गीय परिवार को केंद्र में रखकर उसके माध्यम से बँटवारे का पूरा आख्यान ही प्रस्तुत हुआ है। जुलाई 1947 से पहले सप्ताह में ही यह लगने लगा कि लाहौर पाकिस्तान में जा सकता है। विस्थापितों के जत्थे लाहौर आने लगे। हिंसा और सांप्रदायिक उन्माद की उग्र होती आँधी में लाहौर में आतंक सा छा जाता है। इसी बीच कांग्रेस से विभाजन सिद्धांत स्वीकार कर लिया और पंजाब को बाँटने का निर्णय लिया। मुस्लिम लीग ने भी यह शर्त स्वीकार कर ली। पंजाब के लगभग बीचो-बीच होने के कारण लाहौर पर कांग्रेस और लीग का दावा था। यशपाल कृत 'झूठा-सच' उपन्यास के मिर्जा नामक पात्र के अनुसार, लोगों को धर्म के आधार पर अपनी पुश्तैनी जगहों से अलग करना जिस्म के माँस को हड्डियों से अलग करने के सामान है। रेडक्लिफ कमेटी ने भारत-पाक सीमा निश्चित कर दी,लेकिन लाहौर तर्क का विषय बना रहा। पूरे लाहौर में दंगे फूट पड़े जिसमें इस उपन्यास के पात्र जयदेव पुरी और उसकी बहन तारा का जीवन तहस-नहस हो गया। इन लोगों के बयान से विभाजन से उत्पन्न विभीषिकाओं से जुड़े क्रूर और नृशंस दृश्य पाठकों के सामने खुलते हैं।

तारा को उसकी ससुराल से गुंडे उठा ले जाने के कारण और जयदेव पुरी के परिवार से दूर होने के कारण परिवार वालों से बिछुड़ गये। लाहौर से माँ-बाप को ले आने के लिए पुरी द्वारा की गई यात्रा के माध्यम से ही विभीषिकाएँ सामने आ जाती हैं। विस्थापित हो रही आबादी से रेलगाड़ियाँ लबालब भरी हुई थीं। प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ी गाड़ी के भीतर घुस जाने के लिए लोग इतने आतुर और आतंकित थे कि उसी गाड़ी में न चढ़ जाने से वे निश्चय ही मृत्यु के मुँह में चले जाएंगे। चीखों-चिल्लाहटों और रोने की आवाजों से सारे स्टेशन गूँज रहे

थे। लोग गाड़ियों की ढलवाँ छतों पर भी बैठे हुए थे। पुरी को पता चल गया कि शाहदरा स्टेशन पर एक हजार से भी अधिक लोगों की हत्या करके रेलगाड़ी लाहौर की ओर भेज दी गई। उसने सभी स्टेशनों के प्लेटफ़ॉर्म पर सैकड़ों मुसलमानों की गाड़ी की प्रतीक्षा करते हुए देखा। सरहिंद स्टेशन पर हुए मार-काट के कारण फर्श लाल-काला हो गया था और चारो ओर लाशें बिखरी पड़ी थीं। वहाँ से कुछ आगे निकलते ही पुरी की गाड़ी पर आक्रमण किया गया। लोग यात्रियों को खींचकर नीचे गिराने लगे। भय से रंभाती एक बुढ़िया के खुले मुँह और गले को एक बर्छे से फाड़ डाला। प्राणों की भिक्षा मांगकर एक नौजवान के घुटने पकड़कर लेटे मुसलामानों की पसलियों के नीचे तलवार धँसकर उठ गई। क्षण भर में आधी गाड़ी खाली हो गयी और पुरी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। फिरोजपुर स्टेशन पर चार-पांच जाटों के गिरफ्त में आतंक से सहमे हुए दो मुसलमान लड़कियों को देखकर पुरी का दिल भर आया। उन जाटों के हाथों में खून से छने बर्छे थे। स्त्रियों के अंगच्छेद करने और उन्हें नंगी करके जुलूस निकालने की खबरें सुनकर उनका मस्तिष्क जड़ सा हो गया। रास्ते में एक लड़की को भरी भीड़ के सामने निर्वस्त्र करके उसे सरेआम नीलाम करने के दृश्य से पुरी आतंकित हो जाता है। उन्हें लगा कि भारत विभाजन से स्त्री जाति ही सबसे करुण और दयनीय बन गई। विभाजन के ख्याल मात्र से ही उत्तेजित लोग स्त्री की अस्मत को चीरकर फाड़ डालने में गर्व का अनुभव करते थे।

'झूठा-सच' उपन्यास के प्रथम भाग 'वतन और देश' का अंत ट्रक ड्राइवर के इन मार्मिक शब्दों से होता है कि ''रब्ब ने इन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।''[7]

विभाजन उपमहाद्वीप की सबसे बड़ी ट्रेजडी थी। हड़बड़ी में जब से इसे पेन्सिल की नोक से काट डाला गया तब से लेकर समकालीन लेखन तक की यात्रा में आज़ादी की यह रक्तरंजित लथेड़ बराबर उपन्यासों का विषय बना।

भारत विभाजन और शरणार्थियों की समस्याएँ:

नवनिर्मित राष्ट्र की सीमा पर चल रही नृशंस बर्बरता ने लाखों लोगों को अपने ही घर में विदेशी बना दिया था। शासक के साथ-साथ जनता की अदला-बदली भी व्यापक पैमाने पर हुई। शेखूपुरा जहाँ सबसे भीषण रक्तपात हुआ था, का एक वृद्ध किसान कहता है कि इस देश में कई शासक बदले, वे आये और चले

गए। लेकिन यह पहला अवसर है जब शासक के साथ रियाया को भी बदलने पर मजबूर किया जा रहा है। जनता के स्थानान्तरण में की गई अदूरदर्शिता ने विभाजन की त्रासदी को और भी ज्यादा बढ़ा दिया था। विभाजन ने करोड़ों असमर्थ लोगों को सड़कों पर, रेल के डिब्बे में और खेतों में उठा फेंका था। पुलिस व प्रशासन के संरक्षण के अभाव में जनसमुदाय आतंक व असुरक्षा के बीच पलायन कर रहा था। जनता को अपनी मर्जी के विपरीत अनिश्चित कालीन वनवास मिला था। उनके भविष्य की योजना उनके जीवित रहने की संभावना पर निर्भर थी। घृणा व हिंसा के इस विस्फोट में निर्वासन भोगने पर विवश किये गए हताश और खंडित आस्थाओं वाले शरणार्थियों के मीलों लंबे काफिले सरहद के दोनों ओर चल पड़े। उनके काफिलों पर भी हमले किए गए।

मानव जाति के पूरे इतिहास में शरणार्थियों का इतना बड़ा काफिला एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं गया। एक-एक काफिले में आठ लाख आदमी होते थे। आबादी के इतने बड़े पैमाने पर और इतनी तेजी से हुई अदला-बदली भी अभूतपूर्व थी। ''तीन महीने के अंदर एक करोड़ से अधिक आदमी अपने घरों से उजड़ गए। अगर वे एक-दूसरे का हाथ पकड़कर सीधी लाइन में खड़े हो जाते तो उनकी कतार कलकत्ता से न्यूयार्क पहुँच जाती। मध्यपूर्व में इजरायल का नया राज्य बनने के वक्त जितने लोग शरणार्थी बने थे, उनसे इन उजड़े हुए लोगों की संख्या दस गुना अधिक थी। विश्वयुद्ध के बाद जो लोग पूर्वी यूरोप से भागे थे उनकी संख्या यहाँ के शरणार्थियों की तुलना में एक तिहाई-चौथाई भी नहीं थी।''[8]

शरणार्थियों का समूह जिन साधनों द्वारा पलायन कर सकता था उनके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र नए वतन की तरफ प्रस्थान कर रहा था। उनका एक बड़ा वर्ग स्टेशन की तरफ भाग रहा था जहाँ ट्रेन उनके सांत्वना की प्रतीक बन गई थी। ट्रेन में बैठकर लाखों लोग भयानक मौत से पीछा छुड़ा रहे थे। रोती-चीखती भीड़ ठसाठस भरे हर डिब्बे की खिड़कियों और दरवाजों पर टूट पड़ती। विपदा के इस बोझ को ट्रेनें बड़ी मुस्तैदी से ढो रही थीं, लोगों को दुर्घटना से दूर ले जा रही थीं। परन्तु रास्ते में शरणार्थियों से भरी पूरी ट्रेन में लोगों को मार कर सरहद के पार तोहफा भेजा जाता था। यह हत्याकांड सरहद के दोनों तरफ चल रहा था। भारत में हिन्दू और सिक्ख रास्ते में रोक ली गई ट्रेनों के डिब्बे में चोरों की तरह घुस आते और जिस किसी को वे पाते कि उसका खतना हुआ है उसे

फौरन क़त्ल कर देते और पाकिस्तान में जिसका खतना न हुआ हो उसे मुसलमान मार डालते। शरणार्थियों की व्यापक संख्या को संभालने के लिए दोनों देशों को गंभीर आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

''देश की सबसे पहली अग्नि परीक्षा देश-विभाजन के फलस्वरूप भीषण रक्तपात, लूटमार, स्त्रियों के अपहरण, बलात्कार और नृशंसता के तांडव-नृत्य से पीड़ित और उखड़ी मानवता के आवास, भोजन और जीविकोपार्जन की व्यवस्था करने की दृष्टि से हुई।''[9]

शरणार्थियों की विशाल संख्या के लिए भोजन, रोजगार, पुनर्वास आदि का इंतजाम करने के लिए बहुत सारे धन की आवश्यकता थी। लाखों लोगों के लिए कंबल, तंबू, टीका लगाने की दवाएँ जुटाने और बँटवाने का इंतजाम करना था। शरणार्थी शिविरों में तिल रखने भर की जगह भी नहीं थी। अभाव के क्षणों में लोगों की संवेदना मृतप्राय हो गई थी। 'फ्रीडम एट मिडनाइट' के लेखक लिखते हैं कि एक नौजवान आदमी अपनी दम तोड़ती माँ के पास बैठा हुआ था, उसके जीवन के आखिरी क्षणों में तसल्ली देने के लिए नहीं, बल्कि भय, घृणा, कटुता व द्वेष के आदान-प्रदान से पीड़ित लाखों शरणार्थियों की वजह से राष्ट्र को अकाल, बीमारी, पुनर्वास, रोजगार जैसी समस्याओं को प्रत्यक्ष रूप से देखना पड़ा। परन्तु हर शरणार्थी अपने साथ भयानक अत्याचारों के किस्से भी लेकर गया जिसे सुनकर स्थानीय निवासियों में साम्प्रदायिक उन्माद का ज़हर फैलने लगा और वे लोग भी कौम की खिदमत करने के लिए बर्बरता का सहारा लेने लगे जिसके फलस्वरूप इस्लामी संस्कृति के बेहतरीन नमूनों के इर्द-गिर्द गिने-चुने मुसलमान रह गए और लाहौर के छः लाख सिखों व हिन्दुओं में मुश्किल से एक हजार ही वहां बचे रहे। सेना का विभाजन भी साम्प्रदायिक आधार पर ही हुआ था। भारत में तैनात मुस्लिम सैनिकों के सामने विकल्प था कि वे हिंदुस्तान और पाकिस्तान में से किसी एक देश को चुन सकते हैं।

न सिर्फ भारत के इतिहास में दुनिया के इतिहास में भी 1947 के विभाजन और उससे पैदा विस्थापन की विकट समस्या के उदहारण कम ही देखने को मिलते हैं, फिर भी तमाम तरह के विघ्नों को पारकर विस्थापितों और शरणार्थियों ने भारतीय समाज में तो अपनी जगह सुरक्षित बना ही ली जबकि पाकिस्तान में मोहाजिरों को अभी भी पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया गया और स्थानीय लोगों से उनके हिंसक संघर्ष चलते रहते है। शरणार्थियों ने अपनी मेहनत से स्वयं

ही नई जगह पर बसना शुरू किया। दिल्ली जैसे शहरों में पंजाबी विस्थापितों ने स्थानीय जनता को ही उनकी जगह से हिला दिया। अपनी व्यावसायिक बुद्धि व पुरुषार्थ से इन विस्थापितों ने उनके जमे-जमाये व्यापार या कारोबार को चुनौती दे दी। अमृतसर, पटियाला, जालंधर जैसे शहरों में भी विस्थापितों ने मूल निवासियों से अधिक प्रतिष्ठा पा ली। विस्थापितों और शरणार्थियों के पुनर्वास के नाम पर खुले सरकारी विभागों में भी राजनीति का दखल हो गया था। सरकार ने पुनर्वास विभाग को बंद करना चाहा लेकिन इस विभाग में भर्ती कर्मचारी और उनके राजनीतिक संरक्षक इसके बिल्कुल खिलाफ थे। शरणार्थी कैंप और मुफ्त राशन डेढ़ साल बाद बंद किया गया लेकिन पुनर्वास विभाग किसी और नाम से चलता रहा।

पाकिस्तान से जो लोग भागकर भारत आये उन्हें प्रारंभ में शरणार्थी नाम दिया गया था। उन्होंने अपने परिश्रम से देश में शीघ्र ही अपना उपयुक्त स्थान बना लिया था और वे अभिमानपूर्वक अपने आपको पुरुषार्थी कहते थे। धीरे-धीरे वे वहां की मुख्यधारा में रच-बसकर पूरे सुख और सम्मान से रह रहे हैं। उन्हें किसी तरह के भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ रहा है। भारत के ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंद्रकुमार गुजराल पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर आये थे और उन्होंने भारत में एक नये सिरे से जीवन आरंभ किया। वे स्वयं ही लिखते हैं कि ''इस प्रकार मैं भारत शरणार्थी के रूप में आया। कराची में अपना व्यवसाय, झेलम में अपनी जायदाद सभी कुछ खो कर। हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि दोनों देशों के बीच इतनी पुख्ता दीवार खड़ी होगी। हमारा ख्याल था सब ठीक हो जाएगा (किन्तु ऐसा हुआ नहीं) इसलिए विभाजन खटकता है।''[10] ''क्या कभी मैं सोच सकता था कि भारत का प्रधानमंत्री बनूँगा? कभीनहीं। भारत में यही तो खूबी है। कहाँ ऐसा संभव है कि देश के बाहर से आने वाला पहली पीढ़ी का व्यक्ति, वहाँ का राष्ट्र प्रमुख हो जाए?''[11]

पाकिस्तान में पहले हिन्दू-सिक्ख को मजहब के नाम पर सफाया किया गया। फिर एक धर्मावलंबी को अपनी ही लपेट में उड़ा ले गई। सिया-सुन्नी और अहमदियों के विरुद्ध वहाँ आन्दोलन छिड़ गये। मोहाजिरों को भी पाकिस्तान ने अस्वीकार किया। वे लोग भारत छोड़कर पाकिस्तान में सपनों का देश तलाशने गये थे किन्तु वहां उन्हें गैरों की तरह ही दुत्कारा गया। उन्होंने आत्मरक्षा के लिए आन्दोलन किया। उसे दबाने के लिए उनके नेता अल्ताफ हुसैन को देश से भगाया।

उन्होंने 1992 में इंग्लैण्ड में शरण ली और अब वे वहीं से मोहाजिर आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं। उनके अनुसार मोहाजिरों के साथ पाकिस्तान में युद्धबंदियों जैसा व्यवहार हो रहा है। उन्हें मौलिक अधिकारों से वंचित ही नहीं किया गया, साथ ही उन्हें पाकिस्तान की भूमि का निवासी भी मानने से इंकार कर दिया गया। भारत से पाकिस्तान गये लोगों के लिए पहले ही मोहाजिर (आनेवाला) नाम गढ़ा था। यहीं से उनके प्रति भेदभाव की नीति आरंभ हुई। पाकिस्तान पाने के लिए संघर्ष करने वालों में सबसे आगे मोहाजिर थे, फिर भी पाकिस्तान बनने के कुछ ही वर्षों के भीतर उन्हें सिविल सेवाओं और अन्य ऊँचे पदों से निकाल बाहर किया गया। जो लोग 1947 के बाद पाकिस्तान में जन्मे, वे भी तीसरे दर्जे के नागरिक समझे जाते हैं और मोहाजिर नाम उन पर लगा रहता है।

बँटवारे के फलस्वरूप पंजाब से उखड़कर दिल्ली की ओर आये एक समूची पीढ़ी कैसे एक पैशाचिक तहस-नहस के बाद साहस और आपसी सहायता के बल पर अपने को नई परिस्थितियों में फिर से जमाती है। यही यशपाल कृत 'झूठा सच' उपन्यास के दूसरे भाग 'देश का भविष्य' की कथावस्तु है। शरणार्थियों ने बिना संकोच से हर छोटे-मोटे धंधे को जीविकोपार्जन के लिए अपनाया। इस उपन्यास में शरणार्थियों के करुण दास्तान, कैंपों की भीड़-भाड़ एवं अफसरों तथा गद्दानशीन नेताओं के स्वार्थ व्यवहार आदि का ऐतिहासिक तथ्य निष्ठा एवं कलात्मक सप्राणता के साथ वर्णित किया गया है। विभाजन के बाद लोग कई शहरों में बंट गए। इन शरणार्थियों ने स्थाई रूप से जमने के लिए बड़े कष्ट उठाये। परेशानियों और असुविधाओं ने लोगों को झकझोर कर रख दिया। 'झूठा-सच' उपन्यास के ही दूसरे भाग का शुरूआती दृश्य ही जालंधर में शरणार्थियों को मुफ्त राशन बाँटने वाली भीड़ का दृश्य है। इसमें शरणार्थियों के नए जीवन की कशमकश, लाखों व्यक्तियों के नये सिरे से जमने और जीविका के प्रश्न को दर्शाया गया है। स्थिति यह थी कि विभाजन से विस्थापित लोग कीड़ों-मकोड़ों की तरह फ़ैल गए। दिल्ली, अमृतसर और जालंधर जैसे शहरों में इन लोगों ने पहरा डाल दिया।

पंजाबी विस्थापितों के लिए लोगों में कोई सहानुभूति नहीं थी। उन लोगों ने अपने संघर्षों से स्वयं को पुनः स्थापित किया। इसके लिए उन्हें न तो सरकारी सहायता मिली, न ही स्थानीय संवेदना और सहयोग। उनके कठिन परिश्रम से वे विस्थापित से पुनः स्थापित हो गये। 'झूठा-सच' उपन्यास के अनुसार अमृतसर

जो अब भारत का सीमान्त बन गया था शरणार्थियों से भर गया था। वहाँ के रेलवे स्टेशन शहद के छत्ते की भांति भनभना रहा था। वातावरण पुकारों, चीख-चिल्लाहट और दुर्गन्ध से भर गया। दिल्ली शहर में मकान न मिलने पर लोग फुटपाथ और चौड़ी छतों पर भी तिरपाल तानकर बसे। पुरानी दिल्ली के हर खुले जगहों पर इन्हीं स्थानीय, निराश्रय शरणार्थियों के लिए कैंप बना दिए गये। उन्हें हर दूसरे दिन दो रोटियाँ दी जा रही थीं, जल भी अपर्याप्त था। बहुत से लोग भूख से मर गए। भारत से गये मुसलमान भारत के आश्वासन से अपने घरों में पुनः बसने के लिए वापस चले आये। फलस्वरूप उनके घरों को खरीद कर रह रहे बहुत से हिन्दू परिवार सड़कों में आ गये। दिल्ली और पंजाब के राहत शिविरों में शरणार्थियों की बेशुमार तादाद थी। विभाजन ने सभी वर्गों के लोगों को एक ही ज़मीन पर लाकर खड़ा कर दिया। इन कैंपों में शरणार्थियों के अपने अनुभव हैं, भ्रष्टाचार के किस्से हैं, लूटने-ठगने और परिवारी जनों के वियोग की गाथा है। इन सबसे परे स्थानीय लोगों का अमानवीय व्यवहार है। अपने परिश्रम से शरणार्थियों ने भारतीय समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

द्रोणवीर कोहली के उपन्यास 'वाह कैंप' में कैंप में आये शरणार्थियों की दुःख-दर्द भरी जिन्दगी उभरकर आती है। हड़बड़ी में लोग सब कुछ छोडकर भारत आये और फिर उन्होंने यहाँ बसने और नए सिरे से जीवन शुरू करने का संघर्ष शुरू किया। अमीर रिश्तेदारों का मुँह फेर लेना, लुट-पिटकर आये तमाम लोगों का अपना आत्म सम्मान एक ओर रखकर मेहनत-मजदूरी की लाइन में खड़े हो जाना और लगातार अपमान और कटाक्ष झेलना बहुत ही दयनीय स्थितियां हैं, जो एक नये महाभारत से कम नहीं। प्रताप सहगल के उपन्यास 'अनहद नाद' में भी भारत आये शरणार्थियों की ही कथा है। 'रिफ्यूजी' शब्द उन्हें जोंक की तरह काटता है और तकलीफ देता है तथा वे आत्मसम्मान पूर्ण जिन्दगी जीने के सपने में दिन काटते रहते हैं। आज़ादी के साथ ही मनुष्य की आँखों में विकास और सामाजिक समानता का सपना भी जगा था। किन्तु बाद की बदली हुई परिस्थितियों में यह तिलिस्म का दुर्ग भड़भड़ा कर गिरा। उसी की अनुगूँज इस उपन्यास में है। आजादी के आसपास पैदा हुई पीढ़ी के लिए विभाजन जीवन का एक सत्य खंड है। इतिहास के इस क्रूर सच्चाई को झेलने के लिए अभिशप्त तत्कालीन समाज का वर्णन इसमें हुआ है। देश का बँटवारा हुआ तो इस उपन्यास का पात्र लाला जगतनारायण को भी अपना सबकुछ छोड़कर पश्चिमी पंजाब से

भागना पड़ा।

बाघा बॉर्डर पार करके वह परिवार समेत अटारी कैंप पहुंचा जहाँ कुछ लोग उस पर झपट पड़ते थे। कैंपों से बाहर आये ज्यादातर लोग पंजाब और दिल्ली में रहने लगे। कुछ लोग राजनेताओं से मिल-मिलाकर पैसा लाइसेंस या जमीनें हड़प लीं और दिनों दिन अमीर होते गये। जो संकोची थे, बहुत ईमानदार थे वे पीछे छूट गये। कई कालोनियों में सरकार ने प्लाट और कहीं एक कमरा भी बनाकर शरणार्थियों को अलॉट कर दिए थे। इसी के तहत कुछ लोग जिनके पास बँटवारे से पहले मकान नहीं था, वे मकान वाले हो गये। पुनर्वास मंत्रालय के एक क्लर्क ने एक मकान जगतनारायण के नाम करवाने के लिए तीन हजार रूपये माँगे। सरकार से जिस व्यक्ति के नाम मकान अलॉट हुआ उसके आगमन से पासा पलट गया और जगतनारायण और उनके बेटा शिवा के नाम पुलिस केस भी दर्ज कर दिए गये। शरणार्थियों के आगमन के बाद गैरकानूनी बस्तियों के कारण दिल्ली का नक्शा ही बदल गया। विभाजन की विभीषिका से पीड़ित शरणार्थियों की आर्थिक विषमता एवं भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिपाद्य इस उपन्यास में है। विभाजन के मार खाए ये शरणार्थी भ्रष्ट शासन व्यवस्था की चक्की में पिस गये। लोग कल्पना भी न कर सके कि यह एक ऐसा अभिशाप है जिसके द्वारा आवश्यक चीजें भी पल भर में उनसे छीन ली जाएँगी। बँटवारा दिखने में तो ज़मीन का था लेकिन हकीकत में उसने यहाँ के लोगों के दिलों के साथ ऐसा छलना किया कि आज भी वे उस पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाए। उसका सबसे बड़ा साक्ष्य हरदर्शन कृत 'टूटी हुई ज़मीन उपन्यास है। इसमें एक ऐसे परिवार की कहानी है जो पाकिस्तान से बेदखल होकर 'असली हिंदुस्तान' पहुँच ज़रूर गया लेकिन टूटे-बिखरे दिल को सँभालना उसके लिए बहुत मुश्किल था। देश में सांप्रदायिकता की आग भड़की और हालात दिन-ब-दिन बिगड़ने लगी। दंगों से बचते-बचाते यह परिवार शेखूपुरा से अंबाला तक पहुँचा जहाँ उसने कैंप में शरण ली। बाद में बसेरा मिलने पर भी मन की बेदखली को बसेरा नहीं मिलता। हरदर्शन सहगल का यह उपन्यास विभाजन की त्रासदी के कारण बालमन पर उपजे सवालों का दस्तावेज है। इस उपन्यास का पहला भाग 'बेदखल' होने की प्रकिया से लेकर विस्थापित होने का दर्द लिए हैं। किला शेखपुरा में बसे जय दयाल जी और अन्य हिन्दू परिवार ने सपने में भी यह नहीं सोचा था कि उन लोगों को अपने ही घर-ज़मीन, सामान और दोस्तों से अलग होकर रातों-रात

भागना पड़ा। वातावरण में धीरे-धीरे बढ़ रहे सरगर्मी बालक कुंदन को बेचैन करता है। उनके बालमन पाकिस्तान मांग को समझ नहीं पाते। कुंदन के परिवार बहुत सी दारुण स्थितियों का सामना करके हिंदुस्तान पहुँचते हैं और विस्थापित होने के भीषण दर्द से कुछ राहत पाता है। दूसरे खंड 'बसेरा' में विस्थापित होने के बाद से पुनर्स्थापित होने के दर्द तक का वर्णन है। सभी दृष्टियों से एक नितांत अपरिचित दुनिया में स्वयं को जमाने और जिन्दगी की धारा में मिला देने की कोशिश में जूझते शरणार्थियों का विस्तृत वर्णन इसमें है। स्वतंत्रता के बाद जन्म लिए नये खिंचावों तथा तनावों से जूझते हुए ये लोग जिन्दगी का नया समीकरण तलाशते हैं।

बँटवारे के उपरांत पश्चिमी पंजाब से लोग उखड़कर दिल्ली में आ बसते हैं। अनेक कठिनाईयों के बाद लोग बस जाते हैं, लेकिन बहुत से लोग विभाजन-पूर्व की स्मृतियों में जी रहे थे, महीपसिंह के उपन्यास 'अभी शेष है' के मानसिंह उन लोगों में से एक था। विभाजन के दिनों की रक्तरंजित स्मृतियाँ कभी-कभार उन्हें खून के आँसू रुलाती है। आज भी वही उन्हें अपना देश लगता है। भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तान की हार पर वह सुन्न हो जाते हैं, और उनकी प्रतिक्रिया है 'तुम्हारा देश जीत गया पर मेरा मुल्क हार गया'। देश विभाजन ने जहाँ मानसिंह को द्विविभाजित मानसिकता में जीने को मजबूर किया वहीं इम्तियाज जैसे मुसलमानों को भी फाँके में बाँट दिया। उनके आधे परिवार सरहद के उस पार हैं तो आधे इस पार। जब दोनों देशों में तनाव बढ़ जात है तो इन्हें अपनी देशभक्ति साबित करने जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। वह सोचता है कि पाकिस्तान बनने से आखिर उन्हें क्या मिला? वहाँ उनके सगे-संबंधी मोहाजिर हो गये और हिंदुस्तान में वह दूसरे दर्जे का आदमी बन गया। देश विभाजन के कारण लोग अपनी ही ज़मीन से कट गये हैं। उन्हें अपना घर वापस बुलाता है पर वे वहां जा नहीं सकते। विस्थापित हुए करोड़ों लोग अपनी पीड़ा को सहते हुए जीने के लिए विवश हुए।

भारत विभाजन और स्त्री का त्रासदीय जीवन:विभाजन की विभीषिका यथार्थ तौर पर पूरी सभ्यता को ही कलुषित कर रही थी और इस कालिमा का स्पष्ट आधार था साम्प्रदायिक दुर्भावना। दोनों ही समुदायों के पास हिंसा करने के बहाने थे कि मामूली सी वजह पर दंगा-फसाद हो जाता था। धार्मिक आधार पर की गई पाशविकता का शिकार बड़े पैमाने पर स्त्रियाँ हुईं। व्यापक स्तर पर जनसंख्या

की अदला-बदली के दौरान शरणार्थियों के काफिलों से, ठसाठस भरी हुई ट्रेनों से, सुनसान गाँवों से हजारों लड़कियों और औरतों का अपहरण और बलात्कार हुआ। उनका व्यापार किया गया। लूटपाट, हिंसा व आगजनी के दौर में स्त्रियों के साथ व्यभिचार करना, उन्हें अपमानित व प्रताड़ित करना, अनेक शर्मनाक तरीकों से उन्हें पीड़ित करना कौम की खिदमत में शामिल हो रहा था। स्त्रियों के साथ किए गये इतने शर्मनाक व घृणित तरीके से दुर्व्यवहार का उदाहरण विश्व के इतिहास में कहीं नहीं मिलता।

''अमेरिका के सरमायादार कम्युनिस्ट रूस से कितनी नफरत करते हैं।.....मगर आपने यह कभी नहीं सुना होगा कि न्यूयार्क की सड़कों पर हर राह चलते रूसी को छुरा भोंककर हलाल कर दिया था। कम्युनिस्ट औरतों को नंगा कर उनका जुलूस निकाला गया।''[12]

वहशी दरिंदों ने औरतों को कत्ल करने से पहले उनके स्तनों को क्षत-विक्षत कर उनका जुलूस निकाला। उनको मारकर उनकी शर्मगाहों में लकड़ी ठूंस दी। विभाजन के पश्चात भारत व पाकिस्तान में नग्न स्त्रियों के जुलूस निकाले गये, उनके साथ जोर-जबरदस्ती भी की गई। उनकी छातियों तथा अन्य नाजुक अंगों पर पाकिस्तान व हिन्दुस्तान के नारे लिखे गये। यह सब विश्व के इतिहास में मानवता के साथ किये गये क्रूरतम व्यवहारों में शुमार है। बहुत सी औरतों ने विधर्मियों के हाथों बलत्कृत होने की बजाए कुएं में कूदकर, जलकर मरने व नवजात शिशुओं के साथ आत्महत्या कर लेना ही अधिक उचित समझती थीं। कुछ औरतों को उनके परिवार वाले ही मार रहे थे, ताकि वे विरोधी सम्प्रदाय के लोगों की शिकार न बन जाएँ। यह दहशत मजहब व जाति से बिल्कुल अनजान थी। दोनों समुदाय की स्त्रियों को इस दुर्दशा को झेलना पड़ा। प्रतिहिंसा के दौर में आँख के बदले आँख, कत्ल के बदले कत्ल, बलात्कार के बदले बलात्कार, आदि दर्दनाक घटनाओं का तुलनात्मक रूप से दोनों कौमों में बराबर का बँटवारा होता था। यदि लुटी-पिटी औरतें अपने घर पहुंचतीं थीं तो उन्हें सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता थातथा उन्हें उनके परिवार वाले भी स्वीकार नहीं करते थे। स्त्रियाँ न सिर्फ बेसहारा हुईं अपितु उनकी कोमल भावनाओं को भी झकझोरा गया।

देश के भीतर साम्प्रदायिक शक्तियों ने बर्बर तांडव कर मानवीय मूल्यों को ध्वस्त किया और भारत की साँझी विरासत और संस्कृति को तार-तार कर दिया।

साम्प्रदायिकता के जुनून में मानव, मानव न रहकर क्रूर हिंसक और बर्बर पशु बन गया। विभाजन काल में हुए साम्प्रदायिक दंगों में स्त्री ही सबसे अधिक बलात्कार, हत्याओं तथा लूट की शिकार हुई। कई स्थानों पर तो औरतों के साथ पैशाचिक नृत्य भी खेला गया कि संसार भर की दैवीय प्रवृत्तियाँ दाँतों तले उँगली दबाने लगीं। विभाजन के समय हिन्दू-मुसलमानों के बीच प्रतिहिंसा की भावना इतनी बलवती हो गई थी कि वे परस्पर स्त्रियों की गोदी से बच्चों को छीनकर पीस देते थे और औरतों के साथ अमानवीय व्यवहार किया करते थे। उन्हें अंगच्छेद करके उनका नंगा जुलूस निकालने में भी तनिक नहीं हिचकिचाते थे। स्त्रियों की इज्जत को गाजर-मूली की तरह उखाड़कर फेंक देने की क्रिया हिंदुस्तान की आजादी में जैसी दिखाई पड़ी है, वह अभूतपूर्व है। भारतीय आज़ादी के मकान की नीव में सिर्फ शहीदों की रक्त-रंजित आत्माएँ ही नहीं पड़ी हुई हैं बल्कि उससे कहीं बढ़कर स्त्रियों की अस्मत भी रखी गई है। देश के बँटवारे के नाम पर इतने जघन्य पाप लोगों ने किए इससे आज़ादी की कल्पना ही कलुषित हो गई। आज हिंदुस्तान और पाकिस्तान की जो सीमा निर्धारित है, उसके दोनों ओर कितने निरपराध लोगों का खून बहाया गया, कितनी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया इसका विचार कर आजादी का सारा आदर्श ही मिट्टी में मिलता दिखाई देता है।

'इंसान' उपन्यास में यज्ञदत्त शर्मा ने स्त्रियों तथा बच्चों पर हुए अत्याचारों का वर्णन किया है। विभाजन के समय मनुष्यता कहीं बह गई थी। लोगों में दानवता अट्टहास कर उठी थी और क्रूरता का पक्ष मजबूत होता जा रहा था। बहुत से मासूम बच्चों को धर्म के पागल दीवानों ने चीर डाला। फूल से सुकुमार बच्चों को पिशाचों ने उठाकर पृथ्वी पर इस तरह पटक दिया जैसे धोबी पत्थर पर मैले कपड़ों को छांटता है। बालिकाओं के अंग-भंग करके, हाथों को पीछे बांधकर उनकी नंगी जुलूसें निकालीं। रेलवे स्टेशन पर लाशें इस प्रकार पड़ी थीं मानो भंगियों ने बीमारी फैलाने वाले कुत्ते-बिल्लियों को ज़हर की गोलियां खिला दी हों। धर्मान्धों ने स्त्रियों को जड़ पदार्थ से भी बेकार समझा। घर वालों के सामने उनकी बहू-बेटियों को अपने हवस का शिकार बनाकर निगल लिया। 'बीज' उपन्यास में अमृतराय ने विभाजन के नाम पर हुए कुकृत्यों का बयान है। पेट्रोल छिड़ककर घरों में आग लगी थी और लोग उसमें भुन रहे थे। बहशियों ने लड़कियों को नोच डाला। उनकी अस्मतें फसल की तरह खेतों में बिछी हुई

थीं और एक के बाद दूसरा जानवर उन्हें चर रहा था। विभाजन वस्तुतः एक भयंकर भूकंप था जिसमें पृथ्वी के फट जाने तथा उसमें समा जाने में ही दोनों ओर के लोगों का कल्याण था। मनुष्य द्वारा मनुष्य की दुर्गति उस समय हुई और यह कल्पना क्षेत्र से भी बाहर की बात है।

यशपाल कृत 'झूठा-सच' उपन्यास की नायिका तारा को ससुराल से एक गुंडा उठाकर ले जाता है और वहां उसका क्रूर बलात्कार होता है। इस उपन्यास में कई स्त्री पात्र विभाजन से जुड़ी त्रासद स्थितियों को भोगती हैं। पुरुष समाज का सारा पौरुष स्त्री को गाली देने उसे रौंदने, भोगने और उत्पीड़ित करने में ही व्यतीत होता है। 'झूठा-सच' उपन्यास के ही एक स्त्री पात्र का वाक्य कुछ इस तरह से है कि ''हिन्दवी हो चाहे मुसलमानी, जो अपनी इज्जत के लिए मर गई, वह अच्छी रही। औरत के शरीर की तो बर्बादी है। औरत तो खैर बकरी है जो चाहे छीन ले जाए।''[13]

लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। बच्चों को उनकी माताओं से छीन लिया जाता है। स्त्रियों के साथ नृशंस बलात्कार किया जाता है तथा विरोध करने वालों को क्रूरतापूर्वक मार दिया जाता है। 'झूठा-सच' उपन्यास की तारा को उसका परिवार अमानवीय स्थितियों में धकेल देता है और समाज उससे पशु से भी बदतर व्यवहार करता है। नारी के जीवन में छाई त्रासदियों का दिल दहलाने वाला चित्रण भी 'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल द्वारा किया गया है। एक गुंडे द्वारा तारा का बलात्कार, डॉ. शोभा के साथ सड़क पर सामूहिक रूप से बलात्कार और उसकी हत्या, नग्न मुसलमान औरतों की खुली सड़क में नीलामी, नग्न हिन्दू महिलाओं को बंदी बनाना, नग्न स्त्री के शव को ताजिए के समान नगाड़ों और बाजों के साथ जुलूस निकालना जैसी कई दानवी प्रवृत्तियों का हृदय विदारक दृश्य इस उपन्यास में चित्रित है। विस्थापन से सर्वाधिक दुर्दशा सही मायने में तो स्त्रियों की ही हुई। बाद में जब वे अपने परिवारों के पास आए तो परिवार वालों ने उन्हें भ्रष्ट मानकर स्वीकारने से भी इंकार कर दिया। बन्ती के रूप में ऐसी स्त्रियों का अत्यंत दारुण व त्रासद रूप इस उपन्यास में प्रस्तुत है जो तारा के साथ ही मुक्त होकर भारत आई थी और अपने पति-बेटे की तलाश में भटककर अंत में जब दिल्ली पति के घर पहुँच जाती है तो उसकी सास व पति उसे घर में घुसने ही नहीं देते हैं। पूर्ण रूप से त्याग दी गई बन्ती वहीं दहलीज़ पर सिर पटककर अपने प्राण दे देती है। दुनिया को सुंदर बनाने वाली, पुरुष

को जन्म देने वाली, दु:ख में बराबर की भागीदारी निभाने वाली, निष्पाप मुस्कान से पुरुष की परेशानियों को सुनने वाली स्त्री, पुरुष रचित समाज में किस तरह उपेक्षित है इसका एहसास भी 'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल बखूबी करवाते हैं।

भीड़ के बीचोबीच चुटिया से खींचकर जवान निर्वस्त्र लड़कियों को नीलाम किया गया, यह क्रूरता की आख़िरी सीमा है, पशुता का सबसे बड़ा प्रमाण है। शरणार्थी कैंप में ऐसी अनेक लड़कियाँ थीं जिसे ब्याह कर देने के कारण अपने ही परिवार वालों ने नहीं अपनाया, और उन्हें कलंकित समझकर ससुराल वालों ने भी साथ नहीं दिया। विभाजन से जुड़ी विभीषिकाओं में शिकार हो जाने के कारण अनेकों औरतें गर्भवती हो गईं। कैंप में ही इन औरतों ने बच्चों को जन्म दिया और ऐसे बच्चों की परवरिश के लिए सरकार ने इलाहाबाद में 'शारदा भवन' बनाया। विभाजन ने लोगों की नैतिकता के सारे नियम बदल दिए। बहुत से लोग शरणार्थी लड़कियों को चरित्रहीन समझकर उनका दुरूपयोग करने पर तुले हुए थे। 'झूठा-सच' उपन्यास के तारा और कनक के साथ भी ऐसा ही हादसा होता है। बहुत सी परित्यक्त लड़कियाँ घरेलू नौकरानियाँ बन गईं और अनेकों औरतें हालात से समझौता कर वेश्या बन जाने को विवश हुईं। स्त्री चाहे जिस वर्ग या सम्प्रदाय की हो, उसकी दशा हमारे समाज में एक ही जैसी है। पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री को बराबरी का दर्जा कभी नहीं दिया या तो उसे देवी या शक्ति के रूप में महिमामंडित करके उनके पैरों में दिव्यता की बेड़ियाँ पहनायी या फिर उसे सिर्फ पैरों की जूती ही समझा। जो लोग भारत की आजादी को मात्र सत्य, अहिंसा तथा शांति से प्राप्त वस्तु मात्र समझते हैं उन्हें अपने विचार में परिवर्तन लाना होगा कि भारत की स्वतन्त्रता रक्तहीन क्रांति से प्राप्त नहीं हुई है, उसके मूल्य के रूप में राष्ट्र को जो 'महाराक्तदान' करना पड़ा उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस रक्तदान में स्त्रियों की भूमिका भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही है।

दृष्टि के बदलाव से आस्था भी खंडित होती है किन्तु कर्मपथ पर अग्रसर इन लोगों ने परिस्थितियों के अनुरूप खुद को ढाला तथा शरणार्थी के बजाए अपना पुरुषार्थी रूप उजागर कर विभाजन की त्रासदी का उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया। संख्या की दृष्टि से आधी दुनिया का प्रतिनिधित्व करने वाला स्त्री समुदाय भी विचारहीनता की बेड़ियों को परिस्थितिजन्य यथार्थ से टकराकर तोड़ता है

तथा अपनी जीवनधारा को भाग्यवादी रुझान से मुक्त करने का प्रयास करता है। विभाजन के दौरान दुहरी दुर्दशा की शिकार स्त्रियों को सामाजिक अस्वीकृति का भी शिकार होना पड़ा। उन्हें देश निकाले के साथ-साथ घर से निकाले जाने की सजा भी भुगतनी पड़ी। उनकी दुर्दशा सामाजिक व आर्थिक दोनों स्तरों पर हुई। विस्थापित स्त्रियों ने खुद को स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया। पुराने बन्धनों के टूटने की मजबूरी के कारण भी वे आज़ाद थीं। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ नौकरी करने लगीं। बाकी स्त्रियों ने भी पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान विकसित चेतना के कारण भी उन्होंने सीमित आकाश से छुटकारा पा लिया था और जीवन के व्यापक संदर्भ में प्रविष्ट हो अपनी असहायता की कर्मठता से दबने का प्रयास किया।

निष्कर्ष : विभाजन पर आधारित हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्र की सबसे त्रासद दुर्घटना को विभिन्न आयामों में चित्रित किया गया है, जिसमें विभाजन के लिए जिम्मेदार राजनैतिक, सामाजिक व ऐतिहासिक दुश्चक्र का खुलासा किया गया है। विभाज्नोत्तर परिणामों के भायवह रूप का भी तथ्याधारित अंकन किया गया है। देश के बँटवारे ने एक नया अभिशप्त वर्ग पैदा किया-शरणार्थी। यह वर्ग विस्थापन की तमाम तकलीफों को झेलता हुआ अपने को स्थापित करने के प्रयास में जुट जाता है। पैशाचिक नरसंहार से बचकर आया यह समूह नई-नई दिशाओं में अपने पाँव जमाने लगा। विस्थापन और स्थापन के क्रम में उसे जिन संघर्षों से गुजरना पड़ा उससे समाज के सम्मुख अलग मूल्य उपस्थित हो गया। अपने को स्थापित करने के प्रयास में प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पनप चुकी धूर्तता, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरकता की अनेक विकृतियों को भी शरणार्थी समुदाय अपना रहा था। जिसका सीधा प्रभाव मूल निवासियों पर भी पड़ा और इससे मूल्य विकृति का फैलाव बड़ी तीव्र गति से होने लगा, जिसका प्रामाणिक चित्रण हिन्दी के कई उपन्यासों में किया गया है।

विभाजन ने हमारे राष्ट्रीय चरित्र को ही प्रश्नवाचक स्थिति में ला खड़ा किया। विभाजन पश्चात् की घटनाओं ने पीढ़ियों से संचित मूल्य, आस्था, संस्कृति, सामाजिकता सभी को तहस-नहस कर दिया। स्त्री समुदाय की पीड़ा, यातना, अपहरण, बलात्कार, तथा बहिष्कार के संदर्भों से भी गुजरना पड़ा था। परन्तु नई मानसिकता की उपज से उनकी भूमिका में बदलाव आने लगा। बलात्कार

की शिकार लड़कियों में भी आत्मविश्वास व आत्मसम्मान का भाव धीरे-धीरे उत्पन्न हुआ। समाज तथा परिवार से विच्छिन्न होने के कारण भी उन्हें परंपरागत रूढ़ियों से मुक्ति मिल रही थी। पुरुषों की तरह उनके भी कार्यक्षेत्र का दायरा विस्तृत होने लगा था। हिन्दी उपन्यासों में विभाजन की यंत्रणा से पीड़ित स्त्री समुदाय की व्यथा-कथा को भी विभिन्न स्थितियों के साथ उद्घाटित किया गया है। विभीषिका से पीड़ित तमाम स्त्रियों ने भी शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय के लिए घर से बाहर प्रस्थान किया, जिससे स्थानीय लोगों के संस्कारों में मूलभूत परिवर्तन आया। विभाजन ने जो घाव दिए थे उसका भरना संभव तो नहीं था फिर भी आर्थिक रूप से टूट चुके लोग अपने श्रम, त्याग, निष्ठा तथा चतुराई से अपना आर्थिक आधार मजबूत करने में लग जाते हैं। बहुत से लोग इसमें सफल भी हो जाते हैं किन्तु छूटी हुई मिटटी के लगाव से वे मुक्त नहीं हो पाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थः

1. लज्जा, तसलीमा नसरीन, पृष्ठ संख्या-05
2. आजादी की कहानी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, पृष्ठसंख्या-233
3. वही, पृष्ठ संख्या-233
4. वही, पृष्ठ संख्या-212
5. वही, पृष्ठ संख्या-233
6. बारह बजे रात के भारत की आजादी की कहानी, कॉलिन्स और लॉपियर, पृष्ठ संख्या-191
7. वही, पृष्ठ संख्या-250-251
8. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ संख्या-11
9. आउटलुक, 1947-1997 विशेषांक पर प्रकाशित संस्मरण से उद्धृत पृष्ठ संख्या-34
10. आउटलुक, 1947-1997 विशेषांक पर प्रकाशित संस्मरण से उद्धृत पृष्ठ संख्या-34
11. वही, पृष्ठ संख्या-34
12. और इन्सान मर गया, ख्वाजा अहमद अब्बास, पृष्ठ संख्या-1
13. झूठा सच, यशपाल, पृष्ठ संख्या-424

भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य से : विभाजन और विभाजित होती नारी

ज्योति शर्मा*

विभाजन, घर का हो या ज़मीन-जायदाद का; बेशक एक गम्भीर और त्रासद से भरा मुद्दा होता है। वहीं जब बात देश की हो तो यह रूप और भी भयानक हो जाता है। भारतीय इतिहास की सबसे भयानक त्रासदियों में से एक है- भारत-पाक विभाजन। 1947 में भारत और पाकिस्तान के विभाजन के कारण इसे मानव इतिहास का सबसे बड़ा सामूहिक प्रवास माना जाता है। एक देश का दो टुकड़ों में तबदील होने से आवाम को या तो भारत से या पाकिस्तान से उखाड़ना पड़ा, हालांकि कई लोगों ने अपनी पुश्तैनी भूमि में रहने का फैसला किया। यह इतिहास का एक निर्णायक क्षण और एक दर्दनाक अनुभव था। विभाजन की यादें आज भी ताजा दम हैं, जिस का कारण विभाजन से प्रेरित साहित्य रहा है। उपन्यासों, लघु कथाओं, नाटक, कविता, फिल्म, मौखिक आख्यानों और औपचारिक इतिहास की शैलियों में विभाजन की विषय-वस्तु ने विभाजन की नई दृश्यता में योगदान दिया है। विभाजन की हिंसा का आधार कई कारण बने, जिसमें लोगों के कई समूहों को धर्म, जाति और राजनीतिक निष्ठाओं के अनुसार वर्गीकृत किया गया। समाज, इतिहास, राजनीति, संस्कृति, भाषा, साहित्य और लोक-जीवन का इतना कुछ इसमें दाँव पर लगा। भारतीय भाषाओं के बहुतेरे लेखकों ने अपने-अपने ढंग से इस त्रासदी पर कल्पना और यथार्थ की अभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी संवेदनाएं व्यक्त की हैं। उनकी कहानियाँ, उनके उपन्यास, उनके भाषण या उनके

* सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी) यूनिवर्सिटी इंस्टिट्यूट ऑफ़ टीचर्स ट्रेनिंग एंड रिसर्च, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, मोहाली, पंजाब

लेखन से सम्बन्धित हर विधा; जहां एक ओर उस समय की घटनाओं का वर्णन करते हैं, वहीं दूसरी ओर उस समय के घटनाक्रम से जुड़ी मानवीय सम्वेदनाओं की एक चीख को; आजादी के इतने वर्ष बाद भी सुनने को मजबूर करते है। विभाजन से सम्बन्धित इस साहित्य में एक प्रतिरोध, एक प्रतिशोध, बर्बरता, दिखाई देती है तो कहीं मानवीयता की छुअन भी दिखाई देती है। विभाजन का यह ऐलान जिस दुस्साहसिक गति के साथ पूरा किया गया था, भारत और पाकिस्तान जैसे दो नए देशों के बीच जनसंख्या के दो हिस्से कर देने के लिए इसे बहुत कम सराहा गया। नतीजन, आवाम आजाद हो कर भी एक ऐसे खतरे में थी जहाँ धर्म के नाम पर भाई-भाई का दुश्मन बन चुका था। बहू-बेटी-बहन धर्म के नाम पर वीरो से आयशा, सलमा से बंतो बनने को मजबूर थी। आवाम के बँटवारे के साथ आनेवाली समस्यायों का असर साहित्य वर्ग पर भी भरपूर दिखाई दिया। जिस में धर्मवीर भारती का 'तमस', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', कृष्णा सोबती का 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दोस्तान' यशपाल का 'झूठा सच' मोहन राकेश का 'मलबे का मालिक' अज्ञेय की 'शरणदाता', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया'; असगर वजाहत का 'जिस लाहौर नइ वेख्या; कमलेश्वर की 'कितने पाकिस्तान' और पंजाब की सुप्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम का उपन्यास 'पिंजर' विभाजनकालीन साहित्य में अपने अस्तित्व को तलाशती इंसानियत की मुखरित होती दास्ताँ है। प्रत्येक विधा की अपनी सुव्यवस्थित और पारदर्शी दुनिया होती है, चाहे वह कहानी हो या जीवन कहानी। यह सब उसकी ठोस ईमानदारी पर निर्भर करता है। इस प्रपत्र के माध्यम से भारतीय भाषाओं में लिखित विभाजन संबंधी चुनिन्दा साहित्य की रचना-प्रकिया द्वारा विभाजन और विभाजित होती नारी की दशा का अध्ययन करने का प्रयास है।

सूचक शब्द : *विभीषिका; लैंगिकता; बदसलुकियाँ; वेहशीपन; कटोचना*

प्रस्तावना

विभाजन की बात आते ही दो देशों के बीच खिची हुई एक लकीर जो न केवल धरती पर खिची हुई लकीर बनी बल्कि लोगों के सीने को चीर देने वाली लकीर भी बनी और विभाजन की इस प्रकिया ने आज़ादी के 77 साल बाद भी

लोगों के दिलों में इस दर्द को जीवित रखा हुआ है। ये दर्द भारतीय भाषाओं में साहित्य का आश्रय लेकर मुखरित रहा है। बेशक विभाजन ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, जातिगत अनेक पक्षों को प्रभावित किया, हर मनुष्य इसकी चपेट में आया लेकिन मनुष्यता का एक अंश नारी पर इसका प्रभाव एक दर्दनाक चीख के रूप में बन कर उभरा। इस हूक को भारतीय साहित्यकारों ने अपने साहित्य में बखूबी उभारा। ये साहित्य यथार्थ का प्रतीक बन कर उभरा। हर घटना का प्रभाव व्यक्तिगत तौर पर भिन्न होता है। उसी प्रकार देश में घटी विभाजन जैसी घटना का प्रभाव नारी वर्ग पर अपना अलग रूप रखता है। लैंगिकता इसमें मूल रूप में दिखाई देती है। जहाँ नारी जाति, वर्ग, कुटुंब, देश, आदि का मान है वहीं विभाजन जैसी स्थिति में उसी को प्रतिनिधिता का रूप देकर अपमानित करना, ज़लील करना, बदला लेने के लिए उसको निशाना बनाना, इत्यादि; विभाजन के समय दोनों देशों भारत और पाकिस्तान की औरतों के साथ हुई बदसलूकी इसका जीता-जगता उदाहरण है। अपहरण, बलात्कार, यौनिक बदसलुकियाँ, सामूहिक बलात्कार, अंग भंग करना, गर्भवती औरतों के पेट पर लात-घूसे मारना ऐसी बहुत सारी घटनाएँ, जिसमें स्त्रियाँ विभाजन की शिकार हुई। न केवल पराये लोगों से बल्कि अपने परिवार और सगे-सम्बन्धियों से भी। कुछ औरतों पर विभाजन का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वो विक्षिप्त ही हो गयीं। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर देश के बँटवारे के साथ-साथ औरतों की अस्मिता, उनके शरीर का भी बँटवारा हुआ।

साहित्य में विभाजन और विभाजन में स्त्री

विभाजन की त्रासदी के विषय में इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों में उसके परिणाम विविध प्रकार से मिलते हैं। लेकिन साहित्य ने इन दो देशों के विभाजन की त्रासदी को आत्म-सात करते हुए अपने उपन्यासों, कहानियों, कविताओं, रिपोर्ताज़ों, नाटकों, इत्यादि विधाओं के ज़रिये अंग्रेजी साम्राज्य की कूट नीतियों, राजनैतिक पार्टियों और नेताओं की गतिविधियों, सांप्रदायिक दंगों, लोगों के वेहशीपन और इंसानियत से बेमुख होने को इस तरह से दर्शाया है कि विभाजन की विभीषिका भुलाये नहीं भूलती।

राही मासूम रज़ा का 1966 में लिखा गया उपन्यास *'आधा गाँव'* एक आंचलिक उपन्यास है जो विभाजन की त्रासदी को दर्शाता है। अपनी मिट्टी, अपने लोग,

अपनी परम्पराओं, अपनी सभी खूबियों और कमज़ोरियों का सशक्त उदाहरण इस उपन्यास में मिलता है। इस उपन्यास में देश का विभाजन, सांप्रदायिक दंगे, नये संविधान की स्थापना, और ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति के नजरिये से गंगोली गाँव के शिया मुसलमानों की कथा कही गयी है। राही ने स्वयं अपने इस उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि *''यह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफर था। मैं गाजीपुर की तलाश में निकला हूँ लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूँगा। अगर गंगौली की हक़ीक़त पकड़ में आ गयी तो मैं गाजीपुर का एपिक लिखने का साहस करूँगा।''*

यशपाल का 'झूठा सच' आज़ादी के बाद लिखे गये सबसे लोकप्रिय और चर्चित उपन्यासों में से एक है। दो खण्डों में लिखा गया ये उपन्यास भारत विभाजन की पृष्ठभूमि, विभाजन की त्रासदी, और विभाजन के बाद के प्रभावों का चित्रण है। 'झूठा सच' उपन्यास में यशपाल ने स्त्री जीवन के विविध संघर्षों को चित्रित किया है जिसका निर्वहन उपन्यास में तारा करती है। उपन्यास के प्रथम भाग में वतन और देश में इन स्थितियों का अत्यंत मार्मिक एवं विस्तृत चित्रण किया गया है। इस भाग के अंत में शरणार्थियों को लेकर आने वाली एक बस का ड्राइवर कहता है, *''रब्ब ने जिन्हें बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उन्हें दो कर दिया गया है।''*

भीष्म साहनी का 1973 में लिखा गया उपन्यास *'तमस'* विभाजन से पहले पंजाब की उथल-पुथल और साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण है।

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास *'जुलूस'* विभाजन से सम्बन्धित उपन्यासों की शृंखला में एक ऐसा उपन्यास है जिसकी कहानी पूर्वी पाकिस्तान यानि कि बंगाल के शरणार्थियों पर केन्द्रित है। उपन्यास की नायिका पवित्रा इस उपन्यास को जीवंत करती है।

कमलेश्वर का *'लौटे हुए मुसाफिर'* की पहली पंक्ति विभाजन के बाद का चित्रण करती है। *''सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था''* इस पंक्ति से विभाजन का पूरा दृश्य दृश्यमान हो जाता है।

बलवंत सिंह का उपन्यास *'काले कोस'* की कहानी पंजाब के विभाजन से कुछ समय पहले शुरू हो कर दंगों के बीच समाप्त होती है। वहीं कमलेश्वर का *'कितने पाकिस्तान'* एक प्रेम कहानी से शुरू होता है जिसमें विभाजन की गाज गिरती है और ये त्रासदी प्रेम की त्रासदी बन जाती है। जहाँ देश, रिश्ते-नाते,

प्रेम सभी विभाजन एक साथ देखने को मिलते हैं।

प्रसिद्ध पत्रकार और पूर्व राजसभा संसद कुलदीप नय्यर, जो स्वयं सियालकोट से विस्थापित होकर भारत आये थे उन्होंने अपने साक्षात्कार के दौरान कहा कि, *''सियालकोट में कोई दंगे नहीं हुए, समरेवाल तक कोई नहीं था। लेकिन इसके बाद हमें बिखरी हुई लाशें मिलीं। मुझे विशेष रूप से याद है जब हमारा छोटा समूह विपरीत दिशा से खुद को घसीटते हुए एक समान समूह के सामने आया था। हम बस रुके और एक-दूसरे को देखते रहे। हम एक दूसरे को देखते रहे, ''वो भी बेघर थे, हम भी।''*

इतिहासकार सलिल मिश्र ने 12 अगस्त 2012 के DeccanHerald (SundayHerald) में प्रकाशित अपने लेख 'द ट्रेजेडी ऑफ़ पार्टीशन' में लिखा है *''विभाजन कोई अचानक घटी घटना नहीं थी। इसके पीछे और आगे घटनाओं की एक लम्बी शृंखला है। इसके नतीजे आज भी हम भुगत रहे हैं।''*

इसी लेख में विभाजन के दौरान हुई हिंसा के बारे में वे आगे लिखते हैं कि *''उन्होंने किसी आवेश या घृणा के चलते सामने वाले को नहीं मारा बल्कि इस अंदेशे में मारा कि यदि मैंने इसे नहीं मारा तो ये मुझे मार डालेगा। उन्होंने मारे जाने, खुद मरने के स्थान पर सामने वाले को मारना ज्यादा बेहतर समझा''* [DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]

हिंदी कथाकार स्वयं प्रकाश की कहानी 'पार्टीशन'के अंत में एक वाक्य आता है जो आज की स्थिति को दर्शाता है- *''क्या आप हिस्ट्री पढ़ाते हैं? कह रहे हैं पार्टीशन हुआ था! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है...''* (www.hindisamay.com)

कवि सुधांशु फिरदौस की एक लम्बी कविता *'सूखते तलाब की मुर्गाबियाँ'* पहल पत्रिका से प्रकाशित हुई जिसमें कवि ने भारत विभाजन की परिस्थितियों को वर्तमान स्थितियों से जोड़ते हुए बताया है कि दंगे, हिंसा, वैमनस्यता आज भी वैसी की वैसी ही है।

''सियासत तब भी देखती थी हिन्दू-मुसलमान,
सियासत अब भी देखती है हिन्दू-मुसलमान
लगाओ नारे थोड़े और ज़ोर से मज़लिसों में तक़सीम से,
क्या हुआ जो तुमने पा लिया है अपना पाकिस्तान
क्या ज़मींदारहुआ जो हमने पा लिया हिंदुस्तान

क्या अब नहीं होता कहीं दंगा?
क्या अब नहीं होता कहीं क़त्ल-ए-आम?
क्या अब नहीं सोते भूखा कहीं इन्सान!''

(पहल, सम्पादक-ज्ञान रंजन, जबलपुर, (म.प्र.); अंक 109; अक्तूबर 2017, पृष्ठ 24)

विभाजन का सबसे ज्यादा असर स्त्रियों पर पड़ा। मारपीट, हत्या, अपहरण, गर्भवती महिलाओं की भ्रूण हत्या, सामूहिक बलात्कार, दासित्व इत्यादि विभाजन की त्रासदी का एक ऐसा रूप जिसे औरतों ने झेला। औरतों पर हिंसा, यौन हिंसा का क्रूरता का जो रूप देखने को मिला वो अन्य कहीं नहीं मिला।

भारतीय साहित्यकारों ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से औरतों पर हुए इसी अत्याचार, हिंसा, बलात्कार इत्यादि घटनाओं को दर्शाते हुए स्त्री की मानसिक स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया। विभाजन का असर इतना रहा कि लोग इस डर से कि हमारे घर की औरतें किसी विधर्मी के हाथ न पड़ जाएँ घर वालों ने या तो उन्हें ज़हर खाने पर मजबूर कर दिया या स्वयं उनको मौत की नींद सुला दिया। सलिल मिश्र अपने लेख 'द ट्रेजेडी ऑफ़ पार्टीशन' में लिखते हैं कि, *''पितृ-सत्तावादियों ने अपने घर की औरतों को किसी और के द्वारा बेइज्जत हो जाने से बचाने के लिए स्वयं ही मौत के घाट उतार दिया। उन्हें अपने घर की औरतों को मार देना एक मात्र सम्मानजनक विकल्प लगा होगा।''* [DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]

उर्वशी बुटालिया ने अपनी पुस्तक 'द अदर साइड ऑफ़ साइलेंस: वौइस् फ्रॉम द पार्टीशन ऑफ़ इण्डिया' में अपने घर की स्त्रियों को अपने ही घर के लोगों द्वारा मार दिए जाने का विवेचन किया। उन्होंने कहा, *''किसी समाज से बदला लेना या उसे कोई सबक सिखाना है या उसके किये की सज़ा देनी है तो उस समाज की स्त्रियों को कुचलना, उन पर अत्याचार, हिंसा, और ठिकाने लगाना शुरू कर दो। वह समाज खुद-ब-खुद तुम्हारे अंकुश तले आ जाएगा। इस आधार पर हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों के लोगों ने स्त्रियों को अपना शिकार बनाया।''*

हिन्दोस्तान की तकसीमात में पंजाबी की सुप्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका अमृता प्रीतम के तड़पते दिल ने एक हुंकार भरी और उस हुंकार से एक कविता उपजी। जिस में वारिस शाह को जागने का आह्वान किया गया था।

''अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ कित्थों क़बरां विच्चों बोल

ते अज्ज किताब-ए-इश्क़ दा कोई अगला वरका फोल
इक रोई सी धी पंजाब दी तू लिख-लिख मारे वैन
अज्ज लक्खां धीयाँ रोंदियाँ तैनू वारिस शाह नु कैन''

इस के अतिरिक्त अमृता प्रीतम के *'पिंजर'* उपन्यास में नायिका पूरो अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती है; जब बँटवारे की आग में हिन्दू-मुसलमान स्त्रियों के साथ धर्म के नाम पर बदसलूकी और अगवाह की गई लड़कियों की व्यथा को दर्शाता है। जिन्हें अपहृत किया गया, वापिस आने पर परिवार वालों ने अपनाने से इनकार कर दिया; जिन्हें पूरो से हमीदा बनाया गया; लाजो जैसी लड़कियों को दासी बनाया गया-'पिंजर' उपन्यास की नायिका पूरो का यह सम्वाद उन लाखों हजारों औरतों के लिए हामी भरता नजर आता है, *''कोई भी लड़की हिन्दू हो या मुसलमान, अपने ठिकाने पहुंच जाएगी तो समझना पूरो की आत्मा ठिकाने पहुंच गई।''*

सलिल मिश्र लिखते हैं कि, ''लगभग सत्तर हजार स्त्रियाँ पकड़ी गयी। उनका अपहरण हुआ और फिर उन पर बलात्कार हुआ। दूसरे धर्म की स्त्री का अपहरण उस धार्मिक समुदाय से बदला लेने का एक मान्य रास्ता बन गया था।'' [DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]

विभाजन के दौरान अपहरित की गयी स्त्रियों का विवाह अपहरणकर्ताओं के साथ करवा दिया गया। जब वो धीरे-धीरे अपने नये घरों और माहौल में व्यवस्थित हुई तो सरकारों ने अपनी-अपनी स्त्री का अदला-बदली करने का निर्णय लिया जो स्त्रियों की मानसिक स्थिति को कटोचता हुआ दिखाई देता है। जो स्त्रियाँ वापिस अपने पुराने घरों में गयी उन्हें अपहरण, बलात्कार के कलंक के साथ अपने परिवार, सगे-सम्बन्धियों में पुनः स्थापित होने में कई मुश्किलें आयीं। राजेन्द्र सिंह बेदी की कहानी *'लाजवंती'* इस का जीता-जागता स्वरूप है- जब विभाजन के बाद औरतों की अदला-बदली हो रही थी; इस कहानी के दरम्यान आने वाला सम्वाद *''हम नहीं लेते मुसलमानों की जूठी की हुई औरत''* स्त्री की दशा का बखान करती है। लेकिन नायक सुंदर लाल ने जब नायिका लाजवंती को फिर से अपनाया तो एक नये नाम के साथ, जो था-'देवी'। लाजो की दिल की बात जब वह यह कह कर सुनने से इनकार कर देता कि पिछली बातों को भूल जाओ तो लाजो को लगता-*''वह फिर से वस कर, फिर से उजड़ गई।''*

विभाजन की सती हुई कुछ स्त्रियों के परिवार वालों ने उन्हें नहीं अपनाया तो किसी ने कुएं में छलांग लगा दी, किसी ने रेल के नीचे कटकर जान दे दी, कोई अपना मानसिक संतुलन खो बैठी तो कोई पागलखाने पहुँच गयी होगी। ये यथार्थ सहादत हसन मंटो की कहानियों में देखा जा सकता है।

मंटों की कहानी *'खोल दो'* में एक पिता और बेटी के दर्दनाक और दरिंदगी की हद से पार एक लड़की की मानसिक स्थिति पर हुए गहरे असर को बयाँ करती दिखाई देती है, 'खोल दो' दंगाइयों के बीच फंसकर सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई लड़की की कहानी है- *''सिराजुद्दीन के हलक़ से सिर्फ़ इस क़दर निकल सका, ''जी मैं...जी मैं...इसका बाप हूँ!''*

डाक्टर ने स्ट्रेचर पर पड़ी हुई लाश की तरफ़ देखा। उसकी नब्ज़ टटोली और सिराजुद्दीन से कहा, *''खिड़की खोल दो।''*

''सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश पैदा हुई। बेजान हाथों से उसने इज़ारबंद खोला और सलवार नीचे सरका दी। बूढ़ा सिराजुद्दीन ख़ुशी से चिल्लाया, ''ज़िंदा है...मेरी बेटी ज़िंदा है... ''डाक्टर सर से पैर तक पसीने में ग़र्क़ हो गया।''

तहमीना खान ने एक्सप्रेस ट्रिब्यून ब्लॉग में 13 अगस्त 2015 को प्रकाशित अपने लेख 'एंड ऑफ़ साइलेंस: अ विमेंस नेरेटिव ऑफ़ द 1947 पार्टीशन' में लिखा, *''16 वर्ष के ऊपर के पुरुषों को ये विकल्प दिया गया था कि वे अभी जहाँ हैं, वहां चाहे तो रह सकते हैं लेकिन स्त्रियों पर राज्य द्वारा इसे थोप दिया गया था। उन्हें, यदि उनके कोई बच्चे हैं तो उन्हें वहीं छोड़कर आने को कहा गया। यदि वे गर्भवती थी तो बावजूद इसके कि गर्भपात गैर-कानूनी था उनका गर्भपात करवाया गया''* (खान तहमीना: द एस्प्रेस ट्रिब्यून (ब्लोग्स); 13 अगस्त 2015)

राजेन्द्र सिंह 'साहिल' की कहानी *'ठहरा हुआ पानी'* इसी दर्जे की कहानी है- जिस में नायिका मानकौर दूसरी जगह बैठने पर भी उसका पति इस डर से उसे तीसरी जगह छोड़ आने को विवश हो जाता है कि कहीं पहले पति के भाई उसे कोई नुकसान न पहुंचा दें। इस के चलते मानकौर अपने अस्तित्व की तलाश करते हुए कुएं में कूद कर अपनी जान दे देती है।

वहीं अनीता देसाई का उपन्यास *'क्लियर लाइट ऑफ़ डे'* विभाजन से पूर्व, विभाजन के दौरान और विभाजन के बाद स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति के यथार्थ की प्रस्तुति है।

इस्मत चुगताई की अप्रकाशित लघु कहानी पर आधारित फिल्म *'गरम हवा'* में पोस्ट-गांधीयन के हालातों की कहानी है जो विभाजन के कारण आई रिश्तों में दरार और एक नवयुवती के उजड़ते हुए सपनों और बिखरते हुए रिश्तों को उजागर करती है; विभाजन से उत्पन्न हुई ऐसी स्थिति को वह झेल नहीं पाती और ख़ुदकुशी कर लेती है।

विभाजन पर बड़ी तदाद में लिखा गया साहित्य चाहे वो हिंदी भाषा में हो, चाहे पंजाबी भाषा में, चाहे उर्दू में हो या अंग्रेजी में; या फिर किसी भी जुबान में; अपने अंदर दिल को दहला देने वाली दास्ताँ समेटे हुए है। एक ऐसा जख्म जिस का महरम शायद बनना ना-मुमकिन है।क्योंकि यह जख्म राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वर्गगत, मानसिक; हर पक्ष से, हर पहलू से नासूर बना हुआ है, जो रिस रहा है लेकिन भरपाई नहीं कर सकता।

सन्दर्भ :

- राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, नई दिल्ली: राजकमल पेपरबैक्स. पृ० 11. आई०एस०बी०एन० 978-81-267-1502-2.
- यशपाल रचनावली खंड-3, (झूठा सच-भाग 1 वतन और देश) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2007; पृष्ठ -415
- भीष्म साहनी- तमस
- फणीश्वरनाथ रेणु- जुलूस
- कमलेश्वर-लौटे हुए मुसाफिर
- बलवंत सिंह-काले कोस
- कुलदीप नय्यर,साक्षात्कार,222-nationalheraldindia.com.
- सलिल मिश्र, 'द ट्रेजेडी ऑफ़ पार्टीशन'[DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]
- स्वयं प्रकाश-कहानी 'पार्टीशन' (www.hindisamay.com)
- कवि सुधांशु फिरदौस-कविता 'सूखते तलाब की मुर्गाबियाँ' पहल पत्रिका से प्रकाशित
- सलिल मिश्र, 'द ट्रेजेडी ऑफ़ पार्टीशन' [DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]
- उर्वशी बुटालिया, 'द अदर साइड ऑफ़ साइलेंस: वौइस फ्रॉम द पार्टीशन ऑफ़ इण्डिया''
- अमृता प्रीतम- कविता-अज्ज आखां वारिस शाह नूं
- अमृता प्रीतम- 'पिंजर' उपन्यास

- सलिल मिश्र,'द ट्रेजेडी ऑफ़ पार्टीशन' [DeccanHerald (SundayHerald), 12 अगस्त 2012]
- राजेन्द्र सिंह बेदी की कहानी 'लाजवंती'
- सदाअत हसन मंटों 'खोल दो'
- खान तहमीना: द एस्प्रेस ट्रिब्यून (ब्लोग्स); 13 अगस्त 2015
- राजेन्द्र सिंह 'साहिल' ठहरा हुआ पानी
- अनीता देसाई, 'क्लियर लाइट ऑफ़ डे'
- इस्मत चुगताई की अप्रकाशित लघु कहानी पर आधारित फिल्म 'गरम हवा'

कृष्णा सोबती की कहानियों में भारत विभाजन की त्रासदी

(कहानी मेरी माँ कहाँ, सिक्का बदल गया और पितृ हत्या के विशेष संदर्भ में)

नेहा राठी*

सार

भारत की आजादी के इतिहास में 14 अगस्त की तिथि एक ऐसा कलंक है जो हमारी पिछली पीढ़ी के लिए तो अभिशाप था ही बल्कि यह हमें और हमारी आने वाली पीढ़ी को भी सर्पदंश की भाँति सालता रहेगा। जहाँ एक ओर आज़ादी आशा की नई किरण ले कर आई वहीं दूसरी ओर यह अपने साथ विभाजन की त्रासदी भी लाई। जहाँ पूरा भारत सदियों से प्रतीक्षित स्वतंत्रता का स्वाद चख रहा था वहीं दूसरी ओर भारत ही में एक वर्ग ऐसा भी था जो विभाजन की विभीषिका झेल रहा था। और सदा की भाँति इस बार भी इस त्रासदी का सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों, बुजुर्गों, छोटे बच्चों और समाज के कमज़ोर वर्ग पर ही अधिक पड़ा। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है तो इसी क्रम में उस समय के समाज में व्याप्त विभाजन की त्रासदी तत्कालीन साहित्य में भी समा गई। यहाँ तक कि समकालीन साहित्य में भी गाहे बगाहे इसका उल्लेख मिल जाता है। यह एक ऐसी त्रासदी है जिसके घाव आज तक पूरी तरह से नहीं भरे हैं। इस विभिषिका ने संवेदनशील साहित्यकारों को झकझोर कर रख दिया। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान', भीष्म साहनी का 'तमस', यशपाल का 'झूठा सच', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' इत्यादि न जाने कितने साहित्यकारों की कितनी

*उप निदेशक, राज्य सभा सचिवालय, संसद भवन

ही कृतियाँ विभाजन की त्रासदी को परिलक्षित करती हैं। सादत हसन मंटो की कहानियों में तो यह त्रासदी सबसे अधिक मुखर होकर उभरी है। अपनी इन साहित्यिक कृतियों में जहाँ एक ओर साहित्यकारों ने तत्कालीन घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है वहीं उन परिस्थितियों पर उनका खासा रोष दिखता है। जहाँ एक ओर विभाजन को लेकर तीखी प्रतिक्रिया है वहीं उस त्रासदी को भोग रहे दुर्भाग्यशाली व्यक्तियों के प्रति संवेदना और करुणा का भाव भी है। इस आलेख में हम हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती की विभाजन पर आधारित कुछ कहानियों में व्याप्त विभाजन की त्रासदी का विशेष रूप से विश्लेषण करेंगे।

हमारे वर्तमान का एक सिरा हमारे भविष्य से जुड़ा है तो दूसरा हमारे अतीत से। हमारे लिए जितना महत्त्वपूर्ण हमारा भविष्य है उतना ही हमारा अतीत भी है। जहाँ एक ओर भविष्य हमें बेहतर जीवन की आस देता है वहीं दूसरी ओर हमारा अतीत हमें विगत में हुई भूलों से अवगत कराता है। ''परिवर्तन की प्रकिया जीवन और जगत में लगातार चलती रहती है। उसी के समानांतर यह प्रकिया भाषा और साहित्य में भी लगातार चलती रहती है। जब इतिहास में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन घटित होता है तब समाज भी प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से बदलने लगता है। ऐसे ही परिवर्तन का एक उदाहरण है - देश का विभाजन।''[1]

वर्ष 1947 भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है क्योंकि एक ओर जहां इस वर्ष में सदियों से प्रतीक्षित स्वतंत्रता को प्राप्त कर लेने का उत्साह था वहीं दूसरी ओर इसमे विभाजन की विभीषिका थी। देश दो टुकड़ों में बँट गया। भौगोलिक रूप से तो दो ही टुकड़े हुए पर सामाजिक,सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से अनेक टुकड़े हो गए। एक तरह से देखें तो यह विभाजन सिर्फ विभाजन ही नहीं था बल्कि यह विस्थापन भी था, सांप्रदायिक हिंसा का दौर भी था, लूटपाट का दौर भी था और परस्पर विश्वास और मनुष्यता की हत्या का दौर भी था। इन सभी स्थितियों ने भारतीय साहित्यकारों को उद्वेलित किया। भारत-पाक विभाजन भारत की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की त्रासदियों में से एक है। यह एक राजनीतिक विध्वंस से अधिक एक मानसिक विध्वंस के रूप में हिंदी कथा साहित्य में उभरा है और केवल हिंदी साहित्य में ही क्यों बल्कि भारतीय भाषाओं खासकर पंजाबी उर्दू सिंधी आदि भाषाओं के लेखकों ने भी इस विध्वंस को अपने साहित्य में जगह दी है।[2]

हिंदी ही नहीं अपितु सभी भारतीय भाषाओं में अनेक रचनाएं विभाजन को लेकर लिखी गई। उर्दू में सआदत हसन मंटो और राजेंद्र सिंह बेदी ने क्रमशः खोल दो, टोबा टेक सिंह और लाजवंती; पंजाबी में कुलवंत सिंह विर्क की घास और लोचन बख्शी की धूल तेरे चरणों की; सिंधी भाषा में मोतीलाल जोटवानी गुलजार अहमद और शेख अयाज ने क्रमशः धरती से नाता, यादें और पड़ोसी जैसी कहानियां लिखी। पंजाबी भाषा में विभाजन और विस्थापन की त्रासदी पर साहित्य की कोई कमी नहीं है। इसी क्रम में पंजाबी में अमृता प्रीतम का पिंजर उल्लेखनीय है। उनकी लिखी कविता 'अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ' में उन्होंने भारत विभाजन के समय हुए पंजाब के भयंकर हत्याकांडों का अत्यंत दुखद वर्णन है।

कविता की आरंभिक पंक्तियाँ हैं[3]

पंजाबी (गुरमुखी)

ਅੱਜ ਆਖਾਂ ਵਾਰਸ ਸ਼ਾਹ ਨੂੰ ਕਿਤੋਂ ਕਬਰਾਂ ਵਿਚੋਂ ਬੋਲ
ਤੇ ਅੱਜ ਕਿਤਾਬੇ ਇਸ਼ਕ ਦਾ ਕੋਈ ਅਗਲਾ ਵਰਕਾ ਫੋਲ
ਇਕ ਰੋਈ ਸੀ ਧੀ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਤੂ ਲਿਖ ਲਿਖ ਮਾਰੇ ਵੈਣ
ਅਜ ਲੱਖਾਂ ਧੀਆਂ ਰੋਂਦੀਆਂ ਤੈਨੂ ਵਾਰਸਸ਼ਾਹ ਨੂੰ ਕਹਿਣ
ਵੇ ਦਰਦਮੰਦਾਂ ਦਿਆ ਦਰਦੀਆ ਉੱਠ ਤੱਕ ਆਪਣਾ ਪੰਜਾਬ
ਅਜ ਬੇਲੇ ਲਾਸ਼ਾਂ ਵਿਛੀਆਂ ਤੇ ਲਹੂ ਦੀ ਭਰੀ ਚਨਾਬ

पंजाबी (देवनागरी लिप्यन्तरण)

अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ कित्थों क़बरां विच्चों बोल
ते अज्ज किताब-ए-इश्क़ दा कोई अगला वरका फोल
इक रोई सी धी पंजाब दी तू लिख-लिख मारे वैन
अज्ज लक्खां धीयाँ रोंदियाँ तैनू वारिस शाह नु कैन
उठ दर्दमंदां देआ दर्देया उठ तक्क अपना पंजाब
अज्ज बेले लाशां बिछियाँ ते लहू दी भरी चनाब

हिंदी अनुवाद

आज मैं वारिस शाह से कहती हूँ, अपनी क़ब्र से बोल,
और इश्क़ की किताब का कोई नया पन्ना खोल,

पंजाब की एक ही बेटी (हीर) के रोने पर तूने पूरी गाथा लिख डाली थी,
देख, आज पंजाब की लाखों रोती बेटियाँ तुझे बुला रहीं हैं,
उठ! दर्दमंदों को आवाज़ देने वाले! और अपना पंजाब देख,
खेतों में लाशें बिछी हुईं हैं और चेनाब लहू से भरी बहती है

हिंदी में खास तौर पर ऐसे कहानीकार हुए जिन्होंने विभाजन के दर्द को महसूस किया और त्रासदी को अपनी आँखों से देखा था। उन्होंने विभाजन को लेकर, विभाजन से जुड़ी हुई समस्याओं को लेकर और विभाजन के साथ आने जाने वाली तमाम समस्याओं को लेकर अनेक तरह की कथाएं लिखीं।

इन कहानियों में कृष्णा सोबती की विभाजन पर आधारित 'सिक्का बदल गया'; 'मेरी मां कहां' और 'पितृ हत्या' जैसी कहानियाँ हमारे बीच मौजूद है।

इन कहानियों को पढ़ते समय एक बात यह समझ में आती है कि उनकी कहानियों में विभाजन की त्रासदी का वर्णन अनुभूत व प्रमाणिक है और उनकी अनुभूति में तमाम क्रूर संदर्भों के बावजूद, तमाम लूटपाट, हत्याओं के वर्णन के बावजूद मनुष्यता की तलाश की कोशिश है।

कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की विभीषिका

किसी भी समय के बारे में जानने का सबसे प्रमाणिक स्रोत ऐसे लोगों के विचार सुनना या उनसे बात करना होता है जो उस समय उपस्थित रहे हों। क्योंकि ऐसे लोगों की अनुभूति बहुत प्रमाणिक होती है। किंतु मनुष्य की सीमित आयु के कारण ऐसा हर बार संभव नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थिति में किसी एक घटना विशेष के बारे में जानने का सबसे सरल और सटीक मार्ग उसके इतिहास को खंगालना है। पर इतिहास की भी अपनी एक सीमा है। वह हमें ज्ञान तो देता है पर भावनाओं के बीच से नहीं गुजारता। इतिहास बस हमें तथ्य देता है पर यदि उस समय अथवा घटना विशेष से जुड़ी भावनाओं को समझना हो, यदि उस समय की पुकार सुननी हो, उस समय की घटनाओं को अपने मानस पटल पर देखना हो तो साहित्य का सहारा लेना परम आवश्यक है। और साहित्य भी वो जो उसी दौर में लिखा गया हो। जिसके रचयिता उस दौर की घटनाओं के साक्षी रहे हों। जिन्होंने स्वयं उस कष्ट को झेला हो। क्योंकि उस दौर में लिखा गया साहित्य ही उस दौर की असली तस्वीर दिखा सकता है।

हिन्दी के लेखकों में कृष्णा सोबती ऐसी कथाकार हैं, जिनका विभाजन की

विभीषिका से सीधा सामना हुआ। इन्हें अपने परिवार के साथ पाकिस्तान छोड़कर भारत आना पड़ा। इन्होंने शरणार्थी होने का दर्द झेला और अपनी आँखों से खून-खराबा और लूट-मार को देखा।

सोबती उन चंद साहित्यकारों में से है जिन्होंने विभाजन की त्रासदी स्वयं झेली है। उनकी इस विषय पर कहानियाँ हैं, ''मेरी माँ कहाँ'' (1950), ''डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा'' (1949) और ''सिक्का बदल गया'' (1948)। इन्होंने एक वृहद् उपन्यास भी लिखा- ''ज़िन्दगीनामा''। इसके अलावा उन्होंने अपने जीवन के बारे में लिखा- ''गुजरात से गुजरात'' (2002)। इसमें सांप्रदायिकता की विभीषिका जगह-जगह उनकी स्मृतियों के माध्यम से व्यक्त हुई है। सोबती ने देश विभाजन के दौर की सांप्रदायिकता को अपनी आंखों के सामने घटित होते देखा है।

स्वतंत्रता और विभाजन के बाद समय बदला, परिवेश बदला, भूगोल बदल गया। रातों रात लोगों की पहचान बदल गई। जो अब तक स्वयं को भारतीय कहते थे अचानक उन्हें पता चला कि अब वो भारतीय नहीं पाकिस्तानी हो गए हैं। पाकिस्तान में बसने की चाह रखने वाले अपनी मिट्टी को छोड़, अपनी मातृभूमि को छोड़ अपने परिवारों सहित पलायन कर गए। ऐसा ही एक पलायन उस ओर से भी हुआ। किंतु इस पूरी प्रकिया में सबसे दुखद बात यह रही कि यह पलायन शांतिपूर्ण न रहा। यहाँ भी धर्मान्धता हावी रही। विभाजन के उस दौर में बढ़ी साम्प्रदायिकता का आम जन-जीवन पर व्यापक असर पड़ा और यह असर कथा साहित्य में भी परिलक्षित होता है।

सोबती ने देश विभाजन के दौर की सांप्रदायिकता को अपनी आँखों के आगे घटते देखा। जहाँ उन्होंने हिंसा और लूट-मार के दृश्य देखे हैं वहीं इस नृशंसता में मानवीयता के दृश्य भी देखे हैं।

उनकी कहानी 'मेरी माँ कहाँ' में विभाजन के दौर में हुई सांप्रदायिकता और उस सांप्रदायिकता के माहौल में हुई मानवता की हत्या का चित्रण है। इस कहानी में विभाजन के बाद हुए सांप्रदायिक दंगों का दर्दनाक चित्रण है। कहानी की शुरूआत ही उन दंगों में व्याप्त वहशत से होती है... ''बहुत दिन के बाद उसने चाँद-सितारे देखे हैं। अब तक वह कहाँ था? नीचे, नीचे, शायद बहुत नीचे...जहाँ की खाई इनसान के खून से भर गयी थी। जहाँ उसके हाथ की सफाई बेशुमार गोलियों की बौछार कर रही थी...''। कहानी एक पाकिस्तानी सैनिक यूनुस खाँ

के इर्द-गिर्द घूमती है जिसे यह लग रहा है कि वह अपने देश की आज़ादी के लिए लड़ रहा है। और आजादी के लिए यूँ कत्लोआम करना कोई गलत बात नहीं और ऐसा करने में उसे कोई आपत्ति, कोई घबराहट नहीं क्योंकि क्रांति में मार्ग में तो यह सब होता ही है''.... उसने आग देखी है। आग में जलते बच्चे देखे हैं, औरतें और मर्द देखे हैं। रात-रात भर जलकर सुबह खाक हो गये मुहल्लों में जले लोग देखे हैं! वह देखकर घबराता थोड़े ही है? घबराये क्यों? आजादी बिना खून के नहीं मिलती, क्रान्ति बिना खून के नहीं आती, और, और, इसी क्रान्ति से तो उसका नन्हा-सा मुल्क पैदा हुआ है!''

कहानी को पढ़कर पाठक को इस बात का भान हो जाता है कि वस्तुत: विभाजन के समय क्या स्थिति रही होगी। विभाजन के बाद हुए दंगे लोगों पर कितने भारी पड़े यह सहज ही समझ आ जाता है। हर तरफ लोगों में जैसे धार्मिक उन्माद छाया हुआ था। मानवता की जैसे किसी को कोई चिंता ही नहीं थी। धर्म मनुष्यता से ऊपर था ''... सड़क के किनारे-किनारे मौत की गोदी में सिमटे हुए गाँव, लहलहाते खेतों के आस-पास लाशों के ढेर। कभी-कभी दूर से आती हुई 'अल्ला-हो-अकबर' और 'हर-हर महादेव' की आवाजें। 'हाय, हाय'...'पकड़ो-पकड़ो'...मारो-मारो'...''। आजादी के बाद हुए विभाजन और उस विभाजन में जनता के पलायन का मंजर कितना खौफनाक रहा होगा इस बात का अंदाजा कहानी में वर्णित परिस्थितियों से भली भाँति हो जाता है। लोगों को मजबूरन अपनी जन्मभूमि को छोड़ कर जाना पड़ा। और यह पलायन कितना डरावना था इसका अंदाजा कहानी पढ़कर लग ही जाता है। ''लाहौर की बड़ी-बड़ी सड़कों पर। कहीं-कहीं रात की लगी हुई आग से धुआँ निकल रहा है। कभी-कभी डरे हुए, सहमे हुए लोगों की टोलियाँ कुछ फौंजियों के साथ नजर आती हैं। कहीं उसके अपने साथी शोहदों के टोलों को इशारा करके हँस रहे हैं। कहीं कूड़ा-करकट की तरह आदमियों की लाशें पड़ी हैं। कहीं उजाड़ पड़ी सड़कों पर नंगी औरतें, बीच-बीच में नारे-नारे....''

दहशत, लूटपाट और मारकाट के इस दौर में लोगों का एक दूसरे से विश्वास ही उठ गया।

इस कहानी में देश विभाजन के बाद सांप्रदायिक दंगे के ही दर्दनाक दृश्य नहीं हैं, बल्कि धार्मिक उन्माद के नशे में चूर एक नौजवान के खोये हुए सपने के यथार्थ में बदलने का चित्रण भी है। पाकिस्तान के अस्तित्व में आते ही यूनस

खाँ को लगता है कि जैसे खोई हुई मुगल सल्तनत अब वापस लौट आई है। ''वह तो देख रहा है अपनी आँखों से एक नई मुंगलिया सल्तनत शानदार, पहले से कहीं ज्यादा बुलन्द...।''

विभाजन के परिणामस्वरूप हुए पलायन से लोग यकायक दर-बदर हो गए। सदियों से साथ रहते आए लोग अचानक पराए हो गए। विभाजन पूर्व जो अपने ही परिवार का हिस्सा लगते थे अब सहसा उन्हीं से डर लगने लगा। जैसे रातोंरात दुनिया बदल गई। कृष्णा जी की कहानियों में विभाजन की त्रासदी का यह पक्ष भी स्पष्ट है। उनकी कहानी 'सिक्का बदल गया' में उन्होंने कहानी की मुख्य किरदार शाहनी की मन:स्थिति के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है। कहानी की मुख्य पात्र शाहनी अपने पति शाहजी की मृत्यु के बाद अपनी पुश्तैनी हवेली में बिना किसी डर-खौफ के अकेली रहती है। किंतु देश विभाजन के बाद जो राजनीतिक-सामाजिक बदलाव आए उन्होंने शाहनी को यकायक अपनी ही ज़मीन पर गैर बना दिया। पुराने मानवीय संबंधों का स्वरूप ही बदल गया। विभाजन पश्चात अचानक शाहनी को भान हो गया कि वह तो परायों से घिरी है। जिस हवेली में, जिस जमीन पर अब तक वह शाहजी के देहांत के बाद अकेली निर्भय होकर रह रही थी उसी परिवेश में सहसा डर लगने लगा।

शाहनी रोज पौ फटने पर चनाब में नहाने जाया करती थी। पर एक दिन अचानक उसके मन में एक भय छाने लागा। ''आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है. वह पिछले पचास वर्षों से यहां नहाती आ रही है. कितना लम्बा अरसा है!...''

कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' दरअसल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन या बदलाव की ओर संकेत करने की अपेक्षा मन:स्थिति में आए बदलाव की ओर संकेत करती है। भारत की भूमि को दो टुकड़ों में बाँटकर नए देश पाकिस्तान के निर्माण का और भारत की नई भौगोलिक सीमाओं का निर्माण करने का दावा करने वाला यह विभाजन असल में किसी भी तरह का सृजन न होकर निर्माण के नाम पर केवल विध्वंस था। उस दौर में केवल ज़मीन के ही दो टुकड़े नहीं किए गए बल्कि दिलों के टुकड़े भी कर दिए गए थे। 'सिक्का बदल गया' में शाहनी का चरित्र दिलों में और मन में आए उस बदलाव के प्रभाव को दिखाता है।

मन में व्याप्त भय के कारण शाहनी हवेली न जाकर शेरा के घर चली जाती

है। वह शेरा जो पहले शाहजी का सेवक था और जिसकी माँ की मृत्यु के बाद शाहनी ने ही उसे पाल पोसकर बड़ा किया था। वह शेरा और उसकी पत्नी हसैना को अपने बच्चों की तरह ही लाड करती थी। ''हसैना ने मान भरे स्वर में कहा, ''शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है, कभी शेरे से भी पूछा है कि मुंह अंधेरे ही क्यों गालियां बरसाई हैं इसने?'' शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हंसकर बोली,''पगली मुझे तो लड़के से बहू प्यारी है! ...''। पर जिस शेरा को उसने अपने पुत्र की तरह पाला था आज वो ही उसके खून का प्यासा हो चुका था। शेरा और हसैना को भी इस विभाजन ने पराया कर दिया। ''शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है, वह न पहचानेगा! अपनी मां जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ, उसने पास पड़ा गंडासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया...''। शेरा शाहनी की हवेली को लूटने की साजिश में भी शामिल हो गया। शाहनी भी इस घटनाक्रम से अनभिज्ञ नहीं है बस मौन है क्योंकि वह जान चुकी है कि सिक्का बदल चुका है। सत्ता बदल चुकी है, अपने ही घर में वह पराई हो चुकी है।

शाहनी को हवेली से ले जाकर शरणार्थी शिविर में छोड़ने के लिए ट्रक कोई अन्जान नहीं बल्कि वही थानेदार दाऊद खाँ लाया है जिसकी मंगेतर को शाहनी ने कर्णफूल दिए थे। लेकिन वह दाऊद खाँ भी अब कितना बदल गया है। वह शाहनी को उसी की जमीन से बेदखल करने आया है। सभी मानवीय रिश्ते जैसे बिखर गए और ऐसे में शाहनी बिल्कुल अकेली रह गई। वहाँ खड़े सारे लोग जो कभी उसके इशारे पर नाचते थे, जिन्हें कभी उसने अपने नातेदारों से कम नहीं समझा था आज उनमें से कोई उसका अपना नहीं था। विभाजन ने उसे अकेला कर दिया था।

विभाजन के कारण लोगों को कैसे अपनी पुरखों की जमीन, अपनी पुश्तैनी संपत्ति, अपने बसे बसाए संसार, अपनी जड़ों को छोड़कर शरणार्थी का जीवन बिताना पड़ा कृष्णा जी की यह कहानी विभाजन के इस क्रूर पक्ष को भली भाँति दर्शाती है। ''शाहनी चौंक पड़ी, देर मेरे घर में मुझे देर! आंसुओं की भंवर में न जाने कहां से विद्रोह उमड़ पड़ा, मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए...नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है देर हो रही है पर नहीं, शाहनी रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लांघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी। अपने लड़खड़ाते

क़दमों को संभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आंखें पोछीं और डयोढ़ी से बाहर हो गई। बड़ी-बूढ़ियां रो पड़ीं। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ! ख़ुदा ने सब कुछ दिया था, मगर मगर दिन बदले, वक़्त बदले...''।

विभाजन के दौरान राजनीतिक स्तरों पर हुई तोड़-फोड़ से अधिक तोड़-फोड़ मानसिक और नैतिक मूल्यों के स्तर पर हुई। जिस शेरा को शाहनी ने पाला पोसा था, जिन गाँव वालों के लिये शाहनी हमेशा काम आयी थी, जहाँ शाहनी ने अपनी असामियों मे बरक़त पायी थी वहाँ के लोग, उनके अपने भाई-बंदे एकदम से शाहनी को पराया कर देते हैं। इस उलाहने के साथ कि शाहनी सिक्का बदल गया है अब कुछ नहीं हो सकता।[4]

सिक्कों का बदलना अस्मिता पर चोट थी। उस अस्मिता पर चोट जो भारत में रहने वाले व्यक्ति की पहचान है। पहचान के साथ धोखा हुआ।

कृष्णा जी ने विभाजन की विभीषिका का स्वयं अनुभव किया है। इस दर्द से खुद गुजरी हैं इसलिए इस विषय पर लिखी उनकी रचनाओं मैं उनकी वेदना मुखरित हो उठती है।

विभाजन के बाद समाज की ऐसी तस्वीर बनी जिसमें लोग एक दूसरे को पहचानने के लिए तैयार नहीं थे। सदियों से साथ रहते आए लोग अचानक एक -दूसरे के दुश्मन हो गए। ''सिक्का बदल गया कहानी हिंसा, कत्ल, दंगों, का चित्रण या विवरण नहीं देती जैसे की खुशवंत सिंह की 'ट्रेन टू पाकिस्तान' या बाप्सी सिधवा की 'क्रैकिंग इंडिया' में मिलता है बल्कि यह गर्म हवा फिल्म की भांति विभाजन के दौरान हुए मानवीय संवेदनाओं के ह्रास और नैतिक मूल्यों के पतन की ओर संकेत करते हुए हमारा ध्यान रिश्तों में आए बदलाव की ओर खींचती है।''[5]

बरसों से संभाले प्रेम भरे आत्मीय रिश्ते विभाजन की रेखा तले कुचल गए। बरसों से बने आत्मीय अचानक भीड़ में तबदील हो गए और भीड़ भी ऐसी जो एक दूसरे के खून की प्यासी है।

मानवीय पक्ष

विभाजन की त्रासदी को दर्शाती विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में कुछ पन्ने, कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनमें अब भी कहीं न कहीं मानवता बसती है और जो यह उम्मीद पैदा करते हैं कि भले ही दौर बहुत बुरा था पर मनुष्यता का गला

अभी पूरी तरह न घुट पाया था। दया, करुणा और मोह की मंद-मंद किरणें अब भी कहीं न कहीं उस नफरत और धार्मिक उन्माद के काले बादल को चीर पुन: रोशनी करने का भागीरथ प्रयास कर रहीं थी व उम्मीद का दामन थामे हुए थी। मनुष्य प्रकृति से शांतिप्रिय है और शांति से मिलजुल कर रहने में ही वह आनंद का अनुभूति करता है। किसी बाहरी कारक के कारण व्यथित या उद्वेलित हो यदि वह हिंसा पर आमादा हो भी जाए तो भी अंतत: वह अपनी प्राकृतिक मनोदशा में लौट ही आता है। ऐसा ही कुछ विभाजन पर आधारित साहित्य में भी हम कहीं कहीं देखते हैं। हत्या, लूटपाट और नफरत के उस दौर में भी यदा कदा प्रेम फूट ही पड़ता है।

कृष्णा जी की कहानियों में भी कहीं कहीं कुछ ऐसा ही है। उनकी कहानी 'मेरी माँ कहाँ' में देश विभाजन के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों में कई लोगों को मौत के घाट उतार चुका यूनुस खाँ जब उस कत्लेआम के बीच एक हिन्दू बच्ची को खून में लथपथ पड़े पाता है तो अचानक उसके मन में दया व करुणा का भाव उमड़ पड़ता है। यह चरम अमानवीयता के बीच मानवता का अंकुर फूटने जैसा है। यह दहशत के उस दौर में भी मानवता को ढूँढ़ निकालने का एक प्रयास है। इन्हीं सब प्रसंगों को पढ़कर यह उम्मीद जागती है कि दुनिया अब भी जीने लायक है।

वही यूनुस खाँ जो न जाने कितनों को इस कत्लेआम में मौत के घाट उतार चुका है अब उस बच्ची को अपनी गाड़ी में बैठाकर अस्पताल ले जाता है। ''यूनुस खाँ इतना भावुक कभी नहीं था। इतना रहम इतनी दया उसके हाथों में कहाँ से उतर आयी है? वह खुद नहीं जानता। मूर्च्छित बच्ची ही क्या जानती है कि जिन हाथों ने उसके भाई को मारकर उस पर प्रहार किया था उन्हीं के सहधर्मी हाथ उसे सहला रहे हैं!''

हत्या और बलात्कार के उस दौर में उस बच्ची में यूनुस खाँ को अपनी बहन नूरन नजर आती है। कहानी के इस अंश को पढ़कर समझ आता है कि लोग केवल और केवल धार्मिक उन्माद के कारण ही दंगों में शामिल नहीं थे बल्कि कुछ ऐसे भी थे जो स्वयं इन दंगों से पीड़ित थे और बदले का भावना के कारण उस कत्लेआम का हिस्सा बन गए थे। यूनुस खाँ ने भी इन दंगों में अपनी बहन को खो दिया था और अब वो बिल्कुल अकेला था। और शायद बदले की इस भावना के कारण ही वह बौराया सा इन दंगों में फिर रहा था।

लोगों को मारने में उसे कोई संकोच न था। किंतु अपनी बहन सरीखी उस बच्ची को देख उसके मन में प्रेम का भाव उमड़ पड़ा और गाजर मूली की तरह लोगों को मौत के घाट उतार देने वाला यूनुस खाँ उस बच्ची के स्वास्थय को लेकर चिंतिंत हो उठा। वह डॉक्टर से उसे ठीक करने की गुहार लगाने लगा और उसके ठीक होने का इंतजार करने लगा। ''डाक्टर, जैसे भी हो, ठीक कर दो...इसे सही-सलामत चाहता हूँ..''

सिक्का बदल गया कहानी में भी मुख्य रूप से शाहनी और कहीं कहीं कहानी के अन्य पात्र भी मानवता की डोर पकड़े है। सब के भीतर द्वंद है। सब ऊहापोह की स्थिति में हैं। एक मन कहता है कि शाह जी ने उन्हीं के भाईयों का गला काटकर तिजोरियाँ भरी हैं तो शाहनी के साथ जो हो रहा है ठीक हो रहा है वहीं दूसरी ओर लोग उसे बुरे वक्त के लिए कुछ नकदी, गहने रख लेने की सलाह दे रहे है। एक ओर लोग शाहनी को उसकी पुरखों की हवेली से निकाल रहे हैं तो दूसरी ओर उसके लिए दुखी भी हैं। इन बदली परिस्थितियों में वह स्वयं को विवश जान रहे हैं। शाहनी भी इन लोगों को छोड़ कर नहीं जाना चाहती पर वह भी सिक्के बदल जाने के कारण लोगों के बदले रवैयों की वजह से लाचार है। ''शाहनी अपने को खींच रही थी। गांववालों के गलों में जैसे धुंआ उठ रहा है। शेरे, ख़ूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद ख़ां ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाज़ा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज़ से कहा, ''शाहनी, कुछ कह जाओ, तुम्हारे मुंह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती!'' और अपने साफ़े से आंखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुंधे-रुंधे से कहा,''रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, ख़ुशियां बक्शे....''वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया...''

वहीं इतना सब कुछ हो जाने के बावजूद शाहनी के मन में कोई मैल नहीं। उसने दिल से सबको अपना माना था। अपने ही हाथ के पाले बच्चों, अपने ही लोगों के द्वारा अपनी जमीन जायदाद से निकाल दिए जाने के बावजूद वह उन्हें बद्दुआ तक नहीं देती।जाते समय शायद शेरा का भी दिल पसीजता है और वही शेरा जो शाहनी की हत्या की साजिश कर रहा था भारी मन से उससे कहता है कि अगर उसके बस में होता तो ऐसा न होने देता। वह शाहनी के पैर छूता है और शाहनी भी भरी आवाज में उसे आशीर्वाद देती है। ''शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए,''शाहनी कोई कुछ कर नहीं सका, राज भी पलट गया।'' शाहनी

ने कांपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रक्खा और रुक-रुककर कहा, ''तैनू भाग जगण चन्ना!''

चाहे शाहनी के आसपास मौजूद लोग अपनी मानवीयता खो चुके थे पर शाहनी अब भी उनके मंगल की ही कामना कर रही थी। नफरत और वहशीपन के इस दौर में अब भी कुछ मानवता बची थी।

कृष्णा जी की एक अन्य कहानी 'पितृ हत्या' में भी उस दौर में मानवता की छटा देखने को मिलती है। कहानी में देश विभाजन के बाद की गई राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की हत्या पर लोगों की प्रतिक्रिया का उल्लेख है। कहानी पढ़कर लगता है कि दोनों मुल्क और उसके निवासियों में चाहे कितने ही वैचारिक मतभेद क्यों न हों पर गाँधी जी की हत्या पर दोनों देशों के निवासी समान रूप से दुखी थे।

''रेडियो से शोक-ध्वनि सुनकर कलेजा मुंह को आया। बज रहा है-यह साज ख़ून से लथपथ गांधी के लिए. हत्या-हत्यारा मुल्क़ दो हो गए। पर...

हम लाहौर रेडियो से बोल रहे हैं

रुंधे गले से अनाउंसमेंट.

हमारे महात्मा गांधी...

ऐमनाबाद से आई हमारी दादी मां रह-रह आंखें पोंछने, सयानों की भर्राई आवाज़ में कहा-जो भी कहो-हज़ार मार-काट हुई हो पर हमारी ग़मी में पाकिस्तानियों ने हमसायों की-सी रोल निभाई है। ऐसे बापू को याद कर रहे हैं जैसे गांधी महात्मा उनका भी कुछ लगता था।

कमरे में सिसकियां तैरने लगीं।''

निष्कर्ष

साहित्य इतिहास नहीं किंतु अपने में कई ऐतिहासिक प्रसंगों व घटनाओं को समेटे होता है। और इस सिमटन में भावनाएँ होती हैं। साहित्य केवल घटनाओं का उल्लेख ही नहीं करता बल्कि पाठक को उन भावनात्मत अनुभूतियों से भी जोड़ता है जिनसे उस घटनाक्रम से गुजरे न जाने कितने लोग गुजरे होंगे।हमारी पीढ़ी के लोग जिन्होंने विभाजन जैसी क्रूर घटना को केवल इतिहास की किताबों में ही पढ़ा है उनके लिए तो केवल साहित्य ही यह जानने का एकमात्र साधन है कि आखिर इतिहास में लिए गए विभाजन के राजनैतिक निर्णय का साधारण

जन मानस पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, उन्होंने क्या क्या भोगा होगा। देश आजाद हुआ और उसके साथ उसका विभाजन हुआ यह तो इतिहास की किताबों से पता चल जाता है पर इस निर्णय के परिणामस्वरूप लोगों पर क्या बीती, कैसे उन्हें पल भर में अपनी बसी–बसाई दुनिया छोड़ कर शरणार्थी बन जाना पड़ा, कैसे जाने कितनों ने अपने सगे संबंधियों को हमेशा हमेशा के लिए खो दिया और इस सबमें वे कितनी मानसिक और शारीरिक यातनाओं से गुजरे यह सब तो साहित्य ही हमें बता सकता है। कृष्णा जी का साहित्य इन मार्मिक संवेदनाओं और अनुभूतियों से भरा पड़ा है और भुग्तभोगी होने के कारण उनकी कथाएँ बहुत प्रमाणिक है।

संदर्भ :

1. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद (2023), स्वाधीन भारत का हिंदी साहित्य (भाग–1). साहित्य अकादमी. पृ. 377.
2. https://hindisamay.com/kahani/Vibhajan-ki-kahaniyan/index-vibhajan-stories.htm
3. https://www.garbhanal.com/tragedy-of-partition-and-anti-sectarian-tone-krishna-sobti
4. https://www.apnimaati.com/2021/11/blog-post_3.html
5. https://www.apnimaati.com/2021/11/blog-post_3.html

विभाजन की त्रासदी : नामधारी समाज और साहित्य की दृष्टि में

डॉ रेणु द्विवेदी*

भारत अपनी स्वाधीनता के 75 साल पूरे कर चुका है। सारे देश में उत्साह और उल्लास का वातावरण बना हुआ है लेकिन भारत को आजादी की बड़ी कीमत देश के बँटवारे के रूप में अदा करनी पड़ी थी। यह भी एक कटु सत्य है। लाखों निर्दोषों को अपनी जान गंवानी पड़ी, लाखों लोगों को अपने घरों से दूर जाकर अपनी नई दुनिया बसानी पड़ी थी। आज जब देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तोहमें बरबस 14 अगस्त 1947 की वह दुखद तारीख भी याद आ जाती है जिसके दंश को भुलाया नहीं जा सकता है। एक तरफ सदियों के गुलामी के बाद आजादी मिलने वाली थी तो दूसरी ओर देश के दो टुकड़े हो रहे थे। लाखों लोग इधर-से-उधर हो गए। घर बार छूटा परिवार छूटा। भारत के लिए यह विभाजन किसी विभीषिका से कम ना था। देश भर के प्रत्येक राज्य, प्रांत, क्षेत्र, स्थान पर विभाजन की विभीषिका के निशान आज भी महसूस किए जा सकते हैं। लेकिन इसका सर्वाधिक प्रभाव पंजाब प्रांत एवं बंगाल प्रांत पर पड़ा। एक अनुमान के मुताबिक भारत और पाकिस्तान के बीच 1947 में जो अप्राकृतिक और कृत्रिम विभाजक रेखा खींची गई थी वह धर्म की थी। बहुसंख्यक मुस्लिम पाकिस्तान चले गए जबकि हिंदू एवं सिख भारत में होकर रह गए अथवा पश्चिमी पंजाब से भारत में विस्थापित कर दिए गये खदेड़ दिये गये अथवा यों कहें सब

* अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला,
निदेशिका, श्री सद्गुरु रामसिंह जी महाराज पीठ, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कुछ लूट-पाट कर भगा दिये गये।

एक अनुमान के मुताबिक लगभग 2 करोड़ जनसंख्या उन लोगों की है जो इस विभाजन के कारण विस्थापित हुए। कुछ इतिहासकार इसे दुनिया का सबसे बड़ा विस्थापन बतलाते हैं।

लोगों के दल जब सीमा पार कर रहे थे तब यह कतारें कई-कई किलोमीटर लंबी थी। विभाजन का ऐलान होने के बाद हुई हिंसा में कितने लोग मारे गए इसे लेकर अलग-अलग आंकड़े हैं। आमतौर पर इनकी संख्या 5 लाख बताई जाती है जो की सही नहीं मानी जा सकती। लगभग 2 लाख से 10 लाख लोगों के बीच मौत हुई, ऐसा अनुमान है (कृपाल सिंह-द पार्टीशन ऑफ़ पंजाब पेज 95-114)। इसके अलावा 75000 से एक लाख महिलाओं का बलात्कार या हत्या के लिए अपहरण हुआ। नामधारी समाज भी इससे अछूता नहीं रहा।

प्रस्तुत पत्र में पंजाब प्रांत में विभाजन की विभिषिका के प्रभाव को विशेष रूप से नामधारी समाज और उनके साहित्य पर विभाजन की त्रासदी और उससे उबरने की संघर्ष गाथा को विभिन्न शोध पत्रों, सर्वेक्षणों के आधार पर समझने का प्रयास किया जा रहा है।

नामधारी संप्रदाय पंजाब प्रांत का एक आध्यात्मिक सामाजिक राजनीतिक आंदोलन के रूप में उभरा सुधारवादी सिख संप्रदाय है। नामधारी संप्रदाय का प्रारंभ गुरु बालक सिंह (1785-1862) जिनका मूल निवास अटक (हजरों) वर्तमान पाकिस्तान है माना जाता है।[1] गुरु बालक सिंह ने सिख परंपरा में आए दोषों के निवारण के लिए एक सरल, शुद्धधार्मिक साधना का प्रचार प्रारंभ किया जिसमें नाम- सिमरन मुख्य साधना थी। गुरु बालक सिंह ने सादे रहन-सहन, नाम का निरंतर जप करना, कीर्तन करना इत्यादि को लेकर के समाज में सुधार का आंदोलन चलाया था। गुरु बालक सिंह जी ने बाद में गुरु राम सिंह जी को गुरु गद्दी प्रदान की। नामधारी संप्रदाय में गुरु बालक सिंह को 11वां तथा सद्गुरु राम सिंह को 12वां गुरु माना जाता है। (गजेटियर आफ इंडिया, 1970, पृ०172)

गुरु राम सिंह ने 12 अप्रैल सन 1857 ईस्वी में संत खालसा पंथ की स्थापना के साथ इस संप्रदाय को आध्यात्मिक एवं राजनीतिक स्वरूप दिया।संत खालसा पंथ कोई नया पंथ नहीं अपितु गुरु नानक देव एवं गुरु गोविंद सिंह द्वारा चलाये गये सिख पंथ का ही नवीनीकरण था। नामधारी संप्रदाय का विस्तार पश्चिमी पंजाब के सियालकोट रावलपिंडी, लाहौर गुरदासपुर से लेकर के अमृतसर लुधियाना

मलेरकोटला इत्यादि पूर्वी पंजाब तक फैला हुआ था और एक अनुमान के मुताबिक लगभग 10 लाख सिक्ख कुछ ही वर्षों के अंदर नामधारी सम्प्रदाय में शामिल हो गये थे। यहां कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है। नामधारियों का प्रमुख केंद्र वर्तमान लुधियाना भैणी साहब है किंतु पूर्व में नामधारी सम्प्रदाय पश्चिमी पंजाब के लाहौर सियालकोट रावलपिंडी गुरदासपुर होशियारपुर तथा पूर्वी पंजाब के अमृतसर लुधियाना जालंधर आदि तक फैला हुआ था।

नामधारियों की अपनी एक विशिष्ट पहचान, विशिष्ट मर्यादा है। वह श्वेत वस्त्र धारण करते हैं एवं सीधी पगड़ी बांधते हैं। वह मांस एवं मदिरा का पूर्ण निषेध करते हैं, सादे एवं सामूहिक विवाह पर विश्वास रखते हैं, ब्रिटिश सरकार से पूर्ण असहयोग एवं बहिष्कार करते थे। अंग्रेजों द्वारा खुदी हुई नहरों से पानी ग्रहण नहीं करते हैं। उनकी अपनी डाक व्यवस्था थी। वह ब्रिटिश कानून को नहीं मानते थे। उनकी अपनी पंचायत थी और वे सरकार का पूर्ण बहिष्कार करते थे। गौ-गरीब की रक्षा उनके धर्म का आवश्यक अंग है। वे राजनीतिक स्वाधीनता को धर्म का आवश्यक अंग मानते हैं। उनकी इन नीतियों के कारण ब्रिटिश सरकार से उनकी कई छोटी-मोटी झड़प भी हुई थी। गौ रक्षा के मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार ने कई नामधारियों को फांसी पर भी चढ़ा दिया था। 1872 ई० में कूका विद्रोह के समय ब्रिटिश सरकार ने बिना मुकदमा चलाए 66 सिखों को तोप के आगे खड़ा करके उड़ा दिया था तथा गुरु राम सिंह को एवं उनके कुछ अनुयायियों को देश निकाला (वर्मा) निष्कासित कर दिया था।[2] गुरु राम सिंह के पश्चात इस पंथ का नेतृत्व गुरु हरि सिंह एवं सद्गुरु प्रताप सिंह ने किया (journal of pharmaceutical negative Results: volume 13: special Issue 9:2022 pp 8516)।

विभाजन की विभीषिका को समझने के लिए संक्षेप में नामधारी साहित्य को देखना होगा। वैसे तो नामधारी साहित्य में प्रमुखता से देहधारी गुरु के महत्त्व, कूका आंदोलन भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में नामधारी आंदोलन के अवदान को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। नामधारी साहित्य में विभाजन पर विशेष लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता है परंतु फिर भी गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर प्रोफेसर जोगिंदर सिंह जी ने अपनी पुस्तक ''द नामधारी सिख्स : देयर चेंजिंग्स सोशल एंड कल्चरल लैंडस्केप'' में नामधारी समाज के विस्थापन पर केस स्टडी किया है। इसके साथ ही अपनेशोध पत्रों

में भी उन्होंने विभाजन के कारण उत्पन्न विस्थापन और पुनर्वास के ऊपर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। बाबू मैंगीशा ने भी नामधारी समाज के इतिहास और उनके विस्थापन को लेकर के अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार मंडी जिले मेंनामधारियों का विस्थापन और पुनर्वास पर- ''असिमिलेशन ऑफ़ एन एथेनिक ग्रुप ए केस स्टडी ऑफ़ नामधारीस आफ मंडी टाउन इन हिमाचल प्रदेश।''

इस विषय पर अरविंद सहगल ने शोध किया है। कवि प्रीतम सिंह कवि जो सद्गुरु प्रताप सिंह के समकालीन थे, ने विभाजन से उपजे विस्थापन और पुनर्वास की कहानी को ''कहानी जीवन नगर की'' में आत्म कथात्मक शैली में बड़े ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार ''नामधारी लहर दी वर्तक दा आलोचनात्मक अध्ययन 1906 से 1959'' द्वारा सुखदेव सिंह एवं परमजीत कौर द्वारा किया गया है। जगदीश सिंह वरियाम की रचना *खिलरे पतरे* में विभाजन से उपजी त्रासदी और नामधारी समाज के पुनर्वास की गौरव गाथा वर्णित है। सरदार निधान सिंह आलमकवि प्रीतम सिंह की रचना ''पैणे दियां पैयां'', ''जस जीवन'' दस भाग में ''लाल एहीं रत्न'' में सद्गुरु प्रताप सिंह के कार्यक्रम के विवरणों में विभाजन पर भी साहित्य मिलता है। इसी प्रकार इन्दर सिंह नामधारी पूर्व विधानसभाध्यक्ष झारखंड, जो खुद विभाजन की विभिषिका के प्रत्यक्षदर्शी हैं की आत्म कथा ''एक सिख नेता की दास्तानरत्न तथा बलबीर दत्त की पुस्तक ''भारत विभाजन एवं पाकिस्तान के षडयंत्र'' इसके साथ ही तारा सिंह अंजन की नामधारी इतिहास, ''सबहन के सिर मौररत्न, सुबा सुरेंद्र कौर खरल की सद्गुरु चरित्र ''जीवनी सद्गुरु प्रताप सिंह''। सुवरन सिंह वृक, कृपाल सिंह कसैल इत्यादि की रचनाओं में भी विभाजन से संबंधित सामग्री प्राप्त होती है। ''द नामधारी सिख्स : देयर चेंजिंग्स सोशल एंड कल्चरल लैंडस्केप'' - जोगिंदर सिंह तथा सिख्स रिवलिस्ट मोमेंट्स द निरंकारी एन्ड नामधारी मूवमेंट इन पंजाब इन द 19th सेंचुरी: ए सोशल रिलिजियस स्टडीज द्वारा सुरजीत कौर जौली ''अन्डरस्टैन्डिग आफ नामधारी मूवमेंट 1857-1959''-प्रो० कुलदीप सिंह भटिंडा इत्यादि है। 1920 में लाहौर से प्रकाशित सतजुग साप्ताहिक पत्र में भी कुछ साहित्य प्राप्त होता है। ''सतजुग'' साप्ताहिक पत्र सद्गुरु प्रताप सिंह द्वारा प्रकाशित किया गया। आजादी से पूर्व यह लाहौर से प्रकाशित होता था। विभाजन की त्रासदी का इस पर भी असर हुआ। अफरा-तफरी के आलम में इसे जीवन नगर शिफ्ट किया गया। विभाजन के दौर में सारी साध संगत पीड़ित

मानवता की सेवा में लगे रहे। इस पत्र का प्रकाशन भी लगभग दो वर्ष स्थगित रहा। नामधारी साहित्यकारों में इंदर सिंह चक्रवर्ती निधान सिंह आलम, सुवरण सिंह प्रो कृपाल सिंह कसैल, तथा कई अन्य प्रमुख साहित्यकार भी हैं जिन्होंने नामधारी साहित्य में वृद्धि की है।

नामधारी साहित्यकारों ने विभाजन की त्रासदी तथा उससे उबरने की संघर्ष गाथा को सद्गुरु प्रताप सिंह के अविस्मरणीय अवदानों के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से रेखांकित किया है। सद्गुरु प्रताप सिंह (1890–1959) एक दूरदर्शी आध्यात्मिक एवं राजनीतिक नेता थे। उन्होंने देश की स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ संघर्ष कर रहे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य क्रांतिकारियों का खुलकर समर्थन किया था एवं अनेक कार्यक्रमों में वे कांग्रेस के सहयोगी भी रहे। 17 फरवरी 1939 पंजाब में एक सभा में नेहरू जी का संबोधन था उसकी पूरी जिम्मेदारी सद्गुरु प्रताप सिंह तथा उनके भाई निधान सिंह आलम ने उठाई थी और लगभग 4000 कार्यकर्ताओं के लंगर की व्यवस्था सद्गुरु जी की माता जीवन कौर ने उठाई थी (The Tribune,1939,p15) इसके साथ ही वीर सावरकर जी जिनका 12 मई 1938 को अधिवेशन था उसमें नामधारियों की सहभागिता सराहनीय थी।[3] (A short History of Namdhari Sigh p 86) मुस्लिम लीग के बढ़ते प्रभाव और विभाजन की मांग के खिलाफ नामधारी सिक्खों ने हिंदू सिख एकता के लिए पीस मार्च भी निकाला था।

पंजाब में हिंसक गतिविधियों की वृद्धि ने सिखों और हिंदुओं दोनों को विभाजन स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। नामधारी समाज भी इस संबंध में भिन्न नहीं थे। 1947 के विभाजन के दौरान नामधारियों ने सद्गुरु प्रताप सिंह के नेतृत्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कोई भी नामधारी मुसलमानों को लूटने उनके संपत्ति को नष्ट करने अथवा महिलाओं के अपहरण में शामिल नहीं थे। क्योंकि सद्गुरु प्रताप सिंह ने उन्हें सख्त निर्देश दिया था।[4] इसके पहले ही उन्होंने चेतावनी भी दी थी कि बँटवारा होगा और सद्गुरु प्रताप सिंह के आदेश पर जो नामधारी पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब में चले गए थे उन्हें अमृतसर और गुरदासपुर जिलों में स्थानांतरित करने की सलाह दी गई थी। इसके अलावा सद्गुरु प्रताप सिंह ने बुनियादी ढांचे और प्रशासनिक सुविधाओं के निर्माण के लिए भी महत्त्वपूर्ण प्रयास किये थे। उन्होंने अपनी मां जीवन कौर की याद में हरियाणा में जीवन नगर नामक दूसरा मुख्यालय भी बसाया और अपने प्रवासी

अनुयायियों को वहां फिर से बसाया।[5] इसी प्रकार उन्होंने भैणी साहब में भी पश्चिमी पंजाब से निर्वासित होकर आए हुए अनुयायियों को बसाने का युद्ध स्तर पर कार्य किया।

विभाजन का नामधारियों पर प्रभाव देखने हेतु प्रोफेसर जोगिंदर सिंह ने लगभग 150 नामधारी परिवारों का साक्षात्कार किया और निष्कर्ष निकाला की नामधारियों का पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब में विस्थापन दो चरणों में दिखाई देता है। प्रथम समूह में उन नामधारियों का विस्थापन है जो 1947 से पूर्व ही हो गया था जब सद्गुरु प्रताप सिंह ने विभाजन से पूर्व ही यह समझ लिया था कि विभाजन अवश्य संभावित है उन्होंने पश्चिमी पंजाब वर्तमान पाकिस्तान में रहने वाले अपने अनुयायियों को निर्देश दिया कि वह इसके पहले की स्थिति खराब हो रावी नदी पार कर इस अर्थात पूर्वी पंजाब में आ जाए।[6]

परंतु अपनी जन्मभूमि मातृभूमि का त्याग इतना आसान नहीं होता। अपने बसे बसाये कारोबार बने बनाए घरों को छोड़कर नई जगह नई शुरूआत करना हर किसी के समर्थ के बात नहीं होती, परंतु जब बात अपनी अस्मिता की आती है आस्था की आती है तो गुरु पर आस्था रखकर आने वाले खतरे को भांप कर कुछ नामधारियों का जत्था विभाजन से पूर्व ही पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब को सुरक्षित स्थान पर आ गए थे।

पुनर्वास हेतु हरियाणा जिले के चीतल गांव जिसे सद्गुरु प्रताप सिंह ने क्रय करवाया था कृषकों को भूमि आवंटित करके बसाया गया तथा बड़े उद्यमियों एवं मझौले दुकानदारों को मंडी जिले में वहां के राजा से संपर्क कर बसने का निर्देश दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि सद्गुरु प्रताप सिंह ने नामधारी शरणार्थियों को अपने क्षेत्र में शरण देने के लिए बिलासपुर के राजा से संपर्क किया लेकिन वे सहमत नहीं हुए। फिर उनकी वार्ता मंडी के राजा जोगिंदर सिंह से हुई जिन्होंने तुरंत अपनी सहमति जाता दी।[7] मंडी शहर के स्थानीय लोगों एवं सरकार ने शरणार्थियों को इस शहर में बसने में पूर्ण सहयोग दिया था।[8]

अपने ही देश में शरणार्थी बने इन नामधारियों ने अपनी जीवंतता एवं गुरु कृपा के द्वारा न केवल विभाजन के दंश को झेला अपितु विकास के नए पैमाने को भी प्राप्त किया। एक अध्ययन के मुताबिक मंडी जिले के प्रवासी नामधारी वहां के स्थानीय व्यापारियों की तुलना में ज्यादा सफल ज्यादा सुख सुविधा संपन्न है,[9] जबकि उन्होंने संघर्ष से सफलता का सफर तय किया था।

पश्चिमी पंजाब से शरणार्थियों की पहली लहर अपनी चल संपत्ति का एक हिस्सा अपने साथ लाने में सक्षम थी, उस समय उनकी नगदी चांदी सोना या आभूषण आदि बाहर निकलने पर कोई प्रतिबंध नहीं था, इसीलिए उन्हें प्रवास में उतनी परेशानी नहीं हुई, किंतु शरणार्थियों की दूसरी लहर जो 21 जुलाई 1947 के बाद आई थी उसे भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। इस समय लाहौर के नागरिकों का भारी पलायन हुआ। मुस्लिम पुलिस और सैनिकों की सक्रिय मिली भगत से सिखों की थोक गोलीबारी और हत्या ने इस धारणा को खत्म कर दिया कि दंगे अस्थाई हैं।[10]

नामधारियों का दूसरा जत्था विभाजन का ऐलान हो जाने के बाद भड़की सांप्रदायिक हिंसा के समय विस्थापन के लिए मजबूर किए जाने पर किसी तरह अपनी बहू बेटियों एवं चल संपत्ति के साथ सीमा पार करने की जद्दो–जहत की कहानी कहता है। इन्दर सिंह नामधारी ने अपनी पुस्तक में दोनों तरफ से हो रही हिंसा का जो आंखों देखा मंजर बयां किया है वो सिहरन पैदा कर देता है।[11]

विभाजन जैसी स्थिति में संबंध और मूल्य कैसे विघटित होते गए और फिर इसी विघटन के भीतर से खोए हुए मूल्यों की तलाश कैसे शुरू हुई इसका विशिष्ट उदाहरण हमें मंडी जिले के नामधारी समूह, संत नगरजीवन नगर हरियाणा तथा नई दिल्ली की न्यू जनता कॉलोनी एवंरमेश नगर की नामधारी समूह संगत में देखने को मिलता है।

यहां के नामधारी समाज ने जिस तरह से विस्थापन के बाद नए सिरे से अपने कारोबार विशेष रूप से जीवन नगर की बंजर भूमि को अपने पुरुषार्थ से उपजाऊ बनाकर वहां उत्पादन एवं पशुपालन में नवीन ऊंचाइयों को प्राप्त किया है वह सभी के लिए एक आदर्श है। इसकी विस्तृत कहानी हमें पंजाबी पुस्तक ''कहानी जीवन नगर की'' में मिलती है। इसके साथ ही संत नगर में जो नामधारी बसाए गये उनमें खेल भावना उत्कृष्ट थी। उन्होंने समूह संगत के सहयोग से आज नामधारी हाकी एकादश बनाकर तथा राष्ट्रीय हॉकी टीम में अपनी जगह बनाकर देश के गौरव में संवर्धन किया है।

मंडी जिले में छोटी दुकान से अपने कारोबार का प्रारंभ करने वाले लगभग 50 नामधारी परिवार जो विस्थापन के पश्चात राजा की अनुमति से यहां आकर बसे उन्होंने संघर्षों के साथ स्वयं के पुरुषार्थ से सम्मानित नागरिक के रूप में अपना स्थाई आवास बनाया। उन्होंने विभाजन के दर्द को सहते हुए भी विकास

की जिन ऊंचाइयों को छुआ है वह सराहनीय है वह अपने को शरणार्थी नहीं पुरुषार्थी कहलाना ज्यादा पसंद करते हैं।[12]

विभाजन की त्रासदी के भुक्त भोगियों के कुछ परिवारोंके साक्षात्कार में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा कि उन्होंने दंगों को दंगों के रूप में लिया था और इसे अस्थाई समझा था।[13] परंतु जून के मध्य में दंगों की तीव्रता इतनी बढ़ गई जिसने गांव के गांव अपने चपेट में ले लिए। पश्चिमी पंजाब के कस्बे सियालकोट जिला भी सांप्रदायिकता की चपेट में आ गया। जिले के हर गांव पर मुस्लिम गुंडो की भीड़ ने हमला किया। कई मामलों में भीड़ का नेतृत्व मुस्लिम लीग के सदस्यों, नेशनल गार्ड के पुलिस अधिकारियों ने किया। कई मामलों में मुसलमानों ने उनकी सुरक्षा का वादा किया लेकिन जब गांव पर पड़ोसी गांव के लोगों ने हमला किया तो वह वादे भूल गए और स्थानीय मुसलमान अपने सह ग्रामीणों को लूटने और हत्या करने में लुटेरों में शामिल हो गए।

कुछ स्थानों पर रिश्वत भी मांगी गई थी किंतु इसके पश्चात भी उन्हें लूट लिया गया था। सुरक्षा की कीमत के रूप में अक्सर इस्लाम धर्मांतरण की भी पेशकश की गई थी, यातनाएं भी दी गई थी। सिखों के बाल भी काटे गए दाढ़ियां भी काट दी गई। जबरदस्ती गोमांस उनके मुंह में डाला गया। उनमें से कुछ का खतना भी किया गया। युवतियों एवं महिलाओं से छेड़छाड़ भी की गई। उन्हें उठा लिया गया। कट्टरवादिता ने विवेक एवं मर्यादा को चूर-चूर कर दिया।[14]

कुछ परिवारों के साक्षात्कार के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए इसी पुस्तक में आगे कहा गया है कि लगभग 90 प्रतिशत नामधारी परिवारों ने सांप्रदायिक हिंसा में अपने धनचल एवं अचल संपत्ति की क्षति को तो स्वीकारा है परंतु जनहानि ज्यादा नहीं मानी है। उनके तथा उनके परिवार को शारीरिक क्षति नहीं पहुंची है। कुछ ने मुसलमानो द्वारा सहायता की बात भी स्वीकार की है। 1947 की दुखद घटना के प्रत्यक्षदर्शी श्री गुरु चरण सिंह कपूरथला रावी नदी पर बने पुल को पार करते समय का मंजर सुनते हुए कहते हैं कि वह खुद लाशों पर से चलकर आए थे पुल के दोनों और लाशे पटी पड़ी थी। तालाब लाशों से भरे हुए थे रावी का पानी लाल एवं काला तथा लाशों से पटा हुआ था। मेरे पीछे जितने लोग थे पुल पर सभी मार दिए गए थे। (पंजाब का विभाजन पृष्ठ 83) अधिकांश उत्तरदाताओं ने बताया कि वह कुछ समय तक शरणार्थी शिवरों में रहे वहां उन्हें अस्थाई राहत मिली परंतु वे अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे।

विभाजन का कृषकों पर भी बहुत त्रासदी भरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कृषक अपनी उपजाऊ जमीन छोड़कर भागने पर विवश हुए थे। प्रस्तुत पुस्तक में उनके पुनर्वास की प्रकिया को दो चरणों द्वारा चिन्हित किया गया था अध्ययन में बताया गया है कि पहले चरण में वह उन गांव में रुके जहां उन्हें जमीन आवंटित की गई थी परंतु वह जमीन या तो बहुत कम थी या कम उपजाऊ थी। आवंटित भूमि का आकार पंजाब में उनके द्वारा छोड़ी भूमि की वर्ग की तुलना में बहुत छोटा था तथा आवंटित भूमि कम उपजाऊ भी थी। कुछ मामलों में बंजर भूमि भी थी। कुछ जगह पानी की कमी थी। सूबा जागीर सिंह मुक्तसर बताते हैं कि उनके दादा के पास बहावलपुर में 700 एकड़ जमीन थी जबकि उन्हें छपिया वाली मुक्तसर में आवंटित जो जमीन मिली वह केवल 60 एकड़ थी।[15] नामधारी कृषकों के 30 प्रवासी परिवार थे। जो सियालकोट जिले के 60 गांव से आए थे और वह पूर्वी पंजाब के जिला संगरूर के दो गांव में बसाए गए थे। लाहौर के 16 परिवार फिरोजपुर चले गए थे। नामधारी कृषकों के अध्ययन से पता चलता है कि जब उन्हें पश्चिमी पंजाब के अपने मूल गांव से उखाड़ा गया तो उन्हें लुटेरे मुसलमान के हाथों शारीरिक और मानसिक यातना का सामना करना पड़ा। हालांकि कुछ मुसलमानो ने सहायता भी की और उन्हें राहत शिविरों तक पहुंचाया गया था।

कुछ नामधारी सिक्खों ने जो अभी भी विभाजन के पूर्व के अपने सुनहरे दिनों को याद करते हैं और अफसोस करते हैं कि विभाजन से पूर्व उनके पास बड़ी जमीन जायदाद हवेलियां मकान और फलते-फूलते कारोबार थे उन्हें इस बात का अफसोस था कि पूर्वी पंजाब में उन्हें आवंटित जमीन और मकान पश्चिम की तुलना में बहुत कम मिले। (इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस वॉल्यूम 68 पृष्ठ 1053) इसी प्रकार नामधारी अमरीक सिंह ने बताया कि उनके पिता गांव दंतेवाल जिला सियालकोट वर्तमान पाकिस्तान के थे उनके पास 6 बड़ी दुकान एक विशाल हवेली और घर था। बँटवारे के समय संपत्ति और अन्य आकलन लगभग 10 लाख रुपए का था उसके एवज में उनके पिता को केवल 12000 का मुआवजा मिला। विभाजन के दौरान हुई हिंसा में उन्होंने अपने पिता को भी खो दिया और मां बुरी तरह घायल हो गई थी। अमरीक सिंह ने सामूहिक हिंसा का जो आंखों देखा सुनाया वहदिल दहला देने वाला था। उन्होंने कहा कि बहावलपुर में पठानों द्वारा 300 से 400 सिखों की हत्या कर दी गई थी।

नामधारी गुरुओं की पुनर्वास नीति

सरकारी मदद के अभाव में बड़ी संख्या में नामधारी कृषकों ने कहा है कि उन्हें तो उनके आध्यात्मिक गुरु सद्गुरु प्रताप सिंह ने अपने प्रवासी अनुयायियों के लिए तत्काल राहत की व्यवस्था की। वह उन्हें या तो लुधियाना स्थित भैणी साहब मुख्यालय में जाने या सीधे हरियाणा के सिरसा में श्री जीवन नगर या हिमाचल प्रदेश के मंडी शहर में जाने का निर्देश देते थे। इसी प्रकार जालंधर शहर में 80 प्रतिशत से अधिक कारीगर हैं जो पश्चिमी पंजाब सियालकोट जिले से आए थे।

बँटवारे ने हर किसी का नुकसान किया किंतु नामधारी कृषक ज्यादा नुकसान में रहे। यह अनुमान लगाया जाता था कि पश्चिमी पंजाब में 18.8 मिलियन एकड़ खेती योग्य भूमि थी जो लगभग 6.7 प्रतिशत गैर मुसलमानों की थी। गैर मुसलमान ने पूर्वी पंजाब में मुसलमान द्वारा छोड़े गए भूमि से लगभग 20 लाख एकड़ अधिक जमीन पश्चिमी पंजाब में छोड़ दी थी। इन परिवारों की आप बीती दिल दहला देने वाली है।

शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसने अपने संपत्ति या परिवार के सदस्यों को ना खोया हो या जिसके परिवार की महिलाओं के साथ अमर्यादित आचरण ना हुआ हो, लेकिन दुख की बात यह है कि इन परिवारों में से बहुत ही कम परिवार वाले इस त्रासदी को याद रखना चाहते हैं। इसमें प्रोफेसर जोगिंदर सिंह ने अपने शोध में कहा है कि ''यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि वर्तमान पीढ़ी विभाजन के इस दर्द को याद नहीं रखना चाहती और नई पीढ़ी को तो विभाजन के इस दर्द का अहसास तक नहीं है''। बरबस ही राजी सेठ की कहानी ''किसका इतिहास'' का स्मरण करवा देती है जिसमें विभाजन के संदर्भ में दो पीढ़ियों की सोच और संवेदनात्मक धरातल पर उनके टकराव को दर्शाता है।

''एक ओर बँटवारे की भयावह दहला देने वाली स्मृतियां उस समय की मार काट, लूटपाट और विस्थापित होने के दर्द में जकड़ा हुआ पिता है तो दूसरी तरफ जवान बेटा है जो इन सब से जुड़ाव महसूस नहीं करता उसके लिए बटवारा इतिहास की एक घटना से अधिक अहमियत नहीं रखता[16]।

इंसान की स्मृति बहुत कमजोर होती है वह दुख दर्द को बहुत जल्दी भुलाकर वर्तमान में जीने और भविष्य को संवारने में लग जाता है जो स्वाभाविक भी हैपरंतु जिसने उस पीड़ा को भोगा हैउस दर्द को सहा है उसके लिए यह सब

इतना आसान नहीं होता और जब वह आने वाली पीढ़ी को उस दर्द को महसूस करते नहीं देखता तो स्वाभाविक रूप से कह उठता है – ''आखिर यह मेरा इतिहास है उसका नहीं यह मेरे जख्म है उसके नहीं। यह दर्द भी मेरा ही है बस मेरा इसे मेरे आयाम में खड़ी मेरी हमसफर पीढ़ी ही समझ सकती है मेरी भावी पीढ़ी नहीं''।

परंतु इस तरह के दर्द को भूलना समझदारी नहीं है। हमें इतिहास से सबक लेने की जरूरत है और उस दर्द को हमेशा याद रखना भी जरूरी है कि हमारे राजनेताओं की अदूरदर्शिता तथा सत्ता हस्तांतरण की जल्दी बाजी में विभाजन को जिस प्रकार स्वीकार किया गया उसका कितना खामियाजा हमारे पूर्वजों को भुगतना पड़ा भले ही उनका पुनर्वास हो गया। परन्तु अपनी जड़ों से उखड़ना और पुन: पुनर्वास एक भयानक त्रासदी के रुप में उनके स्मृतियों में शेष है। हमें भी उनके दर्द को आत्मसात करना होगा। और मानवीय मूल्यों संवेदनाओं को हर हाल में बचाए रखना होगा। तथा भविष्य में किसी भी रूप में इसकी पुनरावृत्ति न हो इस ओर भी सावधान रहना होगा। तभीइस तरह के आयोजन की सार्थकता होगी।

1. Sikh Revivalist Movement pp26
2. भारतीय सन्त परम्परा में गुरु रामसिंह का स्वरूप और जीवन दर्शन पृ.189
3. A short History of Namdhari Sigh p 86
4. Broadening The Boundaries Of Namdhari Mission pp 8521
5. वही
6. The Namdhari Sikhs pp81.
7. असिमिलेशन ऑफ़ एन एथेनिक ग्रुप 102
8. वही 123
9. वही
10. The Namdhari Sikhs p.84
11. एक सिख नेता की दास्तान पृ.15
12. असिमिलेशन ऑफ़ एन एथेनिक ग्रुप 123
13. The Namdhari Sikhs p.84
14. वही
15. IHC proceedings vol 69p.664
16. The Namdhari Sikhs pp90-91

मोहन राकेश की कहानियों में चित्रित देश विभाजनोत्तर विभीषिका

डॉ पुरुषोत्तम कुंदे*

भारत की स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलनों का क्रांतिकारी स्वर 1857 ई. के संग्राम के साथ ही द्रुतगामी हुआ। प्रारंभ में देश के प्रमुख दो धर्मों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा सौहार्द का परिचय देते हुए स्वाधीनता संग्राम में अपना सर्वस्व अर्पण किया। किन्तु 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंतिम दशक तक अनेक ऐसे कारणों का प्रादुर्भाव हुआ जिससे हिन्दू-मुस्लिम एकता में अलगाव उत्पन्न हुए। हिन्दी बनाम उर्दू का झगड़ा, मुस्लिमों का एकेश्वरवाद व कट्टरवादिता, सर सैयद अहमद खाँ द्वारा अंग्रेजों से मुस्लिम समुदाय हेतु सहायता प्राप्त करना, मुस्लिम लीग की स्थापना, 1888 ई. में गोरक्षा आंदोलन, पृथक पाकिस्तान मुस्लिम राष्ट्र की माँग तथा जिन्ना के डायरेक्ट एक्शन प्लान द्वारा हिन्दू नरसंहार आदि ऐसे कारण रहे जिनके द्वारा हिन्दू एवं मुस्लिम वर्ग में वैमनस्य तथा द्वेष की भावना ने संचार किया। जिन्ना द्वारा खुले रूप में गाँधीजी के अहिंसावादी मत को चुनौती दी गई। डॉ सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं ''जिन्ना ने इसी समय 10 अप्रैल, 1946 को लीग के टिकट पर निर्वाचित सदस्यों का अधिवेशन आयोजित किया और पाकिस्तान की माँग को प्रस्ताव के रूप में पारित किया।''[1]

15 अगस्त 1947 ई. को भारत व पाकिस्तान स्वतंत्र राष्ट्र अस्तित्व में आए। किन्तु पाकिस्तान की विस्तारवादी नीति तथा धार्मिक कट्टरता ने स्वतंत्रता प्राप्ति

* प्र.प्राचार्य, न्यू आर्टस्, कॉमर्स एण्ड साइन्स कॉलेज, शेवगाँव जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र-414502 तथा असोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
Email : prkunde@gmail.com दूरभाष : 9552554284

के पश्चात् जिस प्रकार की विभीषिका को जन्म दिया वह भारत–पाकिस्तान के विभाजन से भी अधिक दु:खद थी। अनेक गैर मुस्लिमों की हत्याएँ की गई, साम्प्रदायिक हिंसा तथा लूटपाट की गई। पंजाब तथा बंगाल प्रांत इस विभाजनोत्तर विभीषिका में सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र रहे। कश्मीर तथा हैदराबाद में विरोध का स्वर उठने लगा। अनेक साम्प्रदायिक दंगों को पाकिस्तान ने हवा दी। इन सभी परिस्थितियों में हिंदी साहित्य की राजनैतिक व सामाजिक पृष्ठभूमि में तीन चरण उभर कर सामने आए। जिनमें स्वतंत्रता पूर्व, स्वातंत्र्योत्तर तथा भारत–पाकिस्तान विभाजन की विभीषिका सम्मिलित है। स्वतंत्रता पूर्व प्रेमचंद, निराला, जयशंकर प्रसाद तथा भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि लेखकों का नाम उल्लेखनीय है। स्वातंत्र्योत्तर लेखकों में अमृतलाल नागर, फणीश्वर नाथ रेणु, राजेन्द्र यादव व मन्नू भंडारी आदि रचनाकार लक्षित होते हैं। वहीं भारत–पाकिस्तान के विभाजन व उसकी विभीषिका को आधार बनाकर भी अनेक हिन्दी लेखकों ने कथा साहित्य का लेखन किया है। यह स्वतंत्रता जनित तृतीय ऐसा चरण था जिसमें न तो हिन्दू–मुस्लिम एकता या सौहार्द का स्वतंत्रता पूर्व राग आलाप था और न ही स्वातंत्र्योत्तर हिन्दू–मुस्लिम वर्चस्व या मतवाद का। अपितु इसमें विभाजन की विभीषिका से प्रभावित आम जनमानस की दु:ख व तकलीफों का इन लेखकों ने यथावत् रेखांकन किया है।

यद्यपि यह स्वतंत्रता पश्चात् की स्थिति का उल्लेख है किन्तु लेखकों ने जिस प्रकार केवल 1947 ई.–1948 ई. के कालखंड में भारत–पाकिस्तान सीमावर्ती क्षेत्रों विशेषकर पंजाब के विभाजन प्रभावित आम जनमानस पर लेखनी चलायी है। उस परिदृश्य में इसे स्वतंत्रता आंदोलन के तृतीय चरण का वह काल कहना अधिक उचित होगा जिसमें स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही विभाजन की विभीषिका की समस्याएँ परिलक्षित होने लगीं थीं। इस परिदृश्य में मोहन राकेश (मलबे का मालिक), अमृतराय (बीज), विष्णु प्रभाकर (निशिकांत), भैरव प्रसाद गुप्त (सती मैया का चौरा), भीष्म साहनी (अमृतसर आ गया है), भगवतीचरण वर्मा (भूले बिसरे चित्र), कमलेश्वर (लौटे हुए मुसाफिर), तथा यशपाल (दादा कामरेड) आदि प्रमुख कथाकार दृष्टिगोचर हैं। मोहन राकेश इस शृंखला में प्रासंगिक कहानीकार हैं, जिन्होंने विभाजन की विभीषिका को परमात्मा का कुत्ता, कंबल तथा क्लेम आदि द्वारा चरितार्थ किया है।

मोहन राकेश नई कहानी आंदोलन के प्रवर्तक कहानीकारों में से एक हैं।

1954 ई. में मोहन राकेश, कमलेश्वर तथा राजेंद्र यादव के द्वारा कहानीकारों में जिस प्रकार की चेतना का संचार हुआ, वह नई कहानी आंदोलन नाम से हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित हुई। यह चेतना स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की स्थितियों के परिदृश्य में परिलक्षित है। आज़ादी से मोहभंग, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, सरकारी तंत्र की उदासीनता तथा राजनैतिक स्वार्थ लिप्सा आदि वे बड़े कारण हैं जिसके आधार पर 60 के दशक में कहानीकारों ने विभाजन त्रासदी के विनाश को भी इस दिशा में जोड़ा। मानवीय मूल्यों का पतन, संवेदनहीनता, सामाजिक मूल्यों का नैतिक विघटन, अलगाव तथा अस्तित्व का संकट आदि नयी कहानी में वे अंगीभूत विषय वस्तुएँ हैं, जिनसे मोहन राकेश सरीखे कहानीकारों ने विभाजनोत्तर विभीषिका की विद्रूपता को प्रकट करने का प्रयास किया है। इस परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश द्वारा लिखित कहानियाँ 'मलबे का मालिक', 'क्लेम', 'परमात्मा का कुत्ता', 'कंबल' तथा 'कटी हुई पतंग' उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

स्वतंत्र भारत में लगभग 150 वर्षों की परतंत्रता के पश्चात जब सांप्रदायिक दंगों, धार्मिक उन्माद तथा लूटपाट ने मनुष्य का मनुष्य पर संदेह-अविश्वास बढ़ाया तब विभाजित भारत में एक प्रकार की रोष की लहर दौड़ गयी। जिसने मनुष्य को अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए उसे हिंसक व पाश्विक प्रवृत्ति का बना दिया। शनैः शनैः उसकी यह प्रवृत्ति हिंदू-मुस्लिम के विषाक्त भेदभाव विचार से प्रभावित होकर मानवीय संवेदना-संबंधों को तार-तार करने लगी। समाज में बंधुत्व भाव रखने वाले विश्वास पात्र ही विश्वासघात को तत्पर होने लगे। यह एक कुंठा की अभिव्यक्ति थी जो भारत-पाकिस्तान के विभाजन, हिंदू-मुस्लिम के पृथक राष्ट्र की माँग तथा तदुपरांत दंगाइयों के भगदड़ से उत्पन्न एक घृणात्मक भाव था।

'मलबे का मालिक' कहानी में स्वतंत्रता के पश्चात् सांप्रदायिक सौहार्द तथा भाई-चारे की भावना को प्रश्रय देने के उद्देश्य से हॉकी खेल का आयोजन हुआ। जिसके बहाने अपने अतीत के साक्षात्कार के लिए अनेक हिंदू-मुस्लिम का अमृतसर आना हुआ। इसमें लाहौर से एक वृद्ध मुस्लिम गनी मियाँ भी आए थे। वे जब अपने दंगे में ढह चुके मकान के मलबे पर पहुंचते हैं तब उन्हें उनके बेटे चिरागदिन का हत्यारा रक्खा पहलवान मिलता है। किंतु मानवीय संवेदनाओं को झकझोर देने वाले कारुणिक संवाद में वह रक्खा पहलवान से कहता है, ''रक्खे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं

बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी नहीं रुकी।''[2] यह भावात्मक उद्‌गार ही हैं कि सीधे शब्दों में अपने शत्रु या परिचित दंगाई को उसके किए घृणित कार्य के लिए कोसने के बजाए, गनी मियाँ ने रक्खा पहलवान को मानवता, विश्वास तथा बंधुत्व भाव का गहरा अहसास कराकर उसके हृदय में विश्वासघात का अपराधबोध जागृत कर दिया। जिनके अहसास भाव से रक्खा पहलवान लज्जित महसूस करने लगा। वह गनी मियाँ से आँखे न मिलाकर बगले झाँकने लगा। उसका गला इस भय से नहीं सूखने लगा कि गनी मियाँ चिरागदिन की हत्या का रहस्य जानकर उससे लड़ेगा। अपितु वह स्वयं में यह बोध कर पा रहा था कि जिस विश्वास व प्रेम के महल, सुनहरे मकान को उसने चिरागदिन की हत्या से तोड़ा है अब केवल गनी मियाँ के वचन रूप में केवल उसे उस विश्वास रूपी मकान का मलबा ही प्राप्त है। ''गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के गिर्द दायरे गहरे हो गए हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, जो होना हो गया रक्खिआ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक-नेकी बनाए रखें और बदी माफ करें। मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। 'अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखें।''[3]

भारत-पाकिस्तान विभाजन के लिए मोहन राकेश ने मलबे का मालिक कहानी द्वारा जिस जीवंत मार्मिक प्रतिरूप को प्रस्तुत किया है। उस परिप्रेक्ष्य में गनी मियाँ पीड़ित तथा रक्खा पहलवान दंगाई के प्रतीक रूप में प्रस्तुत हैं। फलत: पंजाब प्रांत का प्रतिनिधित्व करती 'मलबे का मालिक' कहानी अविभाजित पंजाब के बँटवारे तथा सांप्रदायिक फसाद को प्रकट करती है। अनेक हिंदू-सिक्ख परिवार जो लाहौर, कराची, पेशावर तथा सिंध प्रांतो में बहुतायत थे, जिनका सांस्कृतिक एवं आर्थिक संपन्नता इन प्रांतो की पहचान थी। वह एक रात में छिन्न-भिन्न हो गई। अनेक परिवार अपनी प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भाग गए। गनी मियाँ इसी के प्रतीक हैं। इस संदर्भ में डॉ. रणसुभे जी के विचार दृष्टव्य हैं ''इस कहानी में गनी मियाँ और रक्खे पहलवान की मानसिकता का बड़ा जीवंत चित्रण हुआ है। गनी मियाँ की मासूमियत रक्खे को भीतर से तोड़ देती है। यह मलबा ढहती हुई मानवता का प्रतीक भी माना जा सकता है।''[4]

मोहन राकेश की लेखनी सामाजिक यथार्थ को जिस प्रकार प्रस्तुत करती है, उस परिदृश्य में एक बड़े भू-भाग का मार्मिक विभाजन तथा उससे जुड़े हृदय

स्पर्शी प्रसंग इसमें निहित है। किसी का नया घर इस विभाजन के मलबे में ढह गया। कोई इस ढहे हुए मकान को सिर्फ देखने आया है। जबकि अब वे ढह चुके संबंध, समृद्धि तथा स्मृत्तियों का प्रतीक वह नष्ट हो चुका घर, मकान के मलबे के रूप में परिवर्तित हो चुका है। नवनिर्माण की परिकल्पना के संकल्प से जिस पाकिस्तान की स्थापना की गई। उसमें लोगों के घर-व्यापार ही पीछे नहीं छुट गए अपितु लोगों ने अपने प्रियजनों के संहार का दंश भी झेला है। विकास की, उन्नति की संकल्पना, धार्मिक रूप से कभी सफल नहीं हो सकती। मोहन राकेश की कहानियाँ इसका उल्लेख करती हैं। ''कहानी के शिल्प की दृष्टि से फसादों का घटनात्मक विवरण देना वास्तव में कठिन होता है। और इसी कारण बहुत कम कहानियों में इस प्रकार का विवरण आया हुआ है। परंतु राकेश कम-से-कम शब्दों में घटना को जीवंत बना देते हैं।''[5]

मोहन राकेश ने अपनी अन्य कहानियों कंबल, परमात्मा का कुत्ता तथा क्लेम के द्वारा यह संदेश दिया है कि देश विभाजन की त्रासदी केवल राजनैतिक मुद्दा नहीं है। अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान पर भी आघात है। स्थानीय जनमानस का भाईचारा, पारस्परिक प्रेम, सौहार्द तथा बंधुत्व भाव किस प्रकार सांप्रदायिक दंगे में परिवर्तित हो जाता है। जो आपस में भाई-भाई की तरह रहते थे वे पाश्विक प्रवृत्ति के प्रभाव में अपनों को ही खो बैठते हैं इस प्रकार का चित्रण मोहन राकेश की कहानियों में झलकता है। वही मुआवजे के लिए ''परमात्मा का कुत्ता' कहानी भारतीय दफ्तरों की लालफीताशाही, रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य है। एक शरणार्थी की जमीन प्राप्ति की अर्जी पर सरकार 2 वर्षों में भी कोई निर्णय नहीं कर पायी है। 'शायद' और 'तकरीबन' इन दो शब्दों के द्वारा बूढ़े शरणार्थी को हर बार बहलाया जाता है। आखिर वह निडर और निर्लज्ज होकर अपने पूरे परिवार के साथ कमिश्नर के कार्यालय में पहुंचता है और पूरी दृढ़ता के साथ चिल्लाने लगता है।''[6] विभाजन के राजनैतिक कुचक्र में पड़कर जब आम जनमानस अपने खो चुके जमीन-जायदाद के बदले सिर पर एक छत की आशा में दौड़-धूप करने पर मजबूर होते हैं। इसका मार्मिक वर्णन 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी में चित्रित है। असल में यह शरणार्थी की समस्या का जीवंत प्रकटीकरण है। यह एक प्रासंगिक समस्या भी है।

इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति जब खुले आसमान के नीचे अपने परिवार जनों के साथ रहने को मजबूर है तब वह लोक लज्जा की भी परवाह नहीं करता। वह

केवल अपनी मानवीय आवश्यकता, आकांक्षा तथा जिजीविषा के कारण जीवित है। किंतु इस पर भी वह शरणार्थी सिक्ख परिवार अपनी आवश्यकता के अनुरूप एक छत भी प्राप्त नहीं कर पाता है। बल्कि राजनैतिक-प्रशासनिक षड्यंत्र में फँसता चला जाता है। ''दफ्तर के प्रमुख कमिश्नर साहब एवं उनके सहयोगी शरणार्थी की इस संत मुद्रा से नहीं डरते। वे डरते हैं अपने सफेद पोशी की कलई खुल जाने की आशंका से। 'परमात्मा का कुत्ता' का सफल अभिनय कर वह आदमी आधे घंटे में अपना काम करवा लेता है। ऐसे परमात्मा के कुत्तों से खुदा भी डरता है। कहानीकार का मंतव्य स्पष्ट है। साहस के साथ सत्याग्रह किए बिना लालफीताशाही की अजगरी मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं घटित होता है।''[7]

लाखों शरणार्थियों का दायित्व कोई राजनीतिक पक्ष लेने के लिए उत्तरदायी नहीं है। किंतु इन्हीं राजनीतिक पक्षों के कारण अनेक परिवार विस्थापित हुए। अनेक अपने पैतृक घरों को छोड़ने पर मजबूर है। अनेक स्त्रियाँ अपहरण की गई। बेघर, भूखे तथा धन-संपदा को खो चुके लोग जब अपनी संपत्ति का 'क्लेम' लेने के लिए भागे-भागे फिरे तो उन्हें अपना आधा क्लेम भी नहीं मिला। ''पीछे बैठी स्त्री रो रही थी कि बेड़ा गर्क हो क्लेम मंजूर करने वालों का जो उसका सिर्फ अट्ठारह हजार का क्लेम मंजूर किया गया है... गुजराँवाला में उसके चार मकान थे और एक साढ़े तीन कनाल का बगीचा था। बगीचा चार कनाल का होता, तो उन्हें ज्यादा रुपया मिलता। अगर उन्हें पहले पता होता, तो वे आधा कनाल ज्यादा लिख देते... वे अपनी सच्चाई में मारे गए।''[8]

इसी प्रकार मानवीय संबंधों के ह्रास एवं मानवता के भाव के पतन की अन्य कहानियों में राजनैतिक दोहरापन तथा भ्रष्टाचार का उल्लेख मोहन राकेश ने किया है। इस तरह जब 'क्लेम' कहानी में मोहन राकेश साधु सिंह हीरा का उल्लेख करते हैं तब वहाँ केवल विभाजन की त्रासदी की कहानी नहीं दिखाई पड़ती है, वह मानवता को तार-तार करने वाली मार्मिक कहानी भी है। 'क्लेम' कहानी सीधी-सादे जनमानस की सत्यता व स्पष्टवादिता के प्रत्युत्तर में प्रशासन की आश्वासनबद्धता एवं उदासीनता का दर्शन मात्र मिलता है। संपत्ति के क्लेम के परिप्रेक्ष्य में निरीह-निर्दोष विभाजन की विशेषता के सताए जनमानस की दुर्दशा का रेखांकन मोहन राकेश द्वारा किया गया है। इसमें सीधे-सादे व्यक्ति को कुटिल बनाना पड़ता है। हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था की असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। सो वाहेगुरु का नाम लेकर हमने इस

तरह फॉर्म भरा कि जायदाद की असली कीमत तो कम-से-कम वसूल हो ही जाए। मगर इन बेईमान ने फिर भी कुल साठ हजार का ही क्लेम मंजूर किया है।''[9]

विभाजन की त्रासदी ने परिवारों को तोड़ा, संबंधों का विछोह किया, भ्रातृत्व की हानि की साथ ही मानवता के पतन तथा विश्वास पर गहरा आघात भी किया। संपत्ति के लूटे जाने की भरपाई वरन् अपना पैतृक स्थान छूटने का दु:ख व्यक्ति सह सकता हो किंतु स्वजनों का विछोह एक दंश के समान सदैव हृदय को सालता रहता है। 'क्लेम' कहानी में ही दृष्टव्य है कि, ''पत्तों की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवई उनके मोहल्ले में घुस आए। जब उनके घर का दरवाजा तोड़ा गया, तो वह हीरां को साथ सटाए दम-साधकर चारपाई पर पड़ा था। उन्होंने जल्दी से पिछवाड़े की तरफ कूद जाने का निश्चय किया। वह तो झट-से कूद गया, मगर हीरां दो बार उचककर भी कूद नहीं पाई। और इससे पहले कि वह फिर एक बार साहस करती, किसी हाथ ने उसे पीछे खींच लिया''[10] विभाजन की त्रासदी का मोहन राकेश ने जो मार्मिक पक्ष उजागर किया है, उस परिप्रेक्ष्य में एक दंपति की विछोह कथा का प्रसंग उल्लेखनीय है। संपत्ति, घर, मकान संबंधी सभी का विछोह समय के साथ-साथ व्यक्ति को विस्मृत कर सकते हैं किंतु पत्नी-परिवार जनों के पीछे छूट जाने का दु:ख सहनशक्ति से बाहर की विषय-वस्तु है। इसकी भरपाई समय व्यतीत होने पर भी नहीं हो सकती है। इसी परिदृश्य में मोहन राकेश ने मानवीय संवेदना को झकझोर देने वाली कहानी 'कंबल' का लेखन कर यह प्रकट किया है कि शरणार्थी शिविरों में विभाजन की त्रासदी में केवल व्यक्तिगत स्वार्थ, स्वयं की अस्तित्व रक्षा एवं प्रतिदिन संबंधों के नैतिक पतन का प्रश्रय होता रहा हैं। जहाँ एक पत्नी ठंड से बचने के लिए बच्चों का मिथ्या सहारा लेकर स्वयं कंबल ओढ़ती हैं। वही पति सुबह तक ठंड के प्रकोप से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अत: विभाजन की विभीषिका में, उस त्रासदपूर्ण अवस्था में यह मार्मिक प्रसंग किसी मानवीय मूल्य के पतन व विभेदकारी घटना के समकक्ष, जिसमें एक मनुष्य अपनी प्राण रक्षा के लिए दूसरे की प्राणाहुति देने को तत्पर है। अंतत: मोहन राकेश की कहानियाँ मनुष्य जीवन के विविध पक्षों व नवीन आयामों के उद्घाटन में सार्थक लक्षित होती हैं। जहाँ वे प्रेम, बंधुत्व, सांप्रदायिक सौहार्द के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं के पतन, स्वार्थ लिप्सा तथा नैतिक मूल्यों के विघटन को दर्शाने में प्रासंगिक है। राजनीतिक

आयामों की दृष्टि में विभाजन पीड़ितों को मुआवजे के लिए प्रशासन से निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। फिर भी उन्हें कोई संतोष जनक हल प्राप्त नहीं होता है। फलत: मोहन राकेश पीड़ित जनमानस के प्रतिकार स्वर व उनकी कारुणिक पुकार के पुरोधा लेखक हैं। उनकी कहानियों की विस्तृत परिधि में विभाजन की त्रासदी का मार्मिक उल्लेख है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रणसुभे, डॉ सूर्यनारायण, देश विभाजन और हिंदी कथा-साहित्य, पृष्ठ-46.
2. मार्कण्डेय (संपा.), मानक कहानियाँ, पृष्ठ-100, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1994 ई.
3. वही, पृष्ठ-101
4. रणसुभे, डॉ. सूर्य नारायण, देश विभाजन और हिंदी कथा साहित्य, पृष्ठ-235, संचयन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-1987 ई.
5. वही - पृष्ठ-234
6. मिश्र, डॉ सरजू प्रसाद, समकालीन हिंदी कहानी में पीढ़ियों का अंतराल, पृष्ठ - 18, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1982 ई.
7. वही, पृष्ठ-18
8. सिंह, डॉ पुष्पपाल (संपा.), कथा मंजरी, पृष्ठ-113, ज्ञानदूत प्रकाशन, दिल्ली, संस्कृत-2004 ई.
9. वही, पृष्ठ-114
10. वही, पृष्ठ-116

विभाजन की त्रासदी और मंटो की कहानियाँ

डॉ. नीलाभ कुमार*

विभाजन के कारुणिक मुद्दों से ऊपजे दो राष्ट्रों के सिद्धांत की भयावहता की खिल्ली उड़ाता इब्ने इंशा की रचना 'हमारा देश', जिसकी बानगी सवाल-जवाब में हमारे सामने है, द्रष्टव्य है-

''ईरान में कौन रहता है?''
''ईरान में ईरानी क़ौम रहती है।''
''इंग्लिस्तान(इंग्लैंड) में कौन रहता है?''
''इंग्लिस्तान में अँग्रेज़ क़ौम रहती है।''
''फ़्रांस में कौन रहता है?''
''फ़्रांस में फ्रांसीसी क़ौम रहती है।''
''यह कौन-सा मुल्क है?''
''यह पाकिस्तान है।''
''इसमें पाकिस्तानी क़ौम रहती होगी?''
''नहीं, इसमें पाकिस्तानी क़ौम नहीं रहती।''
''इसमें सिंधी क़ौम रहती है।''
''इसमें पंजाबी क़ौम रहती है।''
''इसमें बंगाली क़ौम रहती है।''
''इसमें ये क़ौम रहती है।''

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी
स्वामी आत्मनन्द शासकीय अंग्रेजी माध्यम आदर्श महविद्यालय, अम्बिकापुर
जिला-सरगुजा, पिन-497001 (छत्तीसगढ़)

''इसमें वो क़ौम रहती है।''

''लेकिन पंजाबी तो हिंदुस्तान में भी रहते है!''

''सिंधी तो हिंदुस्तान में भी रहते हैं!''

''बंगाली तो हिंदुस्तान में भी रहते हैं!''

''फिर यह अलग देश क्यों बनाया गया था?''

''गलती हुई। माफ़ कर दीजिए। अब कभी नहीं बनाएँगे?''

व्यंग्यात्मकता से उठाये गए सवाल-जवाब में दो राष्ट्रों के सिद्धांत के डरावने तर्क की जैसे खिल्ली उड़ाई गयी हो! ''विभाजन निश्चय ही एक बहुत बड़ी विभीषिका थी जिसने हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक आधारों को बुरी तरह हिला दिया था, मानवीय मूल्यों की हमारी धारणाओं को खंडित कर दिया था और हम भौचक्के-से अपनी जमीन से उखड़े हुए संबंधहीनता और मूल्यहीनता के गहरे गड्ढे में गिरते जा रहे थे।''(1) 'सहाय' कहानी के आरंभ में मंटो ने लिखा है- ''यह मत कहो कि एक लाख हिंदू और एक लाख मुसलमान मरे हैं...यह कहो कि दो लाख इंसान मरे हैं...और यह इतनी बड़ी ट्रेजडी नहीं कि दो लाख इंसान मरे हैं, ट्रेजडी असल में यह है कि मरनेवाले किसी भी खाते में नहीं गए- ...एक लाख हिंदू मारकर मुसलमानों ने यह समझा होगा कि हिंदू मज़हब मर गया है, लेकिन वह ज़िंदा है और ज़िंदा रहेगा...इसी तरह एक लाख मुसलमान क़त्ल करके हिंदुओं ने बगलें बजाई होंगी कि इस्लाम खत्म हो गया है, मगर हक़ीक़त आपके सामने है कि इस्लाम पर एक हल्की-सी खरोंच भी नहीं आई ... वे लोग बेवकूफ हैं जो समझते हैं कि बंदूकों से मज़हब शिकार किए जा सकते हैं...मज़हब, दीन, ईमान, धर्म, यक़ीन, अक़ीदत- यह सब जो कुछ भी है, हमारे जिस्म में नहीं, रूह में होता है... छुरे, चाकू और गोली से यह सब कैसे फ़ना हो सकता है...''(2) ''अब वह अलिफ नंगा बाज़ारों में घूमता-फिरता है, और जहाँ कहीं टाट लटकता हुआ देखता है, उतारकर टुकड़े-टुकड़े कर देता है।''(3) उसकी यह प्रवृत्ति व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोह की भावना ने ही बँटवारे का संदर्भ और पात्रगत मानसिकता दोनों को एकमेक कर दिया है। कहानी 'नंगी आवाज़ें' की शुरूआत शरणार्थियों की एक कॉलोनी के चित्रण के साथ होती है, जहाँ लोगों का जीवन पशुओं का-सा है। लोग गर्मियों में छतों पर टाट और तम्बू डालकर सोते और यौन संबंध स्थापित करते हैं। ऐसी स्थिति में कुंआरा भोलू, जो अपने को इन स्थितियों में असहज पाता है; अपनी शादी

के लिए भाई और भाभी से कहता है कि मेरी शादी कर दो नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा। भोलू की शादी तो कर दी जाती है, पर वह टाट के परदों के पीछे अपनी बीबी को संतुष्ट नहीं कर पाता, जिसकी वजह से उसकी पत्नी उसे नपुंसक करार देती है। इस स्थिति में उसका संतुलन बिगड़ जाता है और वह बाज़ारों में नंगा घूमने लगता है। यह स्थिति ही है, जो भोलू के माध्यम से व्यक्त हुई है- कहानी को विभाजन से उपजी त्रासदायक स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। ऊपर से देखने पर यह कहानी स्त्री-पुरुष विषयक संबंध को लेकर लिखी गई जान पड़ती है, पर इसके भीतरी और बाहरी अंतर्गुह्य स्थिति विभाजन और उससे उपजने वाली त्रासद स्थिति से पाठकों को परिचित कराने की है। मंटो की कहानी 'ठंडा गोश्त' में हैवानियत की शिकार हो चुकी लड़की उस इंसानियत के लहू-लुहान होने की तसदीक करती चलती है, जिसने इंसान को इंसान नहीं रहने दिया है। सांप्रदायिकता एक ऐसा कलुष पैदा करने वाला विद्वेष भाव है, जो इंसान को इंसान बने रहने देने के लिए मशक्कत करवाता जान पड़ता है। कल तक जो साथ-साथ थे, आज एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए दिखाई देने लगते हैं। यह एक ऐसी स्थिति की निर्मिति है जिससे मनुष्य अपनी मनुष्यता खो चुकने के कगार पर खड़ा दिखाई देता है। जब ऐसी स्थिति बन आती है, तभी मनुष्य अपनी इंसानियत खोकर हैवानियत के कगार पर जा खड़ा होता है।

मंटो की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कहानी 'टोबाटेक सिंह' यानी नो मैंस लैंड- ''वह जगह जहाँ राजनीतिक क्रूरता का शिकार टोबाटेक सिंह चीखता है और पछाड़ खाकर गिर पड़ता है। उसकी चीख के साथ दो राष्ट्रों का सिद्धांत बेदम हो जाता है। लगता है जैसे अँधेरा अपनी तमाम परतों के साथ चीखने लगा हो, सन्नाटा हिलने लगा हो और उस चीख की अनुगूँज हमारे आसपास फैलती हुई हमारे भीतर उठने लगी हो।''[4] बरसों पहले जो हिंदुस्तान में था उसे पाकिस्तान में और जो पाकिस्तान में था उसे हिंदुस्तान भेजने की तैयारी चल रही थी। यह तैयारी किसी-न-किसी रूप में आज भी चल रही है। मंटो की नजर में पागलों के माध्यम से इसे पूरा किया जा रहा था और आज घुसपैठियों के द्वारा इसे अंजाम दिया जा रहा है। ये घुसपैठिए, जिनका मज़हब चाहे जो हो- वो एक दृष्टि में उन पागलों से साम्य रखते हैं कि ये भी सिरफिरे हैं। ये मानसी पागल ऐसा सोच-जानकर भी कुछ न समझने-जानने का नाटक करते हैं और 'जिहाद' के नाम पर किसी खास 'कौम' को बदनाम करने में लगे हैं।

कहानी 'यजीद' (यजीद, अमीर मुआविया का बदचलन और अत्याचारी लड़का था, जिसने कर्बला के मैदान में हजरत इमाम हुसैन और उसके साथियों को, जिनमें औरत, बच्चे और बूढ़े भी शामिल थे, भूखा-प्यासा शहीद कराया था क्योंकि वे उसके शासन के विरुद्ध थे) परंपरागत अर्थ में यजीद का विरोधी अर्थ प्रदान करनेवाले यजीद को याद किए जाने की दास्तान है। ''जरूरी नहीं कि यह भी वही यजीद हो...उसने दरिया का पानी बंद किया था...यह खोलेगा।''(5) विभाजन को मंटो ने कभी अपने दिल से स्वीकार नहीं किया। यह वाक्य शायद मंटो की उसी इच्छा का प्रतिबिंबन हो! भारत-पाकिस्तान विभाजन से उपजी वैमनस्यता और कटुता का हौलनाक विवरण है- कहानी 'यजीद'। बँटवारा के बाद आनेवाले मनमुटाव और उससे उपजी तज्जन्य परिस्थिति में दोनों पक्षों की तरफ से अफसोसनाक कार्रवाई और उस कार्रवाई से उपजी स्थिति ने गोया पूरी स्थिति को भयावह रूप प्रदान कर दिया हो। ''कहानी का विन्यास करते हुए मंटो ने बँटवारे के ऐन बाद के हिंदुस्तान और पाकिस्तान के तत्कालीन राजनीतिक संबंधों और संदर्भों- गाँव के आम लोगों में जंग की अफवाहों और हिंदुस्तान द्वारा दरिया बंद करने की ख़बरें सुनकर उनकी गुस्सैल प्रतिक्रियाओं और तदनंतर करीमदाद की राजनीतिक समझ का अच्छा उपयोग किया है।''(6)

कहानी 'खोल दो' में विभाजन कहीं ऊपर से नहीं दिखाई देता, पर इसकी त्रासदी सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश से दिखाई देती है। ''डॉक्टर ने स्ट्रेचर पर पड़ी हुई लाश की नब्ज़ टटोली और सराजुद्दीन से कहा,''खिड़की खोल दो।'' सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश हुई। बेजान हाथों से उसने अजारबंद खोला और सलवार नीचे सरका दी।''(7) सकीना इतना बेजार हो चुकी थी कि उसे इतना भी होश नहीं रहा कि जो वह करने जा रही है, वह समाज और नैतिकता विरोधी है। लेकिन पूरी कहानी को देखने पर ऐसा लगता है सकीना उन 'दारिंदों' से जार-जार हो चुकी थी। उन दरिंदों ने उसकी अस्मत लूट ली थी। इसी कुकृत्य से वह बेज़ार होकर अपने होश गंवा बैठकर पिता का भी ध्यान रखना भूल जाती है। और इस अनैतिक-सी लगने वाली स्थिति को देखकर भी पिता इसलिए खुश है कि मेरी बेटी अभी जिंदा है। स्त्री चरित्र की अस्मिता को सुरक्षित बचाए रखने की गोया लेखक सकीना के माध्यम से गुहार करता है। लेखक एक ऐसे समाज का चित्रण करता है, जो जाति के नाम पर, संप्रदाय के नाम पर, धर्म के नाम विभाजित है और जिसमें कोई चीज सबसे अधिक असुरक्षित है, तो वह है- स्त्री की अस्मत।

कहानी 'खुदा की कसम' ''देश के विभाजन के बाद दंगों, शरणार्थियों के कैंप और अगवा की गई लड़कियों की तलाश में शरणार्थियों की दौड़ धूप की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है।''[8] कथा में एक पगली माँ है, जो विभाजन के बाद खो चुकी अपनी बेटी की तलाश में मुसलसल परेशान है। उसकी परेशानी इस कदर है कि कथावाचक उसे पाकिस्तान के किसी पागलखाने में रखने को सोचता है, पर उस पागल माँ की बेइंतहा मुहब्बत अपनी बेटी को सड़कों, बस अड्डों, मैले चीकट गलियों में ढूँढ़ने को मजबूर करती है। जब उसे बताया जाता है कि तुम्हारी बेटी मारी जा चुकी है तो उसे वह स्वीकार नहीं कर पाती। ''वह खूबसूरत है...इतनी खूबसूरत है कि उसे कोई कत्ल नहीं कर सकता...उसे कोई तमाचा तक नहीं मार सकता...।''[9] पगली का ममत्व भाव अपनी बेटी के लिए व्याकुलता के हद तक थी। ''उसका समूचा अस्तित्व ममता के भाव में सिमट आया था जबकि उसकी रूपवती बेटी उससे पृथक अस्तित्व रखती थी जिसमें माँ के लिए अब कोई स्थान नहीं था। प्रेम न हो तो रक्त संबंधों का भी कोई अर्थ नहीं है और ममता के अभाव में मात्र रक्त-संबंध प्रेम का स्रोत नहीं हो सकते।''[10]

कहानी 'शरीफ़न' दंगे की रक्तरंजित घटनाओं को चित्रित करती जान पड़ती है। सर्वत्र दंगों का बोलबाला है। कासिम के दाहिने पिंडली में गोली लगी है। घर में प्रवेश करते पत्नी की लाश को देखकर जो उसे घबराहट होती है, बेटी शरीफ़न के नंगे पड़े लाश को देखकर वह तिलमिला जाता है। उसकी यह तिलमिलाहट उसे गँड़ासा उठाने पर मजबूर करती है और गँड़ासा उठाकर सरेआम बाज़ारों में उसे चमकाने लगता है। दो-तीन लोगों की हत्या भी कर बैठता है। अपने तिलमिलाहट को वह शांत नहीं कर पाता और इसी विद्वेष की भावना में वह एक लड़की के साथ बलात्कार करता है और उसे तिल-तिल कर मरने को मजबूर कर देता है। निर्वस्त्र लड़की के शरीर की ओर जब उसकी नजर जाती है तो उसे शरीफ़न की याद हो आती है। कासिम उस निर्वस्त्र शरीर पर कंबल डाल देता है। ऐसी ही परिस्थिति में वहाँ एक युवक आ धमकता है, जो चिल्ला उठता है- कौन हो तुम? कौन हो तुम? ''मुसल्लह आदमी ने जल्दी से आगे बढ़कर कंबल हटाया- नंगी लाश देखकर पहले वह काँपा, फिर एकदम उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। तलवार उसके हाथ से गिर पड़ी, फिर वह आँखों पर हाथ रखकर 'बिमला, बिमला'... कहता लड़खड़ाते हुए कदमों से बाहर निकाल गया।''[11] ''यूनानी ट्रेजडी की भाँति यह संक्षिप्त कहानी बताती है कि हिंसा और प्रतिशोध

का एक चक्र होता है जो कभी समाप्त नहीं होता। केवल क्षमा, अहिंसा और सहिष्णुता के द्वारा ही मनुष्य हिंसा के इस चक्र से निकाल सकता है। दूसरा बिंदु लड़कियों की निर्वस्त्र देह की समानता का है। निर्वस्त्रता में सब शरीर एक-से हैं। शरीफ़न और बिमला के उभरते हुए शरीरों में कोई अंतर नहीं। यह एक वास्तविकता है जो हमेशा आदमी की आँखों से ढँक कर ओझल हो जाती है। मिथ्या वास्तविकताओं के आवरण ने न केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच अलगाव पैदा किया है, बल्कि विद्वेष की ऐसी दीवारें भी खड़ी की हैं कि हम यथार्थ का साक्षात्कार ही नहीं कर पाते।''(12)

'टेटवाल का कुत्ता' कहानी में ''टेटवाल का कुत्ता गहरे प्रतीकार्थ को स्वयं में समाहित किए हुए है।''(13) हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सेना एक-दूसरे के सामने मोर्चा संभाले खड़ी है। इसी बीच कुत्ते के भौंकने की आवाज़ सुनाई देती है जिसे लेकर दोनों तरफ की सेनायें सशंकित हैं कि यह दूसरे अवाम का कुत्ता है। पाकिस्तानी सेनाओं में शक है कि यह भारत का कुत्ता है, तो भारतीय सेनाओं को शक है कि यह पाकिस्तान का है जो हमारा रहस्य जानने-समझने हमारे शिविर तक आ पहुँचा है। इसी चक्कर में दोनों सेनाओं की गोलियों का शिकार बनकर कुत्ता दम तोड़ देता है। कुत्ते की बौखलाहट से दोनों तरफ की सेनायें खुश होती हैं और खूब जोरदार ठहाका भी लगाते हैं। ''एक जवान ने अपने बूट की एड़ी से जमीन खोदते हुए कहा- ''अब कुत्तों को भी या तो हिन्दुस्तानी होना पड़ेगा या पाकिस्तानी।''(14) ''इस कहानी में आम आदमी की तकलीफ़, अस्तित्व को बनाए रखने की उसकी हरसंभव कोशिश भयावह राजनीतिक संदर्भों में उजागर हुई हैं। 'टेटवाल का कुत्ता' यहाँ आम आदमी का प्रतीक बन गया है जो कभी हिन्दुस्तानी बनकर, कभी पाकिस्तानी बनकर राजनीतिक वहशीपन का शिकार बनता है।''(15)

कहानी 'गुरुमुख सिंह की वसीयत' पुत्र संतोख सिंह द्वारा अपने पिता गुरुमुख सिंह से हरेक साल ईद के अवसर पर मियां अब्दुल हई को सेवइयाँ भेजे जाने की वसीयत के रूप में वह दहशतनाक मंजर बयानी है जिसे संतोख सिंह से सेवइयाँ पहुंचाकर लौटने वक्त पूछे गए प्रश्न में देखा जा सकता है। ''सरदार गुरुमुख सिंह का लड़का संतोख सिंह जज साहब के मकान में धड़े से उतरकर चंद गज ही आगे बढ़ा तो ढाटा बांधे हुए चार आदमी उसके पास आए- दो के पास जलती मशालें थीं और दो के पास मिट्टी के तेल के कनस्तर और कुछ

दूसरी आतिशखेज चीजें। एक ने संतोष से हिलाकर जवाब दिया: 'हाँ, कर आया...!' हाँ! जैसी तुम्हारी मर्जी! यह कहकर सरदार गुरुमुख सिंह का लड़का चल दिया।''(16) कहानी का यह वक्तव्य जिस भयावहता का चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है, वह भयावहता कहानी में चित्रित नहीं है, पर ''जिस प्रकार 'खोल दो' में पाठक की कल्पना पीछे की ओर दौड़ती है और उन भयावह घटनाओं के चित्र उसके मन में घूम जाते हैं जिनसे सकीना गुजरी है और कहानी में जिनका वर्णन नहीं किया गया है उसी प्रकार इस कहानी में पाठक की कल्पना आगे की ओर दौड़ती है और पाठक उन भीषण अत्याचारों की कल्पना से भर जाता है जिनका कहानी में वर्णन नहीं किया गया है।''(17)

कहानी 'मोजेल' में ''मोजेल के चरित्र की विचित्रता को पेश करते हुए लेखक दंगों के दौर में उसके मानवीय पक्ष का बोध कराता है।''(18) मोजेल अपनी जान की कुर्बानी देकर त्रिलोचन सिंह और उसकी मंगेतर कृपाल कौर की रक्षा करती है। मोजेल की यह रक्षा भावना मानवीय उपस्थिति का एहसास जगाती है। मोजेल, जो कि एक स्वच्छंद और दुस्साहसी लड़की का चरित्र अदा करती है- पूरी कहानी में शिद्दत के साथ त्रिलोचन और उसकी मंगेतर की रक्षा के लिए खड़ी दिखाई देती है। मोजेल की यह रक्षा भावना प्रकारांतर से उस मानवीय स्थिति का एहसास कराती है जिसमें दूसरों को देने के लिए ही अपने पास सबकुछ है, अपने लिए कुछ भी नहीं। ''आज़ादी और बँटवारे, सच और चीख़ के इस मिले-जुले रूप को फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने 'दाग-दाग उजाला' कहा है। यह वह सहर है जिसे रात ने काट खाया है :

यह दाग-दाग उजाला,यह शब गजीदा सहर
वो इंतिज़ार था जिसका, यह वो सहर तो नहीं
यह वह सहर तो नहीं, जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं-न-कहीं
फ़लक के दश्त में तारों की आखिरी मंजिल
.....
अभी गरानी-ए-शब में कमी नहीं आयी
नजात-ए-दीदा-व-दिल की घड़ी नहीं आयी
चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आयी।

संदर्भ :

1. नरेंद्र मोहन: मंटो की कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या-22
2. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण,1993, पृष्ठ संख्या-219।
3. उपर्युक्त
4. नरेंद्र मोहन- विभाजन की त्रासदी: भारतीय कथादृष्टि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या-99
5. नरेंद्र मोहन- मंटो की कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या-18
6. उपर्युक्त
7. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या-202
8. वारिस अल्वी- सआदत हसन मंटो, साहित्य अकादमी मोनोग्राफ, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2000, पृष्ठ संख्या-86
9. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या-205
10. वारिस अल्वी- सआदत हसन मंटो, साहित्य अकादमी मोनोग्राफ, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2000, पृष्ठ संख्या-86
11. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या-65
12. वारिस अल्वी- सआदत हसन मंटो, साहित्य अकादमी मोनोग्राफ, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2000, पृष्ठ संख्या-74
13. नरेंद्र मोहन- मंटो की कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या-17
14. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या-228
15. नरेंद्र मोहन- मंटो की कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या-18
16. मंटो: दस्तावेज़, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या-248
17. वारिस अल्वी- सआदत हसन मंटो, साहित्य अकादमी मोनोग्राफ, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2000, पृष्ठ संख्या-73-74
18. नरेंद्र मोहन- मंटो की कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या-103

पत्राचार का पता: हरिदेवेंद्रम कॉलोनी, फ्लैट नंबर: बी-3, गांधीनगर, अम्बिकापुर, जिला-सरगुजा, पिन-497001 (छत्तीसगढ़)

समानांतर सांप : विभाजन की त्रासदी और अज्ञेय की कविता

प्रो. सर्वेश सिंह*

यह हिंदी समाज की ही कुरीति है कि अज्ञेय को वह परदेशी भी मानती रही है। 'अंग्रेजी आंचलिकता' का कलंक उनके माथे पर अभी तक जड़ा हुआ है। लोगों ने अंतत: नहीं ही माना कि वे अपने घर वापस लौट आये हैं। आलोचक उनके 'साहित्यिक-संस्कारों' को देशी नहीं मानते। लाख प्रशंसा के बावजूद, नामवर सिंह भी एक तरह का 'सोफिस्टीकेशन' उनमे देखते ही रहे। संकट, एकबारगी, इतना जटिल हुआ कि कवि कुंवर नारायण तक को उनकी हिंदी या भारतीय पहचान के बचाव में कूदना पड़ा था। उनकी ट्रेजडी इतनी विकट कि विदेशियों ने यह कह दुत्कारा कि वे घर छोड़ नहीं पाए, और अपनों ने मुंह फेर लिया कि वे घर लौट नहीं पाए।

अज्ञेय की इस ट्रेजडी पर गंभीरता से सोचने की जरूरत है क्योंकि वे हिंदी के एक बड़े कथाकार, कवि और साहित्य चिन्तक रहे हैं।

विभाजन की त्रासदी से उपजे मानवीय संकट की गम्भीरता व व्यापकता का अनुमान आसानी से इसी बात से लगाया जा सकता है, कि अज्ञेय जैसे 'अपने से बाहर न निकलने वाले' कवि ने इस विषय पर सोलह कविताएं 'मिरगी पड़ी', 'ठांव नहीं', 'रुकेंगे तो मरेंगे', 'मानव की आंख', 'गाड़ी रुक गया', 'हमारा रक्त', 'श्रीमद्धर्मधुरंधर पंडा', 'कहती है पत्रिका', 'जीना है बन सीने का सांप', 'पक गयी खेती', 'समानांतर सांप' (सात भागों में) तथा पांच कहानियां

*आचार्य- हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
मो.- 9415435154 Email- sarveshsingh75@gmail.com

'शरणदाता', 'लेटर बक्स', 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई', '-रमंते तत्र देवता', 'बदला' लिखी हैं। सन् 194। में ही अज्ञेय ने 'शरणार्थी' नामक संग्रह में इन कविताओं और कहानियों को प्रकाशित किया था। अज्ञेय ने इसकी भूमिका में यह भी स्पष्ट किया कि इन कहानियों और कविताओं की विषयवस्तु सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं। अपने लेखकीय कौशल का प्रयोग करके उन्होंने विभाजन की त्रासदी को बहुत ही रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत लेख में विभाजन की त्रासदी के सन्दर्भ में उनकी इस ट्रेजडी को समझने की कोशिश की जाएगी। साथ ही उनकी कविता ने इस त्रासदी को किस मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है, उसका भी मूल्यांकन किया जाएगा।

अज्ञेय विभाजन की त्रासदी को करुण निगाहों से देखते हैं। 'मानव की आंख' में ऐसी घृणा सामान्यत: नहीं हो सकती, बल्कि मानव हृदय में प्रेम का भाव मुख्यत: होता है। प्रेम को अपदस्थ करके जब घृणा अपना घर बना लेती है, तो इंसानियत का क्षरण होने लगता है। मनुष्य अपनी मनुष्यता त्यागकर हिंस्र पशु हो जाता है। इसे देखकर अज्ञेय का कवि हृदय हिल गया था-

कोटरों से गिलगिली घृणा यह झांकती है।
मान लेते यह किसी शीत रक्त, जड़-दृष्टि
जल-तलवासी तेंदुए के विष नेत्र हैं

और तमजात सब जंतुओं से
मानव का वैर है
क्योंकि वह सुत है प्रकाश का -
यदि इनमें न होता यह स्थिर तप्त स्पंदन तो?

मानव से मानव की मिलती है आंख, पर
कोटरों से गिलगिली घृणा झांक जाती है! (मानव की आंख)

विभाजन की त्रासदी ने लोगों के जीवन को अस्थिर कर दिया था। कहीं पर भी ठहराव नहीं था। अपनी जान बचाने के लिए लोग दर दर भटक रहे थे। मानव जीवन के समक्ष जब अस्तित्व का ही संकट पैदा हो जाए, तो मानव गरिमा के सवाल पीछे छूट जाते हैं। अज्ञेय ने इस स्थिति को बहुत समग्रता से समेटा है। लोगों की आंकाक्षा और मन:स्थिति के बहुत ही मार्मिक चित्र उन्होंने खींचा

है। अज्ञेय के काव्य बोध को यहीं समझा जा सकता है कि वे एक स्थिति के हर पक्ष को छूते हैं उनकी नजर से कुछ भी ओझल नहीं होता। स्थूल स्थिति और मन:स्थिति को जिस तरह से वे एकमएक कर देते हैं वह उनकी अद्भुत कला है, जो अन्य किसी कवि में शायद ही देखने को मिले। शहरों और गांवों की स्थिति में अन्तर को पहचानना और हृदय और पांव की प्रतिक्रियाओं को देखना आदि महत्त्वपूर्ण है–

शहरों में कहर पड़ा है और ठांव नहीं गांव में
अंतर में खतरे के शंख बजे, दुराशा के पंख लगे पांव में
त्राहि! त्राहि! शरण! शरण!
रुकते नहीं युगल चरण
थमती नहीं भीतर कहीं गूँज रही एकसुर रटना
कैसे बचें कैसे बचें कैसे बचें कैसे बचें

आन! मान! वह तो उफान है गुरूर का –
पहली ज़रूरत है जान से चिपटना! (ठांव नहीं)

मनुष्य की 'पहली जरूरत जान से चिपटना' होकर रह जाए और 'रुकेंगे तो मरेंगे' की स्थिति हो जाए तो मानवीय संकट है। मनुष्य के सांस्कृतिक विकास व रुपान्तरण में स्थायित्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अपनी जड़ों से उखाड़े व खदेड़ दिए लोगों के समक्ष अस्तित्व का सवाल खड़ा हो जाता है। भागना उनकी नियति बन जाती है।

भागो, भागो, चाहे जिस ओर भागो
अपना नहीं है कोई, गति ही सहारा यहां –
रुकेंगे तो मरेंगे! (रुकेंगे तो मरेंगे)

विभाजन के बाद देश में जिस तरह का उन्माद दिखाई दिया उसकी तुलना अज्ञेय ने मिरगी के रोगी के साथ की है। मिरगी के रोगी की चेतना गायब हो जाती है और उसके हाथ–पैर अकड़ जाते हैं अपने कृत्यों पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं होता।

मिरगी का दौरा है
चेतना स्तिमित है

किंतु कहीं भी तो नहीं दीखती शिथिलता–
तनी नसें, कसीं मुट्ठी, भिंचे दांत, ऐंठी मांस–पेशियां–
वासना स्थगित होगी किंतु झाग झर रहा है मुंह से!

आज जाने किस हिंस्र डर ने
देश को बेखबरी में डस लिया!
संस्कृति की चेतना मुरझ गया!
मिरगी का दौरा पड़ा, इच्छा शक्ति बुझ गयी!
जीवन हुआ है रुद्ध, मूर्छना की कारा में –
गति है तो ऐंठन है, शोथ है,
मुक्ति–लब्ध राष्ट्र की जो देह होती है – लोथ है –
ओठ खिंचे, भिंचे दांतों में से पूय झाग लगे झरने!
सारा राष्ट्र मिरगी ने ग्रस लिया है! (मिरगी पड़ी)

आगे धर्म को भी वे प्रश्नांकित करते दिखाई देते हैं–
नहीं है यह धर्म, ये तो पैंतरे हैं उन दरिंदों के
रूढ़ि के नाखून पर मरजाद की मखमल चढ़ा कर
जो बिचारों पर झपट्टा मारतें हैं —
बड़े स्वार्थों की कुटिल चालें!
साथ आओ —
गिलगिले ये सांप वैरी हैं हमारे
इन्हें आज पछाड़ दो
यह मकर की तनी झिल्ली फाड़ दो
केंचुलें हैं केंचुलें हैं झाड़ दो! (समानान्तर सांप–।)

कहना न होगा, इन कविताओं में अज्ञेय करुणा के एक चरम मानवीय स्तर पर स्थित हैं। ये कवितायें उनके भाव लोक का विस्तार ही नहीं करतीं बल्कि उनकी चेतना में वैचारिक परिवर्तन भी लाती हैं। अज्ञेय के कवि मन को वे बदलती हैं। देश, धर्म, समाज, संस्कृति को समझने की उनमें एक नयी दृष्टि का भी निर्माण करतीं हैं।

आश्चर्य नहीं कि इस त्रासदी के बाद अज्ञेय का लेखन वैचारिक रूप से

बदलता है। उनकी 'सेन्स ऑफ़ प्राइवेसी' विस्तृत होती है। वे सनातन भारत बोध से जुड़ते दिखाई देते हैं। आधुनिकता उनकी निगाहों में खटकने लगती है। अज्ञेय को अंतत: नेहरुअन विचार से जोड़ा गया है जो सच नहीं। वे सनातन चेत्ता हैं, गर्व से स्वयं को हिन्दू कहते है। विभाजन के प्रति उनकी ये कवितायेँ एक विराट दार्शनिक दृश्य के समक्ष रखने से ही खुलेगीं। और वह परिदृश्य है- हिन्दू जीवन दर्शन,सनातन दृष्टि। यहाँ दूसरे के प्रति करुणा है लेकिन इस करुणा में एक गहरा संकेत है जो तब खुलेगा जब अज्ञेय के धर्म विमर्श या सभ्यता विमर्श को पढ़ेगें। संवत्सर में वे लिखते हैं -

> *'' जिसको हम हिन्दू धर्म कहते हैं उसमें जो बुनियादी तत्त्व है वह यह कि इसमें बात का महत्त्व नहीं है कि आप क्या मानते हैं बल्कि आप समाज में कैसे रहते हैं। लेकिन इस्लाम और मसीही धर्म में यह स्थिति नहीं रही। वहाँ महत्त्व का यह सवाल होता है कि आप क्या मानते हैं।''*

भारतीय 'धर्म' और पश्चिम का 'रेलीजन'- दोनों दो भिन्न जीवन दृष्टि का प्रतिबिम्बन करते हैं। अज्ञेय संकेत करते हैं- 'धर्म' धारण करता है, 'रेलीजन' बाँधता है- दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति ही इस भेद को स्पष्ट कर देती है।.... भारतीय दृष्टि से संस्कृति के क्षेत्र में धार्मिक बनाम लौकिक जैसा कोई विरोध सम्बन्ध बनता ही नहीं था। दूसरी ओर पश्चिम के चिन्तन में आरम्भ से ही रेलीजियस बनाम सेक्सुलर अथवा सेक्रेड बनाम प्रौफैन का बुनियादी द्वन्द्व रहा। 22 हिन्दू धर्म की दुर्लभ विशेषता है 'एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति'। इसकी यही विशेषता इसे अन्य मतों से अलग करती है। अज्ञेय की दृष्टि इस वैशिष्ट्य को ढूँढ़ लेती है-

> *''जहाँ इस्लाम, इंसाइयत और यहूदियत की इमारत एकान्तवादी मान्यता पर बनाई गई है वहीं हिन्दू धर्म की इमारत किसी मत-विश्वास या एकान्तवादी मान्यता पर नहीं बनाई गई है बल्कि सृष्टिमात्र के सम्बन्ध पर आधारित है।'' (शाश्वती)*

हिन्दू धर्म मत या विश्वास के आधार पर अपने-पराए का भेद नहीं करता जबकि इस्लाम और ईसाइयत में यह भेद विद्यमान है-

> *''दूसरे धर्मवत (ईसाई एवं इस्लाम) सबसे पहले अपने आप-पास एक बाड़ा बनाते हैं, जो उसके भीतर हैं वे अपने हैं और बाक़ी 'ग़ैर'*

हैं। कभी-कभी शत्रु माने जाते हैं लेकिन हिन्दू जीवन दृष्टि ऐसे बाड़े नहीं बनाती और किसी को ग़ैर नहीं मानती। मत-विश्वास के आधार पर बाड़े नहीं बनाती है।''

इसी दर्शन के साथ उनका भाषा बोध भी बदलता है। शाश्वती संग्रह में इसे देखा जा सकता है। हिंदी साहित्य और उसकी भाषा से अंतर-संदर्भित करते वे इसे दो धारणाओं में प्रकट करते हैं। पहला, एक संस्कृति का काल-बोध, जो अदृश्य रूप से भाषा के आंतरिक स्वरुप को प्रभावित करता है। वे मानते हैं कि भारतीय संस्कृति की काल प्रतीत,ऐतिहासिक काल-क्रम की पश्चिमी अवधारणा से बहुत अलग रही है,जिसने उसकी भाषाओँ पर भी गहरी छाप डाली है। इस प्रसंग में वे शाश्वती में लिखते है-

''ऐतिहासिक काल को पूरी तरह मान लेने से भाषा में वाक्य की अवस्थिति में एक जड़ता,लचीलेपन की कमी,बल्कि उसका परित्याग आया है। आवर्ती काल के बोध के साथ हमारी भाषा में एक लचीलापन था,जिसे छोड़ने को हम लाचार हो गए-एक निर्विकल्प अन्विति से तनिक सा व्यतिक्रम हमें खटकने लगा। इस मामले में नयी कविता की अन्विति उससे पहले से कितनी कम लचीली,कितनी अधिक जड़ हो गयी है-क्या इसका कारण यह नहीं है कि इसमें काल की प्रतीत बड़ी कठोरता के साथ अनुक्रमिकता के साथ बंधी है?''

काल बोध के अलावा दूसरा तत्त्व है- मनुष्य का प्रकृति से सम्बन्ध। उनके अनुसार जिन समाजों में मनुष्य और प्रकृति दो विरोधी सत्ताएं नहीं हैं, जहाँ उनके परस्पर सम्बन्ध अधिक आत्मीय, निकट और नैसर्गिक होते हैं, वहां अनुभूति और चिंतन की भाषा में अन्तराल अधिक नहीं होता और उसकी मिथकीय संवेदनाएं अधिक समृद्ध होती हैं। ऐसे समाजों में भाषा अपने मूल स्वभाव में रूपकात्मक होती है। उनके मत में भारतीय भाषाओं का विकास बिम्बों और प्रतीकों के प्रभामंडल में हुआ तथा इसका कारण मनुष्य और प्रकृति के बीच यही पुनीत साहचर्य था। पर आधुनिकता के आक्रमण ने इसे क्षत-विक्षत किया। 'रीजन व रेसनालिटी' का प्रवेश हुआ जिसने भाषा के साथ-साथ साहित्यिक विधाओं का रूप-विन्यास बदल दिया। कथा से जातीय बिम्ब व मिथक गायब होने लगे। कल्पना का योगदान घटने लगा। हम भूलने लगे की भाषा का इतिहास

ही नहीं भूगोल भी होता है। भारतीय भाषाओं में यदि गंगा, सरस्वती, हिमालय आदि के बिम्ब इतने गरमाई व गहराई से हमारी काव्यात्मक भावनाओं को झिझोंड़ते हैं तो उसका कारण यह है कि ये केवल प्रकृति के उपादान न होकर हमारी पौराणिक स्मृतियों के वाहक भी हैं,जो किसी समय भारतियों को उनके देवी–देवताओं से जोड़ते थे,उनके लौकिक परिवेश को एक तरह की अलौकिक पवित्रता प्रदान करते थे। भारत शब्द का अर्थ ही उसका सत्य था–आलोक से घिरा भूमंडल। उनके सुन्दर वाक्य हैं– ''भारत को देवभूमि और संस्कृत को देवभाषा कहने के पीछे भूमि और भाषा के बीच का शाश्वत और पुनीत सम्बन्ध ही ध्वनित होता है।''

कहना न होगा कि भाषा और देश का यह संबंध अज्ञेय को हिंदी भाषा की आत्मा तक ले गया और यहीं विभाजन की दरार के असली सूत्र पकड़ में आने लगे। हिंदी की लोकतांत्रिकता को तथाकथित गंगा जमुनी संस्कृति या सामासिक संस्कृति कैसे नष्ट करने लगी इसका उन्होंने संज्ञान लिया है। हिंदी में बेतरह उर्दू की घुलावट औत तत्सम की लगातार उपेक्षा केवल भाषा का ही नहीं बल्कि सभ्यता एवं संस्कृति के संकट बनते हैं। विभाजन के धार्मिक बीज यहीं हैं। आत्मनेपद में उर्दू को लेकर वे लिखते हैं –

> *''उर्दू बड़ी नफीस जुबान है लेकिन उर्दू की नफासत की बात करते वक्त कुछ बातें और भी याद रखने की है नफासत भाषा का आत्यंतिक गुण नहीं है एक सामाजिक गुण है अर्थात कोई भी भाषा उसे पा सकती है अगर उसे भाषा समाज में उसका इतना ऊंचा मूल्य हो और अगर वह समाज इसलिए उसे दिशा में विकास करें लेकिन नाद गुण आत्यंतिक है। हिंदी का नाद सौंदर्य उर्दू में नहीं है कभी नहीं रहा ना उसे दिशा में उसने विशेष उन्नति की।''*

जाहिर है विभाजन के प्रसंग में उनके भाषा सिद्धांत को समझना होगा। इसके लिए आजादी के बाद सेक्युलर भाषा की वामपंथी राजनीति को समझना होगा। साथ ही अज्ञेय द्वारा उसके विरोध को भी। तत्सम को बहिस्कृत करने एवं हिंदी में उर्दू प्रधानता की प्रवृत्ति को समझना होगा। नामवर सिंह इसी तत्सम के कारण अज्ञेय का बायकाट करते हैं एवं उन्हें मुक्तिबोध से हीनतर ठहराते हैं। यहाँ तक कि उन्हें विदेशी भावबोध का लेखक भी कहा जाने लगता है।

कुलमिलाकर, विभाजन की त्रासदी ने अज्ञेय को झकझोरा था। शरणार्थी संग्रह के बाद अज्ञेय बदलते हैं। उनकी वैचारिकी यूटर्न लेती है। निर्मल वर्मा ने संभवतः इसी अज्ञेय में 'आधुनिक भावबोध की पीड़ा' को देखा है। इस आलोक में, अज्ञेय के और गहन मूल्यांकन की आज आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. अज्ञेय : भवंती, राजपाल एंड संज, दिल्ली
2. अज्ञेय : अतंरा, राजपाल एंड संज, दिल्ली
3. अज्ञेय : शाश्वती, राजपाल एंड संज, दिल्ली
4. अज्ञेय : आत्मनेपद, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
5. अज्ञेय : संवत्सर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
6. अज्ञेय : शरणार्थी, शारदा प्रकाशन, बनारस

मुस्लिम महिलायें व विभाजन की त्रासदीः आतिया हुसैन के Sunlight On The Broken Column के विशेष संदर्भ में

डॉ शिल्पी दूदवाल *

सार

1947 में भारत के विभाजन की त्रासदी उन ऐतिहासिक घाव में से एक है जिसका दर्द साहित्यकारों की लेखनी से नित रिसता रहा है और विभाजन के दौरान हुई साम्प्रदायिक हिंसा में सदियों से संजोकर रखे गए विभिन्न सम्प्रदायों के बीच पनपे साम्प्रदायिक सौहार्द के बह जाने को भी कभी यथार्थ वृतांत के माध्यम से तो कभी कहानियों व उपन्यासों के माध्यम से लिखा है। ऐसा ही एक उपन्यास आतिया हुसैन की रचना Sunlight On The Broken Column है जिसे हुसैन ने सन 1961 में अंग्रेजी भाषा में लिखा था। यह उपन्यास अर्ध-आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है जिसे हुसैन ने अपने स्वयं के अनुभवों को साँझा कर और अधिक जीवंत कर दिया है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य इस रचना में उल्लेखित स्वतंत्रता के पूर्व के समाज के पश्चिमी आचार-व्यवहार से प्रभावित सामंतवादी मुस्लिम तबके के दोहरे व्यवहार की नारीवादी आलोचना करना है साथ ही देश के विभाजन के दौर में लोगों के मन में आयी बदले की भावना व नित बिगड़ते साम्प्रदायिक सौहार्द की छवि को प्रस्तुत करते हुए विभाजन की त्रासदी के दर्द का चित्रण करना है साथ ही उन स्थलों यथा लखनऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में विभाजन

* Assistant Professor, History
Govt. College, Kudi Bhagtasni, Jodhpur, Govt. of Rasjasthan

के प्रभावों का अध्ययन करना है, जहाँ की विभाजन के परिणामस्वरूप पंजाब, बंगाल की तरह भूमि का बँटवारा नहीं हुआ था। इसके बावजूद भी ये क्षेत्र बढ़ती साम्प्रदायिक गतिविधियों, हिंसा व उसके भयावह दौर के साक्षी रहे हैं व विभाजन के पूर्व व पश्चात सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों में आए हुए परिवर्तन के प्रति रचनाकार के हृदय में उभरी आंतरिक पीड़ा को उजागर करना है

मुख्य शब्द- विभाजन, मुसलमान, सांप्रदायिकता, स्त्री

विषय परिचय

1947 में भारत का दो भागों में विभाजन जिससे दो नये देश भारत व पाकिस्तान का जन्म हुआ, संभवत: भारत के इतिहास का सबसे निर्णायक ऐतिहासिक क्षण है जिसने दक्षिणी एशिया के भूगोल को हमेशा के लिये बदलकर रख दिया। व विभाजित भारत व पाकिस्तान में रहने वाले लोगों के इतिहास वर्तमान व भविष्य को सदैव के लिये परिवर्तित करके रख दिया है। जिसका प्रभाव कहीं न कहीं आज भी लोगों के अंतस में गहराई से बैठा है। परन्तु इस घटना का प्रभाव इतिहास, भूगोल या राजनीति तक ही सीमित नहीं है। बल्कि सच मायनों में ये विभाजन भारत में एक ऐसी विध्वंसक त्रासदी रही जिसने न केवल एक देश से दूसरे देश में विस्थापित लोगों की कतार लगा दी बल्कि इन विस्थापित लोगों को अपने गंतव्य तक पहुंचने तक असहनीय अमानवीय व्यवहार का सामना करने को मजबूर कर दिया। जो घाव विभाजन से मिला उस घाव का दर्द इतने वर्षों पश्चात् भी कभी न कभी रह हर कर रिसता है और उस कभी न भर सकने वाले घाव की दास्तान बयान करता है।

राष्ट्र के विभाजन से भारत व पाकिस्तान के लगभग सभी क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है यद्यपि यह प्रभाव पंजाब व बंगाल पर अधिक पड़ा क्योंकि ये क्षेत्र भारत के सीमा क्षेत्रों पर अवस्थित थे। विभाजन के उद्घोषणा के साथ ही पूर्वी पंजाब, पश्चिमी पंजाब, सिंध, ढाका, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, दिल्ली इन सभी स्थानों पर अराजकता की स्थिति फैल गई व धार्मिक आधार पर हिन्दू व मुस्लिमों के मध्य भीषण दंगे, आगजनी, मारकाट, हत्यायें, लूटपाट आदि घटनायें हुई। इन घटनाओं की स्मृतियों को आधार बनाकर विभिन्न भाषाओं

के साहित्यकारों ने साहित्य की रचना की जिसमें विभिन्न स्वरूपों में विभाजन के परिणामस्वरूप मिली त्रासदीपूर्ण घटनाओं को उकेरा गया है। क्योंकि सांप्रदायिक परिवेश से व्यथित साहित्यकार अपने आस-पास में घटित होने वाली घटनाओं को अपने साहित्य में समाहित कर उन घटनाओं को एक निश्चित आकार प्रदान करता है। वह विभाजन के पश्चात् चारों और फैले विध्वंसक वातावरण, अमानुषिक नरसंहार व तर्कहीन बर्बरता का साक्षी रहा है, अत: साहित्यकार ने अपनी कोमल संवेदनाओं व गहरी अनुभूति के साथ अभिव्यक्त किया है व व्यक्ति व साम्प्रदायिक परिवेश के मध्य नित प्रबल होते संघर्ष का चित्रण किया है।

अतिया हुसैन द्वारा रचित प्रस्तुत Sunlight On The Broken Column भी विभाजन की त्रासदी को बयान करता एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जो कि 1961 में हुसैन द्वारा लिखा गया है। उपन्यास में मुस्लिम सांमती जीवन शहरी वातावरण व आस-पास के राजनीतिक वातावरण को व्यक्त करने के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया गया है।

आतिया हुसैन का जन्म 1913 में लखनऊ के मुस्लिम तालुकदार परिवार में हुआ था जहां उनकी शिक्षा अंग्रेजी के साथ-साथ फारसी, उर्दू, अरबी भाषाओं में हुई। 1930 में वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व प्रगतिशील लेखक संघ से प्रभावित होकर पत्रकार, लघु कहानीकार के रूप में उभरी। हुसैन का यह उपन्यास विभाजन के दौर के स्वयं के अनुभव को साझा करते हुए सविनय अवज्ञा आन्दोलन से 1952 (हुसैन, 273) तक के दौर का वर्णन करता है। वस्तुत: यही वो समय था जब देश में स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर था इसीलिये उपन्यास इस समय के राजनीतिक आन्दोलन व बिगड़ते हुए साम्प्रदायिक वातावरण में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों का चित्रण प्रस्तुत करता है।

उपन्यास के अनुसार इसका शीर्षक टी. एस. एलीयट की कविता दी हॉलो मेन से लिया गया है जिसमें कवि प्रथम विश्व युद्ध के बाद की निराशाजनक स्थिति को चित्रित करता है व युद्ध के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक विनाश पर दु:ख व्यक्त करते हुए कहता है इस दुनिया में मेरी आँखे एक टूटे हुए स्तम्भ पर सूर्य की किरणो को देखती है, एक झूलते पेड़ को देखती है और हवा के गीत में लोगों की आवाजें है परंतु यह सब कुछ किसी लुप्त होते तारे की तरह बहुत दूर प्रतीत होता है इस रूप में कविता लोगों के आध्यात्मिक रूप से नष्ट होने का वर्णन करता है साथ ही इस हिंसा के वातावरण में संचारित उसके भय

और फैली निराशा की ओर इंगित करता है (हुसैन, 2019) इसी प्रकार उपन्यास भी विभाजन की त्रासदी का वर्णन कर रहा है जिसके अनुसार औपनिवेशिक शक्ति से सूर्य के ओज के समान प्राप्त स्वतंत्रता की खुशी, विभाजन में मिली टूटन व बिखराव में कही को गयी है और जो कुछ शेष रहा है वह आशा का संचार नहीं करता बल्कि दोनो देशों को द्वेष के अंधियारे में धकेल रहा है और ये अंधियारा धार्मिक उन्माद में मानवता व हृदय से जुड़े संबंधों को भी लील रहा है साथ ही पुरातन सामंती व्यवस्था ध्वस्त हो रही है और नई व्यवस्था जो देश की स्वतंत्रता व विभाजन के परिणामस्वरूप उभरी है, के प्रति संशय को भी प्रस्तुत करता है।

उपन्यास की संक्षिप्त कथा

इस उपन्यास में मुख्य चार भाग है इसमें नायिका लैला जो अपने माता-पिता को खो चुकी है और अपने तालुकदार दादा बाबाजान के साथ अपनी बुआ अबिदा के संरक्षण में रहती है।

उपन्यास के प्रथम भाग में परिवार के मुखिया बाबा जान मरणासन्न स्थिति में है। कहानी में लैला बताती है कि बाबा जान की मृत्यु के पश्चात् पूरा परिवार अपने पैतृक आवास हसनपुर जाते है ताकि बाबा जान का अंतिम क्रियाक्रम कर सके। बाबा जान की मृत्यु के पश्चात् लैला के चाचा हामिद घर के मुखिया बनते है। लैला की बुआ आबिदा व उसकी फुफेरी बहन जाहरा दोनों का विवाह कर दिया जाता है लैला को उसके पिता की इच्छानुसार उच्च शिक्षा की अनुमति प्रदान कर दी जाती है।

उपन्यास के द्वितीय भाग में लैला के मित्रों से परिचित करवाया जाता है यही पर वह अमीर हुसैन से भी परिचित होती है इसी भाग में गांधीजी के आन्दोलन का उल्लेख होता है व लैला को राजनीति में भाग न लेने की सलाह दी जाती है।

उपन्यास के तृतीय भाग में हामिद चाचा के दोनों बेटे सलीम व केमाल विदेश से पढ़ाई करके स्वदेश लौटते है हामिद 1937 के आम चुनावों में भाग लेने की सारी तैयारियां करते है। अत: चुनाव जीत जाते हैं उनके पुत्र सलीम का झुकाव मुस्लिम लीग की और अधिक है। इसी दौरान लैला अपने परिवार की आकांक्षाओं के विपरीत अमीर हुसैन से विवाह करती है।

उपन्यास के चौथे अर्थात अंतिम भाग में लैला चौदह वर्ष के अंतराल के

पश्चात् वापस से आशियाना में आती है विभाजन की कहानी बयाँ करता आशियाना अब बिकने वाला है। लैला द्वितीय विश्वयुद्ध में अपने पति अमीर हुसैन को खो चुकी है। लैला घर में बीते पलों को याद करती है इतने में असद लैला को बुलाने आता है शायद खुशनुमा जीवन में ले जाने हेतु।

मुस्लिम महिलायें व विभाजन

उपन्यास में सामंतवादी मुस्लिम समाज पितृसत्तात्मक होने के साथ-साथ लिंग आधारित भेदभाव से ग्रस्त दिखाया गया है। मुस्लिम स्त्रियों को इस पितृसत्तात्मक समाज में अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत रहना पड़ा है घर के पुरुषों का घर की स्त्रियों पर पूर्ण नियंत्रण दिखाया गया है, ऐसे वातावरण में उनकी स्वयं की इच्छा, भावनाओं का कोई स्थान नहीं है यह रचना प्रमुख नायिका लैला के माध्यम से स्वतंत्रता के पूर्व के सामंतवादी मुस्लिम तबके के व्यवहार की नारीवादी आलोचना करती है जिसमें नायिका स्वयं निर्णय लेने व उसके अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता की आशा रखती है। उपन्यास के अनुसार मुसलमान महिलाओं व विभाजन के दौर में उनके जीवन में आने वाले प्रभावों को निम्न बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

दो दुनिया के मध्य द्वन्द

प्रस्तुत उपन्यास ऐसे सामंती जीवन का चित्रण करता है जिसमें स्त्रियों का जीवन घर की चार-दीवारी से भी संकुचित घर के एक कोने जिसे जनाना कहा जाता है, तक ही सीमित था, जो कि बाहरी दुनिया से विरत, परिवार की परंपराओं का निर्वहन व घर की स्त्रियों के परंपरवादी स्त्रियोचित व्यवहार को पोषित करने का उत्तरदायित्व सम्भाले हुए था। परंतु इस जनाना की महत्त्वपूर्ण सदस्या प्रमुख नायिका लैला अंग्रेजी भाषा में शिक्षित पढ़ी-लिखी स्त्री है, वह तालुकदार परिवार से सम्बन्धित है, स्वयं आतिया हुसैन की तरह ही दो तरह की दुनिया के मध्य में झुंझती दिखाई देती है एक समाज जिसका प्रतिनिधित्व जनाना करता हैए परंपरावादी व मुस्लिम जीवन के मूल्यों से ओत-प्रोत है दूसरी और नित परिवर्तित होता आधुनिक समाज अपनी इच्छा से जीवन जीने की स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करता है। वह कहती है कि I felt I lived in two worlds : an observer in an outside world, and solitary in my own (हुसैन, 124) लैला इन दो विपरित वातावरणों के मध्य अपने अस्तित्व के लिये निरंतर संघर्ष करती रहती

है। लैला की शिक्षा ने उसे अधिक तर्कवादी व अपनी उम्र से अधिक परिपक्व बना दिया यह शिक्षा उसे अपने उच्च वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण प्राप्त उच्च स्थिति के प्रति जागरूक करती है व साथ ही उसे लिंग, वर्ग के आधार पर होने वाले शोषण के प्रति अधिक संवेदनशील बनाती है।

उसकी बुआ आबिदा उसके बिल्कुल विपरीत उस पुरातन समाज का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें स्त्रियों से आज्ञाकारिता, किसी भी परिस्थिति का विरोध ना करना ही स्त्री का उत्तम गुण माना जाता है। आबिदा अपने प्रति होते तमाम अत्याचारों को बिना कुछ कहे सहज भाव से स्वीकार कर लेती है साथ ही वह लैला से भी परिवार के मान-सम्मान की दुहाई दे कर स्त्रियोचित व्यवहार करने की माँग करती है। दूसरी और लैला रूढ़िवादी मुस्लिम परिवार से सम्बन्धित होने के बावजूद भी प्रेम, समानता व स्वतंत्रता में विश्वास रखती है वह घर की पुरुष केन्द्रित व्यवस्था की निरंतर आलोचना करती है उसकी यही सोच उसे परिवार के अन्य स्त्रियों से अलग करती है। परंपरवादी परिवार की अपेक्षा के विपरीत विवाह जैसे विषय में भी वह स्वयं की राय रखती है वह मानती है कि I won't be paired off like an animal (हुसैन: 29)और अंतत: लैला अपने परिवार की इच्छा के विरुद्ध जाकर अपने पसंद के जीवन साथी का चुनाव करती है न कि अन्य स्त्रियों की तरह परिवार द्वारा चयनित वर को ही अबिदा बुआ की तरह स्वीकार कर लेती है। लैला वास्तव में युवा मुसलमान स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में लिंग सम्बन्धों के पुर्नगठन की मांग करती है।

पाबंदियों के पश्चात भी राजनीतिक समझ

विभाजन से पूर्व का दौर मुस्लिम लीग के उत्थान का समय था यह एक ऐसी पार्टी थी, जो विशेष रूप से मुसलमानो के हितो के लिए आवाज उठाती थी। और जैसे ही धर्म व राजनीति का सम्मिश्रण हुआ देश में सांप्रदायिकता का जहर हवा में घुलने लगा व विभाजन की बातें भी लोगों के मन में उठने लगी। ऐसे समय में मुस्लिम सामंती स्त्रियाँ जो कि जनाने की दीवारों में सीमित थी, के लिए राजनीतिक सहभागिता लगभग निषेध थी। घर के पुरुष रक्षक की भाँति दूषित साम्प्रदायिक वातावरण में भी स्त्रियाँ को समाज में होने वाली राजनीतिक गतिविधियों से अछूता रखते थे।

यह दौर उत्तेजना और अविश्वास का दौर था जिसमें छोटी-छोटी बातों में हिंदू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे, परंतु मुस्लिम स्त्रियों के किसी भी प्रकार से राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की मनाही है व चाहे तो भी अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार राजनीति का हिस्सा नही हो सकती थी। यह तथ्य कई बार उपन्यास में परिलक्षित होता है जैसे मुर्हरम में ताजिया यात्रा के कार्यक्रम में शामिल होने की योजना बनाई जाती है परन्तु चाचा मोहसिन के हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने की आशंका के चलते घर की स्त्रियों को मनाकर दिया जाता है जबकि They had wanted to see the procession, to get away from the house (हुसैन, 71) ताकि कुछ समय के लिए ही सही घर के बंदिशो भरे वातावरण से बाहर निकल सके परन्तु उनके घर के अन्य पुरुष जैसे असद व जाहिद ताजिया की यात्रा देखने जाते है यद्यपि मोहसिन चाचा की आशंका के अनुरूप ही हिन्दू मुस्लिम दंगे होते है जिसमें असद चोटिल हो जाता है।

यद्यपि उच्च वर्गीय सामंतवादी परिवार की लैला को राजनीति से अलग ही रखा जाता है परन्तु विभाजन के पूर्व के जीवन में आने वाले बदलावों को उसने महसूस किया था जब उसके हामिद चाचा बदलते राजनीतिक वातावरण में खुद को ढालने का प्रयास कर रहे थे उनकी चुनावों के प्रति शंका और बैचेनी की लैला प्रत्यक्षदर्शी रही थी। यद्यपि वे चुनाव जीत जाते है परन्तु परिवर्तित राजनीतिक शक्तियां जो कि सामंती विशेषाधिकारों के विरुद्ध खड़ी थी, उसका सामना करने में असफल हो रहे थे। जिस सामंती व्यवस्था के हामिद चाचा वंशज व पोषक रहे थे वह व्यवस्था धीरे-धीरे बिखर रही थी और इसके साथ ही बिखर रहा था परिवार विचारधारा के आधार पर।

लैला का विभाजन के दौरान भारत में रहने का फैसला विभिन्न प्रतिबंधो के बावजूद भी उसकी परिपक्व होती राजनीतिक समझ का परिणाम है नीधम के अनुसार लैला की धर्म निरपेक्ष की भावना असद के प्रति सम्मान है (नीधम:1993,107) जबकि काजमी का मानना है कि लैला अपनी राजनीतिक समझ के आधार ही पर भारत में रहने के पक्ष में थी इसका कारण उसकी कट्टर इस्लामिक मूल्यों धार्मिक विश्वासों के प्रति अस्वीकारिता व धर्म निरपेक्ष देशप्रेम की भावना है (काजमी:2022)

विभाजन से परिवार का बिखराव

यह उपन्यास देश के विभाजन के पश्चात लोगों के मन में आयी बदले की भावना व नित बिगड़ते साम्प्रदायिक सौहार्द की छवि प्रस्तुत करता है साथ ही यह सलीम नामक पात्र के माध्यम से विभाजन पश्चात के नए भारत में जिसमें मुसलमान अल्पमत में होंगे, बहुमत के शासन के प्रति संशय प्रदर्शित किया गया है व नया देश जो की इस्लामिक मूल्यों पर निर्मित हो रहा है में मुसलमानों में लिए सुरक्षा व स्वतंत्रता के प्रति आशान्वित दिखाया गया है इससे इतर इसी रचना में कुछ प्रमुख पात्र जैसे केमाल, असद का भी चित्रण है जिन्हें भारत की सामाजिक विविधता पर अनन्य विश्वास है और जो विभाजन के दौर में भी धर्म के उन्मांद से विरत रहते हुए अपने पूर्वजों की भूमि को नहीं छोड़ने का निर्णय लेकर देश की सेवा करते है।

हामिद चाचा का पुत्र सलीम यह जानते हुए भी कि अंग्रेज हिन्दू–मुसलमानों में फूट डलवाना चाहते है (हुसैन:255) इसके उपरांत भी वह मुस्लिम लीग के पक्ष को उचित मानता है साथ ही वह भारत के विभाजन को ही हिन्दू–मुस्लिम समस्या का अंतिम समाधान मानता है। उसकी पत्नी नादिरा यद्यपि प्रारम्भ से ही अपने धार्मिक विश्वासों के प्रति अधिक संवेदनशील थी व इस मत में विश्वास रखती थी कि मुसलमानों को अपनी धार्मिक विरासत को सुरक्षित रखना चाहिये (हुसैन:125) वह भी नये देश में अल्पसंख्यक मुसलमानों के हितों के प्रति असुरक्षा व संदेह के भाव से ग्रस्त होकर देश के विभाजन के पक्ष में थी।

सलीम का ही भाई केमाल देश में अनन्य विश्वास रखता है और कहता है ''This is my country. I belong to it. I love it- that is all, one does not bargain'' (हुसैन:287) उसका भाई सलीम उसे आगाह करता है कि भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक होंगे और उसे मुसलमान होने के कारण संदेह पूर्वाग्रह और यहां तक नफरत को भी सहन करना होगा परन्तु कमाल उसे बोलता है। I believe in my country, I have to fight for what I believe in it (हुसैन:287) जब केमाल भूमि के प्रति वफादारी की बात करता है तब नादिरा उसे टोकती है और उसे धर्म के प्रति वफादारी की बात कहती है, उसका विश्वास है कि हमें एक ऐसे पाकिस्तान का निर्माण करना है जिसमें सभी मुसलमान सुरक्षा व स्वतंत्रता से रह पाये (हुसैन:288) लैला यद्यपि केमाल की बातों से पूर्ण रूप से सहमत थी वह भारत में ही रहने के पक्ष में थी पर धार्मिक विश्वासों पर तर्क की अनुपयोगिता वो बहुत पहले जान चुकी थी इसी लिये इन बेतुक तर्कों में

नही उलझना चाहती थी अत: सलीम व नादिरा पाकिस्तान चले जाते है और केमाल, लैला, असद यही भारत में रह जाते है।

लैला की चाची सायरा जिसने अपने पति की इच्छानुरूप विदेशी सभ्यता का लबादा ओढ़ लिया था वह भी धीरे-धीरे बदलती परिस्थितियों में कमजोर और असहाय हो जाती है हामिद चाचा की 1946 के आस-पास मृत्यु हो जाती है जिससे परिवार में बिखराव आने लगता है मुस्लिम लीग के प्रभाव में पाकिस्तान का पक्षधर हो जाता है व अत: सलीम परिवार सहित पाकिस्तान चला जाता है व उनका दूसरा पुत्र केमाल भारत में ही रहता है सलीम को, पाकिस्तान चले जाने के कारण न केवल भारत में आने में अत्यधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है बल्कि उसके हिस्से की सम्पति पर भी अत्यधिक संकट आ जाता है इसी कारण से पैतृक आवास आशियाना को बेचना पड़ता है सायरा जिन्होंने सामंती जीवन के ऐशो-आराम को बखूबी जिया था अब विभाजन के इस नफरती दौर में अपने उच्च वर्गीय स्थिति के खो जाने व परिवार के बिखराव ने उन्हें एकदम तर्कहीन कर दिया था। इस प्रकार उपन्यास प्रभावी ढंग से विभाजन के अविस्मरणीय ऐतिहासिक क्षण को चित्रित करता है जो परिवार को राजनीतिक आधार पर विभाजित कर देता है।

नए अवसर व द्वन्दरहित स्त्रियाँ

उपन्यास में कई ऐसी स्त्रियाँ भी है जिन्हें किसी द्वन्द का अनुभव नहीं था। लैला की बहन जाहरा जिसकी परवरिश इस्लामिक तौर-तरीको से हुई थी समयानुसार निर्धारित जीवन शैली में ढल जाती थी जैसे बाबाजान के समय में एक आज्ञाकारी पर्दा नशीन लड़की के रूप में तो निकाह के पश्चात पति की इच्छानुसार आधुनिक स्त्री के रूप में। उनकी स्वयं की इच्छा का कोई स्थान नही था। वह लैला की तरह खुद के अस्तित्व के संकट से नही जूंझ रही थी। क्यूँकि उसमें ये अहसास था ही नहीं कि उसका अपना भी कोई अस्तित्व है। लैला से इतर उसे जैसा करने का कहा जाता था वह वैसा करके ही अपनी खुशियां ढूंढ़ लेती है। विवाह उसके लिए एक सम्बंध मात्र ही नहीं था बल्कि उसके लिए वह पारिवारिक बंदिशो से निकलने का जरिया था जिसके सहारे वो ना केवल अच्छे कपड़े, गहने पहन सकती थी बल्कि विवाहित स्त्री के रूप में अधिक स्वतंत्रता का उपभोग कर

सकती थी इसलिए जब उसका पति नासिर पाकिस्तान में रहने का चुनाव करता है तो वो भी अपनी जन्म भूमि को आसानी से छोड़कर पाकिस्तान में बस जाती है। यद्यपि उसकी माता माजिदा भारत में ही रहती है उनके मरणासन्न होने की सूचना मिलने पर जाहरा भारत आती है परन्तु नवनिर्मित दोनों देशों में व्याप्त संदेह के वातावरण में एक देश से दूसरे देश में आना भी आसान नही था साथ ही जाहरा मानती है कि बार- बार भारत आने से उसके पति के कैरियर पर विपरित प्रभाव पड़ सकता था इसलिये वह कम ही भारत आती है।

लैला की हसनपुर में रहने वाली दूर की गरीब रिश्तेदार जैनब पाकिस्तान चले जाती है और नई आशाओं से पल्लवित प्रफुल्लित नये देश में विकास के अवसर प्राप्त करती है जैनव का पति पाकिस्तान की मंत्रालय में क्लर्क होता है जिसे अमेरिका में पाकिस्तानी दूतावास में नियुक्त किया जाता है इस तरह नया देश कई लोगों के लिये नये अवसर भी लेकर आया और साधारण सी दिखने वाली गरीब जैनब अब अपने पति के साथ अमेरिका जा रही है।

विभाजन में साम्प्रदायिक सौहार्द

विभाजन का समय जहाँ साम्प्रदायिकता से तार- तार होते समाज को प्रदर्शित करता है वही यह समय साम्प्रदायिक सौहार्द के उदाहरणों से भी अछूता नहीं हैए लैला विभाजन के दौर के वीभत्स कृत्यों हिंसा, हत्यायें, बलात्कार इत्यादि से पीड़ित लोगों की पीड़ा से पूरी तरह से वाकिफ है। क्योंकि उसने वो दौर अपनी आंखों से देखा था, जब लोग हिंसा से भयभीत होकर घाटियों को छोड़कर ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों में चले गये थे, जब मुसलमानों के घरों को चिन्हित किया जा रहा था। परन्तु इसी दौर में जब हिन्दू मुस्लिम एक दूसरे के प्रति शंकित थे उस दौर में भी कुछ लोगों ने मानवीयता का साथ नही छोड़ा था, लैला की सखी, सीता ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए लैला और उसकी बच्ची को अपने घर में सुरक्षित स्थान पर रखा। (हुसैन:304) यहां तक कि उनका दोस्त रणजीत विभाजन में मची हिंसा की खबर सुनकर उनकी सुरक्षा के लिये आगे आता है, लैला का विश्वास है कि जिन लोगों के पास सीता, रणजीत जैसे लोग नही थे उन लोगों को भी हिन्दूओं के द्वारा हिंसा से बचाया गया, यद्यपि हिन्दुओं का भय दिखाकर ही नये देश पाकिस्तान का निर्माण हुआ है। लैला कहती है Do you know what responsibility and duty meant? To stop the murderer

mob at any cost even if it meant shooting people of their own religion (हुसैन: 304) धार्मिक उन्माद व उत्तेजना के इस भयावह दौर में भी लैला धर्म से भी पहले जिम्मेदारी व कर्तव्य को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है।

लैला और विभाजन

विभाजन के बाद का दौर बिलकुल परिवर्तित है जो कि स्वतंत्र देश में बिखरती पुरातन सामंती व्यवस्था, सामंती विशेषाधिकारों का पतन, नए सत्ता के केंद्रो की स्थापना इत्यादि का द्योतक है। देश में राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तित हो चुकी है देश एक ऐसे उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है जहाँ कुछ भी स्थायी नहीं प्रतीत हो रहा है विभाजन के कारण धन की हानि होने के साथ-साथ भावनाओं को अत्यधिक चोट पहुँची थी क्यूँकि अब ना ही घर रहा और ना ही परिवार, सब कुछ बिखर गया है। और जो कुछ था वह अब यादों का ही हिस्सा है हकीकत का नहीं, जिन्हें अंतिम बार संजोने के लिए ही चोदह वर्ष पश्चात लैला वापस अपने पैतृक आवास आशियाना में आती है। लैला विभाजन के कारण परिवार के बिखरने से व पुरातन सामंती व्यवस्था जिसकी वह अनन्य हिस्सा रही थी, के बिखरने से व्यथित है। परंतु विभाजन ने पूर्व व पश्चात की लैला में बहुत अंतर आ गया है वो दो दुनिया के द्वन्द में जुंझने वाली लैला नहीं रही बल्कि अब वह अपने जीवन के निर्णय लेने में सक्षम स्त्री है, उसने विभाजन का हिंसा भरा दौर अकेले झेला था और पति की द्वितीय विश्व युद्ध में मृत्यु के पश्चात भी वह अकेले ही जीवनयापन कर रही है अत: इस विभाजन के दौर ने उसे अधिक परिपक्व और निर्णय लेने में अधिक सक्षम बना दिया है।

निष्कर्ष

हुसैन का उपन्यास विभाजन की त्रासदी मुस्लिम सामंतवादी परिपेक्ष में प्रदर्शित करता है उपन्यास की नायिका लैला अपनी विरासत से, पुरातन सामंती व्यवस्था से अत्यधिक लगाव रखती है परंतु साथ ही वह लिंग आधारित भेदभावो के प्रति भी सजग है विभाजन के परिणामस्वरूप देश के साथ-साथ उसका परिवार भी विचारधारा के आधार पर बिखर जाता है जिसकी उसे अत्यधिक पीड़ा व निराशा है और हिंसा के भयावह दौर के पश्चात, जो कुछ शेष है, वह बहुत अस्थिर है और नए विश्वास का संचार नहीं कर रहा है इस स्थिरता के साथ सामंजस्य

नहीं हो पा रहा है परंतु सामंजस्य के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं है उपन्यास में विभाजन की घटनाओं के मध्य लैला के व्यक्तित्व का विस्तार होता है दो दुनिया के बीच का संघर्ष उसे इच्छित परिणिति तक पहुंचाता है व वस्तुतः वह अपने जीवन की स्वयं सूत्रधार बन जाती है।

संदर्भ

1. Hosain, Attia (2009). Sunlight on A Broken Column, Penguin Random House India
2. Hasan, M. (2019) A Thematic Investigation Into T.S Eliot "The Hollow Men:" With Reference to Reader-Response Approach. Critical Literary Studies, Vol.1.2019, Pp.159-184
3. Kazmi, Zehra, (2022) "Golden Hour": Notalgia And The Demise of The Muslim Urban Space in Twilight In Delhi And Sunlight On The Broken Column, Journal Of Post Colonial Writings, Vol.58.2022- Issue 6. Pp 839-853
4. Needham,A.D (1993) Multiple Forms Of (National) Belonging : Attia Hosain's Sulight On The Broken Column. MFS Modern Fiction Studies 39(1)Ñ 93-111

'आधा गाँव' की स्त्रियाँ और भारत विभाजन की अंतर्कथा

सुप्रिया पाठक*

तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने 15 अगस्त 1947 को दो संप्रभु राष्ट्र '**भारत**' एवं '**पाकिस्तान**' का विभाजन कर दिया। इसके पहले इतने व्यापक स्तर पर विभाजन एवं विस्थापन को दुनिया के किसी देश ने नहीं झेला था। दोनों मुल्कों का यह विभाजन नक्शे पर खींची लकीर से तय हुआ था जिसने सदियों से कायम हिन्दू-मुस्लिम कौमी एकता पर करारा प्रहार किया था। हिन्दुस्तानी आवाम पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा। अनेकता में एकता की भावना से प्रेरित इस देश की धरती भीषण जनसंहार से नहा उठी। इस रक्तरंजित स्वतन्त्रता की कल्पना महात्मा गांधी ने *मेरे सपनों के भारत* में नहीं की थी। बेशक आज़ादी ने भारत को धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र दिया परंतु विभाजन धार्मिक राष्ट्रवाद का परिणाम था। विभाजन की त्रासदी ने जनसमुदाय के साथ-साथ तत्कालीन साहित्यकारों की अंतश्चेतना को भी स्पर्श किया। उन्होंने उस पीड़ादायी परिवेश के प्रति गहरी संवेदनाओं को अपनी कृतियों में प्रकट किया।

उस दौर में विभाजन की त्रासदी पर कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए। *आधा गाँव, झूठा सच, तमस, कितने पाकिस्तान, जुलूस, काले कोस, पाकिस्तान मेल, मलबे का मालिक, टोबा टेक सिंह,* इत्यादि जिसमें बँटवारे की तपिश और दंश की अभिव्यक्ति थी। प्रख्यात उपन्यासकार यशपाल का दो खंडों में प्रकाशित

* पीएचडी, एसोसिएट प्रोफेसर, स्त्री अध्ययन विभाग
क्षेत्रीय केंद्र, प्रयागराज, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
मो. 9850200918 ईमेल : womenstudieswardha@gmail.com

उपन्यास *'झूठा सच'* विभाजन की त्रासदी पर हिन्दी में लिखा गया ऐसा उपन्यास है जो इसे विराट ऐतिहासिक-राजनीतिक फलक पर प्रस्तुत करता है और विभाजन के बाद स्वाधीन भारत में शुरू होने वाली राजनीतिक प्रकियाओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में होने वाले क्षरण को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है। भीष्म साहनी का उपन्यास *'तमस'* भी यशपाल के *'झूठा सच'* की तरह ही क्लासिक की श्रेणी में रखा जाता है। बदीउज्जमा का *'छाको की वापसी'* और कमलेश्वर का *'कितने पाकिस्तान'* भी विभाजन पर हिन्दी में लिखे गए उल्लेखनीय उपन्यासों में गिने जाते हैं। कृष्णा सोबती का उपन्यास *'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान'* और सिक्का बदल गया ऐसी ही मार्मिक रचनाएँ हैं जिसमें विभाजन की त्रासदी का जिक्र है। विभाजन के दौरान महिलाओं की स्थिति के बारे में हाल के वर्षों में बहुत कुछ लिखा गया है। कमला भसीन, रितु मेनन और उर्वशी बुटालिया जैसे इतिहासकारों ने तो इस कार्यभार का नेतृत्व किया ही है, लेकिन सुमिता परमार, रोशनी शर्मा, प्रियंका माथुर वेलाथ, अनीस किदवई, संदीप काना, प्रोनोमा देबनाथ (यूटी ऑस्टिन), नीरू कुमार, पुनिता गुप्ता, नीना पांडे, अनीफा बानू आंचल मल्होत्रा और कई अन्य लोगों ने इस घटना के कई दशकों बाद महिलाओं पर विभाजन के प्रभाव के बारे में लिखा है। इस देश का विभाजन सांस्कृतिक-धार्मिक भिन्नता, रहन-सहन, भाषा, रीति-रिवाज के नाम पर किया गया। 20वीं सदी के महान उर्दू शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने विभाजन की हिंसा के दर्द को कुछ यूं दर्ज किया :

ये वो सहर तो नहीं जिसकी आरज़ू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं न कहीं
फ़लक के दश्त में तारों की आख़िरी मंज़िल
कहीं तो होगा शब-ए-सुस्त-मौज का साहिल
कहीं तो जा के रुकेगा सफ़ीना-ए-ग़म दिल [1]

विभाजन बीसवीं सदी के दक्षिण एशिया की केन्द्रीय ऐतिहासिक घटना थी। यह एक ऐसा ऐतिहासिक क्षण था जिसने आने वाले अनेक दशकों को परिभाषित किया। मानव इतिहास में कभी भी इतने विराट पैमाने पर आबादी की अदला-बदली नहीं हुई जितनी विभाजन के कारण बने पाकिस्तान और भारत के बीच हुई। इस त्रासदी के परिणामों के बारे में पक्के आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं लेकिन आम राय यही है कि कम-से-कम डेढ़ करोड़ लोग अपना घर-बार छोड़ने पर

मजबूर हुए। इस दौरान हुई लूटपाट, बलात्कार और हिंसा में कम-से-कम पंद्रह लाख लोगों के मरने और अन्य लाखों लोगों के घायल होने का अनुमान है।[2] विभाजन की कीमत दोनों देशों की स्त्रियों को विविध हिंसाओं का शिकार होकर चुकाना पड़ा। उस दौर में तकरीबन पचहत्तर हजार स्त्रियों के साथ अपहरण, बलात्कार, धर्म परिवर्तन जैसी घटनाएँ घटीं, जिसे रोकने के लिए दोनों देशों की सरकारों के पास कोई रणनीति नहीं थी। उर्वशी बुटालिया ने अपनी पुस्तक *'खामोशी के उस पार'* और कृष्णा सोबती अपने उपन्यास *'जिंदगीनामा'* में इन अपहृत, बलात्कृत स्त्रियों के जीवन अनुभवों को नारीवादी दृष्टि से बेहद संजीदगी से उभारा है।

हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषा के साहित्यकारों ने भी अपनी कलम से विभाजन की त्रासदी को कलमबद्ध किया। उन्हीं में एक थे राही मासूम रज़ा जिन्होंने समय की इस कहानी को लिखते हुए देश विभाजन और सांप्रदायिकता की राजनीति को अपनी रचनाओं में पिरोया। हालांकि उन्होंने लगभग सभी उपन्यास जैसे *दिल एक सादा कागज़, कटरा बी आर्जू, सीन 75, ओस की बूँद, टोपी शुक्ला, असंतोष के दिन, हिम्मत जौनपुरी* इसी पृष्ठभूमि पर लिखा परंतु **'आधा गाँव'** में तत्कालीन समय की सामाजिक, राजनीतिक चेतना एवं स्त्रियों की अपने राष्ट्र के प्रति अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से उभर कर आयी है। फणीश्वरनाथ रेणु की रचना *'मैला आँचल'* की तरह यह उपन्यास मूलत: आंचलिक है। आंचलिक होते हुए भी इस उपन्यास में भारत के संपूर्ण परिवेश को देखा जा सकता है जो अपने समय के यथार्थ, समाज और इतिहास की निर्मम प्रकिया से होकर गुजरता है। राही देश के बदलते राजनीतिक परिदृश्य से भली-भांति परिचित थे। अत: उनकी संवेदना इन रचनाओं में उभरकर आती है। दरअसल आधा गांव की कहानी आधे हिंदुस्तान की कहानी है। यह किसी पात्र की नहीं, बल्कि समय की कहानी है। निरंतर बदलते और प्रवाहित होते समय की कहानी। उपन्यास की भूमिका में वह लिखते हैं :

> *''यह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफ़र है। मैं गाजीपुर की तलाश में निकला हूँ लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूंगा। अगर गंगौली की हक़ीक़त पकड़ में आ गई तो मैं गाज़ीपुर का 'एपिक' लिखने का साहस करूँगा। यह उपन्यास वास्तव में उस एपिक(महाकाव्य) की भूमिका है। यह कहानी न*

धार्मिक है न राजनीतिक क्योंकि समय न तो धार्मिक होता है और न राजनीतिक और यह कहानी है समय की ही। यह गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी है। यह कहानी है उन खंडहरों की जो कभी मकान थे और यह कहानी है उन मकानों की जो खंडहरों पर बनाए गए हैं। यह कहानी जितनी सच्ची है, उतनी ही झूठी भी। यह आपबीती भी है और जगबीती भी''।[3]

'आधा गाँव' में विभाजन की विभीषिका और सांप्रदायिकता के बीच फंसे गंगौली के लोगों में विभाजित होते देश के प्रति गहरी चिंता है जो उसके पात्रों के संवादों में इस दुविधा के रूप में नज़र आती है कि आज़ादी के बाद उनके वजूद से जुड़ा कौन सा रिश्ता, शहर या गाँव पाकिस्तान चला जाएगा। विभाजन सिर्फ देश का मसला नहीं था, दिलों से जुड़ा मामला था। गंगौली का हर शख्स हिंदुस्तान का पाबंद था जिसकी रगों में गंगा-जमुनी तहजीब थी। राजनीतिक हुक्मरानों ने सिर्फ मुल्क नहीं बांटे थे बल्कि लोगों की तकदीर पर बेमुरव्वत लकीर बनाई थी। यह उपन्यास अपने आप में गंवई, ठेठ, देहाती, उर्दू और हिंदी पट्टी की कथा है। इसके सभी पात्र बेलाग, सहज और सटीक संवाद करते हैं। उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण बिंदु यह बताता है कि ग्रामीण स्तर पर 'राष्ट्र' की कोई मजबूत चेतना नहीं थी। गंगौली के अधिकांश लोगों की कल्पना उनके आस-पास के परिवेश और उनके क्षेत्र तक ही सीमित थी। उनके रीति-रिवाज, परंपराएं और भाषा क्षेत्रीय हैं। रज़ा इस बात पर ज़ोर देते हैं कि गंगौली के निवासियों की पहचान का सबसे मजबूत पहलू उनकी क्षेत्रीयता है।

1947 के हिंदुस्तान की कहानी कहती यह रचना पाकिस्तान बनते समय मुसलमानों की विविध मन:स्थितियों, हिंदुओं के साथ उनके सहज आत्मीय रिश्तों और उसमें अचानक आए विभाजन की त्रासदी की अभिव्यक्ति है। इसे राही मासूम रज़ा का सृजनात्मक प्रतिरोध भी कहा जा सकता है जिसे उन्होंने एक उम्दा कलाकार की तरह बखूबी निभाया है। 'आधा गाँव' सिर्फ उस गाँव के किरदारों में नहीं बसता, वह बसता है उन चारों बड़े दरवाजों और उसके आस-पास बसाए गए 'पुरों', उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी में। ये दरवाजे और उसके 'पुर' उस दौर के हिंदुस्तान की जातीय, वर्गीय और लैंगिक संरचना को बयां करते हैं जिनसे होकर यह कहानी बार-बार गुजरती है। फुन्ननमियां, जवादमियां, कलामुद्दीन,

अबुलकासिमचा, मौलवी बेदार, झंगटिया बो, कोमिला, बबरमुआ, बलरामचमार, हकीम अली कबीर, सकीना, बाजी, दद्दा, अम्मी, सैफुनिया, मिगदाद जैसे अनगिनत किरदार अपने होने मात्र से इस कहानी में कुछ नया जोड़ते चलते हैं।

यह कहानी है कर्बला की, मोहर्रम की और उस दौरान पढ़े जाने वाले नौहों और मरसियों की। यह उस लाल मसाले की भी कहानी है जिसे चटाकर गंगौली की माँओं ने अपने दुधमुहे बच्चों के दाँत उगाए हैं। आधा गाँव शिया और सुन्नी मुसलमानों के साथ ही सैय्यदों, जुलाहों, उत्तर-दक्खिनपट्टी, हिन्दु-मुसलमानों, छूतों-अछूतों तथा जमींदारों-आसामियों में बंटा है। राही मासूम रज़ा इसी वजह से इसे *'आधा गाँव'* और अनुवादक गिलियन राइट *'ए विलेज डिवाइडेड'* की संज्ञा देते हैं। ये एक साझी संस्कृति का हिस्सा हैं जहाँ भोजपुरिया उर्दू बोली जाती है।

भले ही यह उपन्यास सांप्रदायिकता और देश विभाजन की कारुणिक गाथा है लेकिन इसमें लैंगिक असमानता के प्रश्न भी विद्यमान हैं। 'आधा गाँव' के 'गंगौली' में शिया मुस्लिम समाज में सामाजिक रूप से लैंगिक असमानता के प्रश्न दिखाई पड़ते हैं। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति न सिर्फ दयनीय है बल्कि स्त्री चेतना की हर उभरती आवाज़ पर बंदिशें लगाई जाती हैं। उस कहानी के किरदार यह मानकर चलते हैं कि *'औरतों में तो कोई तकरीर करने का सवाल ही नहीं उठता। वह तो यूं भी हर किसी की बात मान लेती हैं और मानती चली जाती हैं'।*[4] स्त्रियों को कमतर समझने वाला यह समाज उनके के प्रति हद दर्जे तक अनुदार है। सपनों और हौसलों की इस कहानी में औरतें हालांकि उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी में सिमटी हुई दिखायी पड़ती हैं परंतु उनमें भी बनते हुए 'नए राष्ट्र' के लिए अपनी अभिव्यक्ति एवं चिंताएँ हैं। हालांकि विभाजन के दौरान और उसके बाद भी स्त्रियों के नाम घर और कमरों के भीतर की जगह से जुड़े होते हैं। 'गोरी दादी का आंगन' और 'अब्बू मियां का फाटक' और 'बड़का' के मुकाबले 'नईमा दादी की खलबत' जैसी इमारतें चहारदीवारों के भीतर स्त्रियों के लिए सीमाओं को इंगित करती हैं। सैय्यद परिवारों में 'रक्त की शुद्धता' पर जोर देने से पता चलता है कि जाति व्यवस्था और स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण कितना आपस में जुड़ा हुआ मसला है। स्त्रियों की पहचान लगभग पूरी तरह से विवाह से परिभाषित होती है, लेकिन वे अपने साथी तय करने में निर्णायक भूमिका में नहीं हैं। जो कुछ स्त्रियां अपने लिए हमसफर चुनती हैं उन्हें घर छोड़कर

भागने के लिए मजबूर होना पड़ता है या उन्हें पूरे समुदाय द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाता है। शादी और स्त्रियों से जुड़े मामलों का रिश्ता सत्ता से है जिसका उपयोग जमींदार एक वर्ग के रूप में करते हैं। सैय्यद जमींदारों को निचली जाति की किसी महिला को 'रखने' या उनके साथ विवाहेतर यौन संबंध बनाने में कोई दिक्कत नहीं होती। वे अपनी इच्छानुसार किसी भी महिला को पा सकते थे क्योंकि जमींदार के रूप में उनकी ताकत उन्हें ऐसा करने की अनुमति देती थी। व्यवस्था के तहत मिलने वाले लाभों के कारण जमींदारों को ब्रिटिश शासन से भी कोई समस्या नहीं थी। वर्ग और जाति उत्पीड़न की व्यवस्था को बनाए रखना उनके हितों के अनुकूल था।

दलित जातियों में स्त्री के शरीर पर उसके अधिकार की चेतना हमें सवर्ण मध्यमवर्गीय समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से दिखती है। इस उपन्यास की हर स्त्री का जीवन हमारे सामाजिक यथार्थ की एक परत खोलता है। बच्छन से जब उसकी माँ झंगटिया–बो पूछती हैं कि उसकी कोख में यह बच्चा किसका है। इस पर बच्छन हैरान होती हुई कि पेट उसका, तो बच्चा किसी और का कैसे हो सकता है, कहती है *''हमारा है,अऊर के का है!''*[5] बच्छन का यह जवाब स्त्री कोख पर उसके अधिकार की अभिव्यक्ति है जिसकी झलक भिखारी ठाकुर के *गबरघिचोर* और ईस्मत चुगताई की रचना *दो हाथ* में भी देखने को मिलती है। गंगौली के सैयद मुसलमान घरानों में पुरुषों के लिए *'मियां'* और स्त्रियों के लिए *'बीबी'* शब्द का इस्तेमाल होता था। राही इन बेनाम बीबीयों के बारे में लिखते हैं:

> *''बेनाम होना बहुओं की तकदीर है। फर्क बस इतना हो जाता है कि अच्छे घरानों में वह 'बो' की जिल्लत से बच जाती हैं। वह या तो बहू कही जाती हैं या दुल्हन या दुल्हिन। बहू अगर मालदार हुई तो उसे खिताब दिए जाते हैं* ***अज़ीज दुल्हन*** *(चाहे ससुराल में उसे कोई मुँह न लगाता हो) और* ***नफीस दुल्हन*** *(चाहे वह निहायत फूहड़ हो) वगैरह वगैरह ...गरज़ कि हमारे समाज में या तो यह होता है कि मैकेवाले जहेज़ देकर बेटी को अपना दिया हुआ नाम छीन लेते हैं या फिर यह कहिए कि ससुरालवाले यह गवारा नहीं करते कि उनके यहाँ किसी और का दिया हुआ नाम चले। बेनाम रहना शायद*

जमींदारों और उनके हवालियों मवालियों की बेटियों की तकदीर है।''[6]

जुलाहिन, भटियारिन, धुनियारिन आदि पसमांदा जाति की स्त्रियों को बो, कुंजड़न, लतीफ़ मनिहारिन, मदारन बो, जुलहिन इत्यादि नामों से संबोधित किया जाता था। राही मासूम रज़ा भी लिखते हैं कि *सैयदानियाँ तो डोली के बिना घर से निकल ही नहीं सकती थीं। ये तो गाँव की राकिनें, जुलाहिने, अहिरनें और चमाईनें होती थीं जो ताज़िया देखने बेपर्दा निकलती थीं।* मुस्लिम समाज में मौजूद छुआछूत की झलक गंगौली की सैदानियों–जुलाहिनों और चमाइनों के संबंधों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। झंगटिया बो की बेटी बच्छन का रिश्ता भले ही सैयद मौलवी बेदार हुसैन से तय था, पर रब्बन बी के सामने वह जमीन पर ही बैठा करती। उसकी हैसियत रब्बन बी के बराबर बैठने की नहीं थी। भले ही फस्सू मियाँ और रब्बन बी की माली हालत टाट ओढ़ने की रह गई हो और सकीना की पैदा की हुई आठ बेटियों के निकाह की फिक्र में उनके कंधे झुक गए हों पर थीं तो वे जमींदारिन जिसकी कमर में आज भी खाली संदूकों की चाभियों के गुच्छे लटकते रहते थे। उन्हें टूटना मंजूर था पर झुकना नहीं। इसीलिए तो उन्होंने तह किया हुआ पान का बीड़ा झंगटिया बो की हाथ के ऊपर छोड़ दिया जो उसकी हथेली तक आते–आते फैल गया। उसने बहुत इत्मीनान से मालकिन की मेहरबानी को चारों ओर से समेटा और सलाम करके मुँह में रख लिया। रब्बन बी की तरह ही उसका रिश्ता नईमा बी से था। नईमा बी थीं तो जुलहिन पर झंगटिया बो के सामने पक्की सैदानी बन जाती थीं और बहुत हिकारत से जो सुलूक सैदानियां उनके साथ करती थीं, उसका इंतकाम वह झंगटिया बो से लिया करती थीं। यहाँ तक की अली अकबर जिनके साथ झंगटिया बो ने उम्र का एक लम्बा सफर तय किया था,उनके बच्चों की मतारी बनी थी। वे भी उसके हाथ का छुआ नहीं खाते थे, उनका रिश्ता सिर्फ जिस्मानी था। उन्होंने झंगटिया बो को अपने घर में 'डाल' रखा था। फिर भी, उसकी स्याह आंखें यह सोच कर भर आतीं कि अली अकबर जेल में क्या खाते होंगे। वह उनके लिए कुछ पका भी नहीं सकती थी। अव्वल तो उसे सैदानियों के तरीके नहीं आते थे और अगर आते भी तो ऊँच नीच की दिवार सुलैमान मियां को झंगटिया बो का पकाया खाने की इजाजत नहीं देती थी।

यह ऐसी दिवार थी जो हर मज़हब में कील की तरह पाबंद थी जिससे

निकलना भारतीय समाज में नामुमकिन था। राही अपनी इस रचना में औरतों और मर्दों के बीच खड़ी इस जात-बिरादरी की दिवार को तफ्सील से बयां करते हैं। जाति और मजहब की चिंताएं नए बनते पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों के हिस्से आईं क्योंकि तमाम रंजो-अदावत, अखलाक और मोहब्बत के बीच भी इस दायरे को कायम रखना सबके लिए एहतियातन जरुरी था। गंगौली के जनानखाने में औरतें सिर्फ शादी-ब्याह और गाँव की लड़कियों के इश्क के किस्से ही नहीं सुन रही थीं बल्कि देश के बदलते हालात और गाँव में जात बिरादरी के बदलते समीकरण भी उनकी चिंता का विषय थे। देश भर में काँग्रेस पार्टी के बढ़ते असर और उसके कारण दलितों के हालात में तब्दीली होती देख आसिया ने रब्बन, सकीना और कुबरा को बताया :

> *''सुखरमवा चमार का लड़का परसुरमवा खद्दर की टोपी पहिने ऐसी-ऐसी तकरीर कर रहा था कि मौलवी ईब्ने-हसन का करिहें। खुदा गारत करे ई मट्टीमिले कांग्रेसियन को जिन्होंने चमारों और भंगियों का रुतबा बढ़ा दिया है। ऊ सब अब अछूत ना हैं...हरिजन हो गए हैं...उन्होंने मुर्दा खाना भी छोड़ दिया है और कोई महिना भर पहले चमारों का एक गोल परसुरमवा की लीडरी में पंडिताने के कुएं पर चढ़ गया और पानी भर लाया।''*[7]

उनकी चिंताएँ सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं थी, बल्कि जर्मन सेना के हार जाने की मन्नतों के साथ इमाम हुसैन साहब की चौखट तक पास पहुँच गई थी। जंग का रिश्ता खून-खराबे से था और मारे जाने वाले उनके शौहर और बेटे थे। वतन के काम आने के लिए फौज में भर्ती उनके बेटे बमुश्किल ही सही-सलामत घर वापस लौटते थे। गाजीपुर और गंगौली की औरतें यह जानती थीं कि जंग में जीत चाहे जिसकी भी हो, हारती हमेशा औरतें हैं। आधी जंग सरहद पर लड़ी जाती है और आधी औरतों के जिस्म पर। जंग में मारे गए फ़ौजियों की बीबीयां 'बेवाओं' की लिबास में सारी उम्र गुजार देती हैं। रज़ा बेवा औरतों की सामाजिक दुर्दशा की तस्वीर पेश करते हुए एक बेवा की हताशा को नाजुक ढंग से हमारे सामने रखते हैं:

> *''हुसैन अली मियां की बहन उम्मुल हबीबा लगभग बीस वर्षों से सफेद कपड़े पहन रही थी। वह शादी के तीसरे दिन*

ही बेवा हो गई थी। आसिया और उसकी शादी के बीच बस तीन दिन का फासला था और आसिया अब तक छह बच्चों की माँ बन चुकी थी और उम्मुल हबीबा के साथ शादी-ब्याहों में बहिष्कृत की तरह व्यवहार किया जाता था। उसकी छाया भी दुल्हनों पर नहीं पड़ने दी जाती थी। वह दुल्हन के कपड़े नहीं पहन सकती थी। दूसरी लड़कियों की शादी में गाए जाने वाले गाने सुनते सुनते उसके बाल भी समय से पहले सफेद हो गए। हुसैन अली मियाँ उसका बहुत ख्याल रखते थे। लेकिन फिर भी भाई तो भाई ही होता है, वह उससे शादी नहीं कर सकता। [8]

मुल्क के तकसीम होकर दो हिस्सों में बंट जाने की बात बहुत जानलेवा थी। एक खूनी गुबार उठने को था जिसकी जद में मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े सभी आने वाले थे। पीढ़ियों से गाजीपुर और गंगौली में रहती आई नस्लें जिन्होंने कभी रेल का सफर नहीं किया था, जिन्हें मोटर लोहे के हाथी लगते थे जो एक खास तेल पीते थे, जिन्हें 'या अली' 'या हुसैन' के आगे कोई इंकलाबी नारा नहीं आता था...जिन्होंने कभी उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी के बाहर मुहर्रम का मर्सिया नहीं पढ़ा था...उन्हें अब हजारों मील दूर मुस्लिम लीग के बनाए मुल्क 'पाकिस्तान' में रहने जाना था। ऐसे में नईमा बी, रब्बन बी, कुलसुम, सकीना,बच्छन और सैफुनिया का फिक्रमंद होना वाजिब था। हालांकि, नए बनते पाकिस्तान को लेकर मिगदाद के सपने सैफुनिया के साथ नयी जिंदगी शुरू करने को लेकर थे, इसलिए वह इस बात को लेकर ज्यादा फिक्रमंद नहीं था कि इस सपने की कीमत हजारों मासूमों की मौत, अपहरण और बलात्कार से वसूली जानी थी। इसका अहसास मिगदाद को बाद के दिनों में मुल्क के बँटवारे के बाद हुआ। ठीक उसी तरह कम्मो के लिए भी पाकिस्तान उस जिन्न की तरह था जो अलीगढ़ को निगल जाने वाला था...उसके साथ सईदा का जाना भी तय था। पाकिस्तान से उसे सख्त नफरत होने लगी थी। उसे न तो हिंदुओं से नाराजगी थी न मुसलमानों से। उसे नाराजगी थी तो उस अलीगढ़ से जो पाकिस्तान चला जाने वाला था। वह अलीगढ़ से आए हुए दोनों नौजवानों को मस्जिद में गाय बांधने की तकरीर का करारा जवाब देते हुए कहता है :

'' ए साहब, जब मुसलमान लोग पाकिस्तान चले जयहें तो

फिर मस्जिद में घोडा बंधे चाहे गाय। का फरक पड़िहें? अब हिंदुओं सब आके ओमाँ नमाज़ त पढे से रहे। अच्छी जबरदस्ती है कि हम त जाएंगे पाकिस्तान, अ हिन्दू लोग अगोरे हमारी मस्जिद।''

मुस्लिम लीग के प्रचार को स्थानीय ग्रामीणों ने खारिज कर दिया। गंगौली ही उनका सबकुछ था। रज़ा बताते हैं कि स्थानीय पहचान का विचार राष्ट्रीय पहचान के विचार को किस तरह बदल देता है यह ग्रामीणों के समझ से परे था। उनके लिए पाकिस्तान एक हास्यास्पद विचार था और भारतीय राष्ट्र का कोई अर्थ नहीं था। उनका देश, गाँव, वतन सब कुछ गंगौली था। चूंकि पाकिस्तान का रिश्ता जमींदारी उन्मूलन से जुड़ा था इसलिए उसे वे लूटने वाली चीज़ के रूप में देख रहे थे। *''अगर वह मनहूस पाकिस्तान न बना होता तो जमींदारी न जाती। गांधीया ने कहा ठीक है, मियां अब आपने अपना पाकिस्तान बना लिया है। अब भाड़ में जाओ..ज़मींदारी ख़त्म।*

गंगौली का हर मुसलमान पाकिस्तान के बनने न बनने को लेकर संशय में था। किसी को इस गाँव के छूट जाने का भय था, किसी को इससे शदीद मोहब्बत थी। किसी को फिर से जंग और कत्लेआम होने का डर था तो किसी को अपने पुरखे पुरनियों की बसाई हुई सालों की जमींदारी को कांग्रेस द्वारा जब्त कर लिए जाने का। किसी को यह पता ही नहीं था कि पाकिस्तान आखिर है क्या चीज, कोई खुदा, कोई शहर या कोई मस्जिद जिसके बनाने को लेकर इतनी जद्दोजहद और तक़रीरें हो रही थीं। उन्हें तो यह भी मालूम नहीं था कि जिन्ना साहब मौलवी हैं या पीर, शिया हैं या सुन्नी और का जानी रहते कहाँ हैं अलीगढ़ में कि लंदन में। उनका गुस्सा गांधीजी पर भी था जिनके कारण गंगौली के सय्यद मुसलमानों की जमींदारियां जा रही थीं। हकीम साहब इस गुस्से में गांधीजी को कोसते हुए कहते हैं :*''गंधिया के बाप की ना है जमींदारी की अउते-अउते दन देना तोड़ दिहें''*[19] जबकि महात्मा गांधी पाकिस्तान बनाए जाने की मांग और जरूरत दोनों से सहमत नहीं थे। उन्होंने 1946 में **हरिजन** नामक पत्रिका में एक लेख में लिखा था, *''मुझे विश्वास है कि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की जो मांग उठाई है, वो पूरी तरह गैर-इस्लामिक है और मुझे इसे पापपूर्ण कृत्य कहने में कोई संकोच नहीं है। इस्लाम मानवता की एकता और भाईचारे का समर्थक है, न कि मानव परिवार की एकजुटता को तोड़ने का। जो तत्व भारत को एक-दूसरे के खून के*

प्यासे टुकड़ों में बांट देना चाहते हैं, वे भारत और इस्लाम के शत्रु हैं। भले ही वो मेरी देह के टुकड़े कर दें, किंतु मुझसे ऐसी बात नहीं मनवा सकते, जिसे मैं गलत मानता हूं।''

अपनी पुस्तक *'रिमेंबरिंग पार्टिशन'* में ज्ञानेन्द्र पाण्डेय लिखते हैं कि यह उपन्यास राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के लिए एक चुनौती है। रज़ा स्वयं उपन्यास के मध्य में भूमिका लिखते हैं कि : *अब हमारी कहानी एक ऐसे मोड़ पर आ गई है जहां एक युग समाप्त हो रहा है और हम दूसरे युग में प्रवेश कर रहे हैं। क्या नया युग नई भूमिका की मांग नहीं करता है?*[10] वे मानते हैं कि राष्ट्रवाद की अवधारणा का संबंध धर्म से है और धर्म सांप्रदायिकता की भावना को नफरती अंदाज में लोगों के मन में बसा देता है। वह हमसे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं कि *हम कैसे तय करें कि कोई व्यक्ति कहां से है? हम उनकी उत्पत्ति का पता कहाँ तक लगा सकते हैं या लगाना चाहिए? कितनी पीढ़ियों और कितनी शताब्दियों तक? हर किसी के दादा और परदादा कहीं न कहीं से आए होंगे, लेकिन क्या हम वहीं से हैं जहां हमारे पूर्वज कई पीढ़ियों पहले थे?* यह उपन्यास सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह दर्शाता है कि किसी की पहचान के कई पहलू होते हैं, जिनमें से धर्म सिर्फ एक पहलू है इसलिए गांवों और राष्ट्रों को केवल धर्म के आधार पर विभाजित नहीं किया जा सकता है। इसीलिए बखीरपुर, गंगौली, सलीमपुर और गाजीपुर के हिंदुओं की समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि अगर नोआखली के मुसलमानों ने हिन्दू स्त्रियों के साथ गलत किया है तो उसकी सज़ा अपने गाँव के मुसलमानों को क्यों दी जाए? उनकी औरतों और बच्चियों के साथ ज़िना क्यों और कैसे किया जाए जिन्होंने छुटपन में उनकी गोद में पेशाब किया हैं। कलकत्ता के दंगों से डर कर बछनिया अपने शौहर बच्चों समेत गंगौली लौट आई थी।

हालांकि जंग के बाद और देश के बँटवारे के दरम्यान गंगौली की औरतों की जिंदगी में बहुत कुछ बदल रहा था। सईदा अलीगढ़ में अँग्रेजी पढ़ रही थी। उसे नए फैशन का शऊर आ गया था और सईदानियाँ सदियों के पुराने, सादा और पुरअसर मातम को छोड़कर लखनऊ और जौनपुर के बेतासीर मातम गाने लगी थीं। हम्माद मियां की बेटियाँ अपनी खड़ी जबान छोड़कर खालिस उर्दू बोलने लगी थीं। घरों में अब कांग्रेस और मुस्लिम लीग को वोट देने पर चर्चा होने लगी थी। कुलसुम बी को न कांग्रेस को वोट देना था और न मुस्लिम लीग

को। वे अपना वोट मुंताज को देना चाहती थीं पर पर्चे पर उसका नाम न देखकर उनका हौसला जवाब दे गया और वे नासाज़ दिल से कागज साथ लिए घर लौट आईं। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के हुक्मरान उनके बेटे अब्बास और मुंताज को उन्हें नहीं लौटा सकते थे इसलिए कोई भी मुल्क बने, उनकी बला से। सैफुनिया और मिगदाद जो भाई बहन थे, उनके निकाह कर लेने पर उनका गुस्सा हम्माद मियां पर फूटता कि अपने रहते उन्होंने ऐसा होने कैसे दिया। इस मामले में सैयद मिगदाद और नाईन सैफुनिया का संवाद गौर करने लायक है। ''का सोच रह्यो? सैफुनिया ने पूछा।'' ''अब्बा हमरा ब्याह कर रहें।'' उसने कहा। ''ल्यो! वह हंसीं, त ए में घबराए की कौन बात है? सोच रहे त ठीक कर रहे। का जिंदगी भर ब्याह न करिहो?'' *ब्याह काहे ना करेंगे!* वह बोला, *बाकी तोसे ब्याह करेंगे''* यह जुमला शायद किसी नाईन ने किसी जमींदार के लड़के के मुंह से पहली बार सुना था, क्योंकि सैफुनिया यह बात सुनकर हैरान भी न हो सकी। वह खिलखिला कर हंस दी और बोली, *''पगला गए हो का! हमरा-तुंहरा ब्याह कैसे हुइ है...''* सैफुनिया को सैय्यदों और नाइनों के रिश्ते की जमीनी हकीकत मालूम थी। उसके लिए जाति से परे जमींदार घराने में शादी करना किसी आश्चर्य से कम नहीं था। राही ने दोनों के प्रेम को भले ही एक करके गंगौली के मुस्लिम समाज की सदियों का रिवाज तोड़ा हो लेकिन सैफुनिया को मिगदाद के हाथों हिंसा का शिकार होते हुए भी दिखाया। अपने बाप के गाँव छोड़कर चले जाने के बाद सैफुनिया मुहर्रम के ताजिये बनाने लगी थी। उस गाँव की औरतों को अपनी सादी बीबीनुमा खूबसूरती और जुलाहिनों-चमाइनों की दिलकश जादूगरी का भी तंज़ था जिसके कारण उन्हें पलक झपकते निकाह या घर में 'डाल' लिए जाने के लिए मियां लोगों की सहूलियतें मिली हुई थीं।

यह उपन्यास उस दौर में हो रहे तमाम बदलावों की तरफ हमारा ध्यान खींचता है। गंगौली में सालों से हकीम साहब की दवा पीकर ठीक हो जाने वाले लोग अब इलाज के लिए डॉ. कलामुद्दीन उर्फ कम्मो के पास जाने लगे हैं जो अँग्रेजी और होमियोपैथिक की दवाइयों से लोगों का ईलाज करता है। परसुराम हरिजन होने के बावजूद पार्लियामेंट का चुनाव लड़ने के सपने देखता है और गांधी टोपी सरकारी अफसरों और बड़ी जाति के लोगों के बीच बैठने और धौंस जमाने का जरिया बन गई है जिसका गांधी जी से कोई लेनी देना नहीं रह गया है। 1945 के आस-पास महात्मा गांधी कांग्रेस पार्टी के लिए गैर-ज़रूरी हो गए थे, उनकी

राजनीति अब देश को आज़ाद कराने से ज्यादा सत्ता हासिल करने तक सीमित हो गई थी इसलिए गांधी के सत्य और अहिंसा के मूल्य सांप्रदायिक सद्भाव को कायम करने और दंगों को रोकने के काम आ रहे थे। हिन्दू और मुस्लिम समुदाय के लोग औरतों को अगवा करके, उनके साथ ज़ोर जबर्दस्ती करके और उन्हें अपने घर में 'डाल' लेने के असंख्य कुकृत्य कर रहे थे। इन औरतों को बचाने के लिए न तो भगावान आए और न ही इमाम साहब ने इनकी फरियाद सुनी। ये औरतें अब अपनी जड़ों से कट गई थीं, उन्होंने बलवाइयों को ही अपना रहनुमा मानना शुरू कर दिया था। मरसिए के नौहों में भी औरतों के साथ हो रही बदसलूकी *'जी मेरा डरता है, छाती से लगा लो मुझको। मेरे गौहर न कोई छीने छुपा लो मुझको। सुगरा मदीना लुट गया'* के रूप में चित्कार कर रही थीं। गंगौली के लोगों में विभाजन मौत के साए की तरह डर पैदा कर रहा था। उस भयानक दौर में औरतों के जिस्म पर हुई जंग और जीत को बयां करते हुए रज़ा लिखते हैं :

> *'चारों ओर बड़े बड़े शहर धाँय धाँय जल रहे थे कि उस आग में बच्छन औए सगीर फातमा एक तिनके की तरह पड़ीं और भक से उड़ गईं। दिल्ली, लाहौर, रावलपिंडी, अमृतसर, कलकता, ढाका, चटगाँव, सैदपुर, लालकिला, जामा मस्जिद, गोल्डेन टेंपल, जालियाँवाला बाग, हाल बाजार, उर्दू बाज़ार, अनारकली...अनारकली का नाम सगीर फातमा था या रजनी कौर या नलिनी बनर्जी था–अनारकली की लाश खेत में थी, सड़क पर थी, मस्जिद और मंदिर में थी और उनके नंगे बदन पर नाखूनों और दांतों के निशान थे और लोगों ने खून से भीगे हुए गरारों, सलवारों और साड़ियों के टुकड़ों को यादगार के तौर पर हाफ्ज़े के संदूकों में सैंत कर रख लिया था'।*[11]

एक अनुमान के अनुसार विभाजन के उस काले दौर के बीत जाने के बाद 1954 में एक ऑपरेशन के बाद भारत में 22,000 मुस्लिम और पाकिस्तान में 8000 हिंदू और सिख, कुल मिलाकर 30,000 स्त्रियों को बरामद किया गया। यह इस देश का दुर्भाग्य था कि जिन मूल्यों पर आज़ादी हासिल की गई थे, अब वे अप्रासंगिक होने लगे थे। **खामोशी के उस पार में**, उर्वशी बुटालिया विभाजन के इतिहास की विभिन्न परतें खोलती हैं। बुटालिया ने मौखिक आख्यानों के

जरिए स्त्रियों के शरीर और आत्मा पर विस्थापन, उत्पीड़न और बर्बरता की गाथा का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। विभाजन के इतिहास ने स्त्रियों को लगभग अस्तित्वहीन बना दिया गया। व्यक्तिगत साक्षात्कारों के साथ-साथ, उन्होंने राजनीतिक तथ्यों में अदृश्य असंख्य स्त्रियों के स्वर को सामने लाने के लिए डायरियों, संस्मरणों, समाचार पत्रों की रिपोर्टों, पत्रों और आधिकारिक दस्तावेजों का अध्ययन किया है। इन्हें साथ ही,वे अपने व्यक्तिगत जीवन के वृत्तांतों को भी जोड़ती हैं। वह एक विभाजन प्रभावित परिवार से आती हैं, जिसके कारण उनके चाचा और दादी 1947 में पाकिस्तान बन गए, जबकि उनके परिवार के बाकी लोग वहां चले गए, जो बाद में भारत बन गया।

उन्हीं दिनों रावलपिंडी के थुआ खालसा गांव की एक घटना के विषय में उर्वशी बुटालिया ने अपनी किताब में ज़िक्र किया है। वह बताती हैं कि सिखों के इस गांव की 90 औरतों ने दुश्मनों के हाथ आने के डर से अपनी मर्जी से कुएं में कूदकर अपनी जान दे दी। इस गांव के विस्थापित लोग आज भी समुदाय की उन औरतों की शहादत को याद करते हुए, दिल्ली के गुरुद्वारे में हर साल तेरह मार्च को शहादत दिवस मनाते हैं। इन सब में उन औरतों को याद नहीं किया जाता जो मरना नहीं चाहती थीं और उन्हें अपनी मर्जी के ख़िलाफ़ मजबूर होकर ऐसा करना पड़ा। इस घटना की सती परंपरा के साथ तुलना की गई और कहीं न कहीं इसे पारंपरिक स्वीकृति दिलाई गई। उर्वशी ऐसी ही एक अन्य घटना का जिक्र करतीं हैं जो गुरदासपुर बॉर्डर की है। बॉर्डर के पास का एक आदमी मंगल सिंह अपने दो भाइयों के साथ मिलकर अपने परिवार के 18 सदस्यों को गुरुद्वारा में इकट्ठा करता है और उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना कर करने के बाद, उन्हें मार देता है। ऐसी ही एक अन्य घटना है जिसमें वीर बहादुर सिंह जो मात्र किशोर था, उसने अपने आंखों के सामने देखी थी। उसने अपने पिता को अपनी बहन और अन्य परिवार के सदस्यों को मारते हुए देखा था जिसकी यादें उसे सालों तक परेशान करती रही।[13] द स्पीकिंग विंडो : टेल्स फ्रॉम ए ब्लडिड टाइमलाइन संदीप दत्त, फैसल हयात और रितिका द्वारा लिखित पुस्तक है जिसमें उन्होंने विभाजन के दौरान विस्थापित जन्नत बीबी के जीवन अनुभवों को संकलित किया है। ब्रिटेन स्थित लेखिका फ़ोज़िया राजा अपने पहले उपन्यास *डॉटर्स ऑफ़ पार्टीशन* में उन स्त्रियों की कहानी सुनाती हैं जिन्होंने विस्थापन का दंश झेला था।

विभाजन दरअसल स्त्रियों के प्रति भीषण हिंसा का इतिहास है। आधा गाँव में राही मासूम रजा गंगौली में बदलते सामाजिक–राजनीतिक मिजाज की खून से लथपथ तस्वीर को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। अब गंगौली के लोगों ने अपने रिश्तेदारों का इंतजार करना छोड़ दिया था। *लड़ाई की बात और थी। लड़ाई से तो लोग वापस आ जाते हैं। मगर पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता– तो क्या पाकिस्तान एक मृत्यु देश है?*[14] हिंदुस्तान में रह गए मुसलमान हमेशा इस कश्मकश में जी रहे थे कि पाकिस्तान न जाकर उन्होंने अच्छा किया या बुरा। जमींदारियों के चले जाने के बाद के हालत और ज्यादा बदतर हो गए। सभी मियां लोग अचानक से बूढ़े हो गए। सबके कंधे झुक गए और वे अपनी ही रिआया के कर्जदार हो गए। बुढ़े फुस्सू मियां अपनी माली हालत का बयां अपने पकिस्तान चले गए बेटे सद्दन से न कर सके। गंगौली की सईदानियों की भी हालत वैसी ही थी।

> *'कहने को हर घर में बक्सों का अंबार था। हर जनाने कमरबंद में कुंजियों का भारी गुच्छा था, पर बाक्स खाली थे। तालों की कोई जरूरत नहीं थी पर औरतें कुंजियों के गुच्छों से चिमटी हुई थीं क्योंकि वही उनके खुशहाली के जमाने की यादगार रह गए थे। 'है' और 'थी'–ये दो लफ्ज भी कितने अजीब हैं। एक जिंदा है और दूसरा लाश की तरह भारी है। सईदानियाँ इन लाशों से छिपटी हुई थीं।'*[15]

बँटवारे के समय महिलाओं के साथ हुई हिंसा केवल सामुदायिक घृणा से प्रेरित नहीं थी बल्कि यह उससे कही अधिक पितृसत्तात्मक संरचनाओं की देन थी। समुदायों और परिवारों ने अपहरण के बाद वापस लौटीं औरतों को अस्वीकार कर दिया था क्योंकि उन्हें लगता था कि यह औरतें उस व्यवस्था को खत्म कर देंगी जिसके अनुसार समुदाय की 'इज्ज़त' उसकी औरतों की पवित्रता से जुड़ी हुई है। समाज के पितृसत्तात्मक नियमों के अनुसार स्त्री शरीर पुरुषों द्वारा संरक्षित है और अगर वह अपने कौम की महिलाओं की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं तो वे कमजोर हैं। भारत विभाजन की कहानी दोनों देशों की स्त्रियों द्वारा झेले गए अंतहीन शोषण की कहानी है। जो कई सालों से स्त्रियों की स्मृतियों में दर्ज है। वे अपनी यादों, कहानियों और लोकगीतों में इस दर्द को संजोए हुए हैं। विभाजन के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी उस दौरान घटी घटनाएं लोगों के दिलो दिमाग

में आज भी ताज़ा हैं। उस दौरान बहुत कुछ ऐसा था जिसके बारे में अभी भी प्रामाणिकता के साथ कुछ बता पाना मुश्किल है क्योंकि वह मौखिक आख्यानों में दर्ज है। यह आलेख इस संदर्भ में अब तक हुए शोधों तथा साहित्यिक लेखन के आधार पर लिखा गया। जाहिर है, आने वाले वर्षों में इस संबंध में अन्य महत्त्वपूर्ण शोध हमारे सामने आएंगे और अब तक स्त्रियों के संबंध में अनकहा और अनसुना इतिहास नए रूपों में हमारे सामने होगा। यह आलेख इस दिशा में एक विनम्र संकेत मात्र है।

1. आज़ादी या बंटवारा : ये वो सहर तो नहीं, जिसकी आरज़ू लेकर चले थेज्नीरा चंडोक, द वायर 15 अगस्त 2017
2. विभाजन और हिन्दी साहित्य,मारिया जॉन सांचेज
3. आधा गाँव, रही मासूस रज़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966
4. आधा गाँव, पृष्ठ 46
5. आधा गाँव, पृष्ठ 120
6. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 23
7. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 116
8. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 101
9. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 251
10. Pandey, Gyanendra. *Remembering Partition: Violence, Nationalism and History in India*. Cambridge, University Press, 2001
11. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 282
12. *Recovery, Rupture, Resistance: Indian State and Abduction of Women during Partition*, Ritu Menon and Kamla Bhasin, Economic and Political Weekly, Apr. 24, 1993, Vol. 28, No. 17 (Apr. 24, 1993),
14. बंटवारा और महिला हिंसा : धरती पर खींची लकीरों ने किस तरह स्त्री देह को बनाया रणभूमि,श्वेता सिहं, फेमिनिज्म इन इंडिया
15. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 284
16. आधा गाँव, पृष्ठ संख्या 329

पंजाबी कविताओं में विभाजन की त्रासदी : एक अध्ययन

डॉ. हरप्रीत कौर*

अंग्रेजों ने खून से लथपथ जो आजादी हमें सौंपी उसमें लाखों लोगों की कुर्बानियाँ और रक्त शामिल था। एक तरफ आजादी का जश्न और दूसरी तरफ वृहत मानवीय समुदाय का हिंसक रवैया जिसके परिणामस्वरूप लाखों की संख्या में लोग बेघर हुए,हत्याएँ आत्महत्याएँ और न जाने कितने ही उत्कंठा को डूबे नरसंहार हुए। प्रस्तुत शोध आलेख पंजाबी कविता में विभाजन के स्वरों की तलाश करते हुए दोनों तरफ के पंजाब के दर्द को प्रस्तुत करती कविताओं को रेखांकित किया जाएगा।

पंजाब की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों को समझने का प्रयास करते हुए प्रमुख कवियों के योगदान और उनके आक्रोश के स्वर को प्रस्तुत किया गया है। पंजाब हमेशा से रँगीले मिजाज का सूबा रहा है। लहलहाते खेत, उपजाऊ जमीने और ज़िंदादिल लोग सहज ही आकर्षण का विषय रहे हैं। पंजाब को सूफियों, पीरों, फकीरों की धरती के रूप में याद किया जाता है।

पंजाबी साहित्य को दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है एक इस पार का पंजाबी साहित्य और दूसरा उस पार का पंजाबी साहित्य। जिसे चढ़ते और लहंदे पंजाब के नाम से जाना जाता है। पंजाबी दोनों ओर की भाषा है।पाकिस्तान में शाहमुखी और भारत में गुरुमुखी लिपि में साहित्य रचनाएँ की जा रही है। पंजाबी दोनों सूबों की भाषा है। भाषा के प्रति स्नेह और समर्पण दोनों में दिखाई देता है यही कारण है कि पंजाबी में दोनों मुल्कों में साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा

*सहायक प्राध्यापक अनुवाद अध्ययन विभाग
म. गाँ.अं. हिं. वि.वि, वर्धा, क्षेत्रीय केंद्र प्रयागराज (उ.प्र.)

जा रहा है। पाकिस्तानी पंजाबी शायर अफजल कहते हैं ''अगर कोई मुझसे पूछे कि मैं पाकिस्तानी हूँ या पंजाबी तो मेरा जबाव होगा पंजाबी।'' अफजल का मानना है कि आजादी के इतने साल बाद भी नई पीढ़ी उन कारणों को जानने की इच्छुक है,पाकिस्तान जिस खोखली 'धार्मिक बुनियाद' पर बना था उसके कारण और इतिहास आज की पीढ़ी गलत पढ़ाए जा रहे हैं। यहाँ पंजाबी कविता में विभाजन के कुछ स्वरों की तलाश करते हुए दोनों तरफ के पंजाब के दर्द को प्रस्तुत करती कविताओं के पक्ष को आज यहाँ प्रस्तुत किया जाएगा।इस विषय पर पंजाबी में कविताओं को तलाश कराते हुए बहुत सी कवितायें विभाजन की उन्हीं तारीखों में लिखी गई और उसके बाद की तारीखों में लिखी गई कवितायें मिली जिनमें करुणा,आक्रोश, तात्कालिक सत्ता से प्रश्न, विरोध के तीखे स्वर थे। पंजाब में एक अखाण प्रसिद्ध था। -

''खादा पीता लाहे दा / बाकी अहमद शाहे दा''

अर्थात हम जो खा पी रहे हैं वही अपना है बाकी अहमद शाह लूटकर ले जाएगा। इसी तरह मुग़ल सल्तनत का सूबेदार मीर मनु भारतीयों पर जुल्म कर रहा था। तो जुमला पुंजाब में सबकी जुबान पर था।

'मनु असाडी दातरी असां मनु दे सोये/ ज्यों ज्यों मनु बढदा/ असीं दूण स्वाये होये'

(मीर मनु अपने जुल्मों से जितना हमें खत्म करने का प्रयास कर रहा है हम उसके सामने उतनी ही बढी हुई संख्या में डटकर खडे हो रहे हैं। मारकर भी हमारी संख्या को कम नहीं किया जासकता ।

बल्ले-बल्ले के मुखर उद्धघोष वाला यह सूबा जिसमें सूफ़ीज़्म का उदय होता है। बुल्ले शाह शाह हुसैन कादर यार जिन्होंने प्रेम के लाखों उदगार लिखे नानक हुए गुरु गोंबिन्द सिंह जैसे सूरमे हुए।

पंजाबी कविता में विभाजन के कुछ स्वरों की तलाश करते हुए दोनों तरफ के पंजाब के दर्द को प्रस्तुत करती कविताओं का पक्ष यहाँ प्रस्तुत है। जब इस विषय पर पंजाबी कविताओं को तलाश की गई तो बहुत सी कवितायें विभाजन की उन्हीं तारीखों में लिखी गई और उसके बाद की तारीखों में लिखी गई कवितायें सामने आई। जिनमें करुणा,आक्रोश, तात्कालिक सत्ता से प्रश्न, विरोध के तीखे स्वर थे। प्रस्तुत आलेख में **अमृता प्रीतम** (वारिस शाह), **शिव कुमार बटालवी** (दूध दा कत्ल), रत्त धोवण नूं भेजियाँ इस बार अल्लाह ने बारिशां कहने वाले

सुरजीत पात्तर (उस बने सोहणा जेहा बसड़ा गरां सी), **बाबा नज़्मी** मस्जिद मेरे तु क्यों ढ़ावे,मैं क्यों ढांवा मदिर नू, **तारीक गुज्जर** (पूरे पंजाब के लिए आधी नज़्म), (बण्ड बँटवारा), **दामन** (रोये तुसीं भी हो रोये असीं भी हाँ) को शामिल किया गया है।

उस्ताद दामन का असली नाम चिराग दीन था तक्ख्लुस के रूप में वे अपने नाम के पीछे दामन शब्द का प्रयोग करते रहे। 1947 के प्रमुख कवियों में से एक थे, जिन्होंने भारत विभाजन का विरोध करते हुए विभाजन के नकारात्मक प्रभावों को अपनी कविताओं में चित्रित किया। नेहरू के सामने पढ़ी उनकी कविता **''भावें मूहों ना कहीये पर विचो वीचे खोये तुसीं भी हो/ खोये असीं भी हाँ / इनां अजादियाँ हत्थों बरबाद होए तुसी भी हो/ होए असीं भी हाँ/ जागण वालिया रज्ज के लुटट्या है /सोये असीं भी हाँ /सोए तुसी भी हो /रोए असी भी हाँ रोये तुसीं भी हो रोये असीं भी हाँ''** (इस बँटवारे वाली आजादी ने दोनों और के लोगों को बर्बाद किया दोनों तरफ के लोग रोये हैं सबने तनाव झेला है। जागने वाले सियासतदानों के हाथों हमें मारा गया है। कहने वाले दामन ने यह कविता नेहरू को सुनाई सुनकर नेहरू की आँखें नम हो गई उन्होने दामन को भारत में रहने के लिए आमंत्रित किया दामन ने इंकार कर दिया।तारीक गुज्जर अपनी नज़्म पाकिस्तान की अजब बंड (पाकिस्तान का अजीब बँटवारा) में लिखते हैं। **''पाकिस्तान का अजीब बँटवारा हुआ/थोड़ा इस तरफ थोड़ा उस तरफ/ये हकीम इलाज कैसे करेंगे/ मरहम इस तरफ फोड़ा उस तरफ /हम अपनी मंजिल तक पहुंचे कैसे /तांगा इस तरफ घोड़ा उस तरफ''** हुक्मरानों ने जब बँटवारे का ऐलान किया तो कोई विस्तृत योजना उनके पास नहीं थी। उन्होने यह भी नहीं सोचा कि रुपये पैसे और बैंकों में रखी संपति का बँटवारा कैसे किया जाएगा। जब बैंकों में पड़े धन को लेकर विवाद की स्थिति पैदा हुई तो कई चीजें समझ में आई कि मूर्खतापूर्ण बँटवारे में कितना नुकसान हुआ है। सड़कों और रेल लाईनों का बँटवारा अलग। और कर्ज किसके हिस्से कितना आयेगा इस पर भी कई दिन तक बहस मुहाबिसा होता रहा। इसे पंजाबी में 'काणी बंड' कहा गया। जिसका जिक्र तांगा उस तरफ घोड़ा उस तरफ के रूप में तारीक गुज्जर करते हैं।

पूरे पंजाब के लिए आधी नज़्म में भी तारिक लिखते हैं **''मुझे जन्म देते वक्त/धरती माँ के दो टुकड़े हो गए/मेरे होंठों की कड़वाहट चख कर देख**

लो/तुमको यकीन हो जाएगा/कि मुझे!/ रक्त मिले पानियों का शगुन मिला था/टूटे साज़ों पर पूरे नगमें नहीं गाये जा सकते/दरिया पार करते वक्त /मेरी आधी बंझली (बांसुरी)उधर रह गई/

अपना अस्तित्व अपना जीवन अस्त व्यस्त करके टूटे बिखरे लोगों का समूह इस पार से उस पार उस पार से इस पार आ गया जिसे तारिक गुज्जर ने कहा।

अमृता प्रीतम अपनी प्रसिद्ध नज्म वारिस शाह में वारिस शाह को संबोधित करके लिखती हैं-

अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ कित्थों क़बरां विच्चों बोल
ते अज्ज किताब-ए-इश्क़ दा कोई अगला वरका फोल
इक रोई सी धी पंजाब दी तू लिख-लिख मारे वैण
अज्ज लक्खां धीयाँ रोंदीयाँ तैनू वारिस शाह नु कैण
उठ दर्दमंदां देआ दर्देया उठ तक्क अपना पंजाब
अज्ज बेले लाशां बिछियाँ ते लहू दी भरी चनाब

विभाजन की त्रासदी को अभिव्यक्त करती अमृता प्रीतम की यह कविता उन्होने वारिस शाह को संबोधित करके लिखी।

वारिस शाह ने पंजाबी में ने जिस हीर की तारीफ में कसीदे पढ़े जिस हीर को सभी स्त्रियाँ से सुंदर दिखाया उस हीर के दुख और प्रेम के परवान ना चढ़ने को भी वह उसी तरह प्रस्तुत करता है। अमृता प्रीतम यही आकांक्षा वारिस शाह से दोबारा करती हैं और कहती हैं जब पंजाब की एक बेटी रोई थी तो वारिस शाह ने कितने ही बैण (शोकगीत) गाये थे। और आज पंजाब की लाखों बेटीयाँ मर रही हैं और वारिस शाह को पुकार रही हैं। कि हे दर्द मंदों के हम दर्द उठ और अपने पंजाब की हालत देख। अमृता कहती हैं कि पंजाब के अंग नीले हो गए जैसे कोई मरी देह नीली हो जाती है पंजाब मर रहा है। गले से संगीत टूट गया। चरखे की तरकाली टूट गई सब अस्त व्यस्त हो गया। कुछ भी पूरा नहीं बचा सब टूट बिखर गया। महिलाओं के साथ हो रहे लगातार बलात्कार करने वाले राँझे कितने खूंखार हो गए। वारिस शाह कहाँ से लाएँ जो प्यार के गीत गाता था। अमृता इस कविता में उस समय के पूरे परिदृश्य को रखती हैं। जैसे हीर को पुरुष अहम का खामियाजा भोगना पड़ा ठीक वैसे ही विभाजन के दौरान लाखों स्त्रियाँ को हिंसा,बलात्कार के साथ-साथ खरीद फरोख्त को भी झेलना पड़ा।

जैसे अमृता राँझों के खूंखार हो जाने की बात कहती हैं ठीक उसी तरह सुरजीत पात्तर भी लिखते हैं कि-

हर बंदे बीचों कोई निकलिया होर सी /बड़ा ओत्थे धर्म ते मजहवां दा शोर सी /रब्ब दा तां ओत्थे कोई नाम ना निशान सी /क़हर दीयाँ एसीयाँ हनेरियां सी झूलीयाँ /बंदियाँ दी छ्ड ओत्थे कोमाँ राहाँ भुल्लियाँ /अन्ने हो गए बंदे कोई धी सी ना माँ सी (सब आदमियों से कोई दूसरा ही आदमी निकल आया था। धर्म ईमान कुछ नहीं बचा था आदमी तो आदमी बड़ी बड़ी कोमें भी अपना अस्तित्व भूल चुकी थीं। ऐसा कहर था की कोई किसी की ना माँ थी ना बेटी सब जुर्म में अंधे हो गए थे और बराबर के अत्याचारी बन गए थे) इस तरह पंजाबी कविताओं में विभाजन के दर्द को उभारते हुए त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है।

बाबा नजमी कहते हैं : -**मस्जिद मेरे तु क्यों ढ़ावे/मैं क्यों ढांवा मंदिर नू/आजा दोवे बैठके पढ़ीए /इक्क दूजे दे अंदर नूं /सदीया बांगु अज्ज भी कुझ नहीं जाणा /मस्जिद मंदर दा /लहू ते तेरा मेरा लगणा /तेरे मेरे खंजर नूं /रब्ब करे तु मंदिर वांगु देखें मेरी मस्जिद नूं / साड़े सिंगा फसदे रहणा/ जिनां तीकर नत्थ ना पाई नफरत वाले डंगर नूं**

मजहब के नाम पर मंदिर मस्जिद विवाद पैदा किया जाता है। बाबा नजमी कहते हैं कि हम एक दूसरे के धार्मिक स्थलों को आदर और सत्कार दें और सियासतदानों की राजनीति को समझें। जो धर्म के नाम पर हम लोगों को लड़ा रहे हैं। क्योंकि हम एक दूसरे पर वार करेंगे तो नुकसान राजनेताओं का नहीं हमारा आम जनता का होगा।

सुरजीत पात्तर लिखते हैं

रत्त धोवण नूं भेजीयाँ इस बार अल्लाह ने बारिशां

पागला तूँ रोना एँ कि पैड़ा मिट गईयाँ ने (विभाजन के दौरान यह जो रक्त बहाया गया इसी को धोने के लिए अल्लाह ने बारिशें भेजी हैं। ट्रेन तू पाकिस्तान में खुशबंत सिंह ने मनु माजरा की कहानी दिखाई है जिसकी पृष्ठभूमि में प्रेम और पीड़ा का सामजस्य है। रक्तरंजित और दिल दहला देने वाले दृश्य हैं। जिस तरह 'तमस' फिल्म के अनेक दृश्यों में मानव के मानव के प्रति अप्रतिबद्दता और संहार के दृश्य है।

असीं अखां मल मल वेखीए

की खेडाँ होईया
शेरां बरगे सूरमे अज्ज भेडाँ होईयां

(हम शेरों जैसे सूरमा योद्धा थे पर हम लड़े नहीं बल्कि भेड़ों की तरह डरपोक हो गए भेड़चाल में पड़कर सियासत दानों के पीछे लगाकर हमने अपने आपको बर्बाद कर लिया।

सानूं सज्जा हथ्थ विखाके
मारी सु खब्बी
असीं जन्नत बल्ल नूं नट्ठ पये ते दोज़ख लब्भी
फिर लता क़ढीयाँ चौधरी असीं घुटटण लग पये
नहीं खाण पीण नूं लभदा साड़े घर 'च साया

हमें कुछ और कहा गया सब्जबाग दिखाये गए कि पाकिस्तान ऐसा मुल्क होगा वहाँ बेरोजगारी नहीं होगी हिंदुस्तान ऐसा मुल्क होगा पर हकीकत में वैसा कुछ था नहीं हम जन्नत के ख़्वाब देखते रहे और दोज़ख में जा गिरे। फिर सियासत दानी चौधरियों ने अपने पैर पसार लिए और हम उनके पैरों को सहलाने लगे। मुंशी प्रेमचंद कहते हैं ''जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है,तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है। राजनैतिक कूटनीती के चलते कोई विकल्प शेष नहीं था। उसी विकल्पहीनता की स्थिति को अफजल साहिर अपनी नज्म 1947 में अभिव्यक्त करते हैं।

अफजल साहिर इस लंबी कविता में उस दंश को भी लिखते हैं जिसके चलते मुस्लिम को हिन्दू और हिन्दू को मुस्लिम नाम रखना पड़ा होगा।

साड्डी खड़ी कपाह नूं बेचया
असीं मंग के पाये
साड्डे आपणियां पटवारियाँ साड़े नामें बदले
हमारे अपने ही पटवारियों ने कागजातों में हमारे नाम बदले।

विभाजन की त्रासदी को अभिव्यक्त करती इन कविताओं में दोनों तरफ के पंजाब के रोते विलखता जन है और उस जन की अभिव्यक्ति है। जिसने अपना अस्तित्व अपने जीवन का सुर संगीत इस पार या उस पार छोडकर इस आना स्वीकार किया। और उन बच्चियों स्त्रियाँ की चीखें हैं जिन्होंने बलात्कार झेले और आत्महत्याएं कीं। कविताओं प्रत्यक्षदर्शी आँखों में ठहरे कत्लेआम के चित्र हैं। जिसमें अपनों के अपनों द्वारा कत्ल की कथाएँ हैं। इंसानियत को शर्मसार

कर देने वाले बिंब हैं। और रोटी सेकते सत्ताधारी वर्ग की घिनौनी सियासत का पुरजोर विरोध है। नेहरू से जिन्ना से सीधे सवाल हैं। और सेंसर होने के भय से मुक्त मुखर अभिव्यक्ति है। क्योंकि उल्लेखित सभी कवि इस अमानवीय घटना के काल खंड से संबन्धित रहे इसलिए भोगा हुआ यथार्थ इन कविताओं में दिखाई देता है। अभी भी लगता है बहुत कुछ शेष है,जो कलमबन्दी का मोहताज है। विश्व के सबसे बड़े जनसंख्या–तबादले,भीषण नरसंहार और विस्थापन की पीड़ा को एकाध सदी में भुला पाना संभव नहीं है।

ग्रंथ सूची

International status:

1. Bailey T Grahme [1914], A Punjabi Phonetic Reader, i.London
2. Fromkin Victoria A [1978], Tone: A Linguistic Survey. Department of Linguistics, University of California, Los Angeles
3. Gill Dr. Harjit Singh, Henry A Gleason [1969], A Reference Grammar of Punjabi
4. Gleason Henry A [1969], Linguistic Survey of India
5. Haudricourt, A.G. [1971], Tones in Punjabi. Paris : C.N.R.S.

National Status:

1. 1Joshi S.S. [1987], Punjabi Da Sur Prabandh
2. KhairaSurinder Singh [2011], Punjabi BhashaÑ
3. ViyaKaran and Banter, Punjabi University Patiala

विभाजन त्रासदी: राजेंद्र सिंह बेदी की लाजवंती के माध्यम से पीड़ित महिलाओं की अनकही कहानी

श्वेता कुमारी (शोधार्थी)*

शोध संक्षेप:

1947 में दो राष्ट्रों – भारत और पाकिस्तान – के विभाजन ने पूरी मानवता को झकझोर कर रख दिया जिससे लाखों ज़िंदगियाँ प्रभावित हुईं। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, राजेंद्र सिंह बेदी के द्वारा लिखी गई कहानी ''लाजवंती'' विभाजन के उपरान्त महिलाओं की अनकहे दर्द और पीड़ा को मार्मिक रूप से बयां करती है और विभाजन के नरसंहार की शिकार हुईं महिलाओं की दास्तान का यथार्थ-चित्रण करती है। वर्तमान गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन, राजेंद्र सिंह बेदी की कहानी ''लाजवंती'' के माध्यम से विभाजन की त्रासदी झेलने वाली महिलाओं की अनकही कहानियों को नारीवादी दृष्टिकोण से उजागर करता है। राजेद्र सिंह बेदी, विभाजन के दौरान अपहरण की गई महिलाओं की दुर्दशा का सचित्र वर्णन करते है। सुंदरलाल एक अत्याचारी पति है जिसकी पत्नी लाजवंती विभाजन के दौरान लापता हो जाती है। इसी दौरान सुन्दरलाल को अपहृत महिलाओं की वापसी के लिए सक्रिय रूप से – अभियान चलाने की जिम्मेदारी मिलती है। पत्नी से बिछड़ने की पीड़ा और अन्य अपहृत महिलाओं की व्यथा देखकर सुंदरलाल का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह अपनी पत्नी को अपने घर में वापस स्वीकार करता है लेकिन उसके मन की व्यथा को सुनना जरूरी नही समझता और जब भी वह अपनी पीड़ा बताने की कोशिश करती है तो उसे चुप करा देता है। बेदी ने इस कहानी के माध्यम् से विभाजन की त्रासदी झेलने वाली

* अंग्रेजी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया, विहार

महिलाओं को चुप करा दिये जाने पर सवाल उठाया है और यह विभाजन साहित्य का एक सामान्य विषय है। प्रस्तुत पेपर का उद्देश्य विभाजन के दौरान महिलाओं की अनकही शाश्वत पीड़ा का उनके सामाजिक संदर्भ में अध्ययन करना है। यह विशेष रूप से कहानी की पात्र लाजवंती के नजरिए से उन महिलाओं की मनोदशा और यथार्थ स्थिति को दर्शाता है जो विभाजन के समय हुई त्रासदी का शिकार हुई थीं अर्थात इस कहानी के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों और स्थिति की नारीवादी दृष्टिकोण से समीक्षा करेंगे। इस प्रकार, यह अध्ययन विभाजन के बाद महिलाओं की पीड़ा को गहराई से समझने का एक प्रयास है। लाजवंती की आवाज़ के माध्यम से हम उन महिलाओं की अनकही कहानियाँ सुनते हैं जो विभाजन के आघात और अत्याचारों का सामना कर रही थी और उनके अनकहे किस्से हमारे समाज को जगाने के लिए हमें प्रेरित करते हैं।

बीज शब्द: विभाजन; त्रासदी; नारीवादी दृष्टिकोण; महिलाओं की पीड़ा; मानवता.

ऐतिहासिक तौर पर अगर हम देखें तो जब भी कोई युद्ध हुआ है तो इसमें सबसे ज्यादा औरतें ही शिकार हुई है। 1947 में भारत का विभाजन इतिहास की वह दुखद घटना है जिसने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप को दो देशों में बांट दिया बल्कि संपूर्ण मानवता को झकझोर कर रख दिया जिसके कारण पूरे मानव समाज में भारी उथल-पुथल, अत्याचार, सांप्रदायिक हिंसा, दंगे, अपहरण, बलात्कार हुए और लाखों लोगों को अपनी मूल भूमि से विस्थापित होना पड़ा। महिलाएं अपहरण, यौन हिंसा, सामाजिक प्रताड़ना और ऑनर किलिंग का शिकार हुईं तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर उन्हे अपने घरों और परिवारों से अलग कर दिया गया। विभाजन के दौरान महिलाओं की स्थिति बहुत दुर्दशापूर्ण बनी रही और विभाजन के उपरांत भी महिलाएं न केवल हिंसा और स्थानान्तरण का शिकार हुई बल्कि उन्हें पितृसत्तात्मक समाज की कुरीतियों का दंश भी झेलना पड़ा। कई कहानीकारों ने भारत विभाजन की त्रासदी और इसकी भयावहता को अपनी कहानी के जरिए सुदृढ़ तरीके से व्यक्त करने की कोशिश की है। मेलोडी रज़ाक अपने शोध पत्र ''जब खामोशी सुनी जाती है: भारत के विभाजन के दौरान महिलाओं की कहानियाँ सुनानाजीवित रहीं गवाहियों'' आलेख करते हुए कहते है :

जब मैंने विभाजन के विषय पर शोध करना शुरू किया, तो मैं आँकड़ों को देखकर दंग रह गया: लगभग 75,000 महिलाओं का बलात्कार और अपहरण किया गया, लाखों लोगों की हत्या की गई, लाखों लोगों द्वारा जो नए घरों की तलाश में उपमहाद्वीप में चले गए। जिस चीज़ ने मुझे प्रभावित किया, और जो बाद में मेरे उपन्यास मोथ का धड़कता हुआ दिल बन गया, वह खामोशियाँ थीं जिन्हें मैं इन तथ्यों और संख्याओं के नीचे हलचल महसूस कर सकता था। विभाजन पुरुष राजनेताओं और इतिहासकारों, पुरुष लेखकों की सामूहिक कहानियों से कहीं अधिक था; मलबे में कहीं किनारे पर मौजूद लोगों का व्यक्तिगत, अक्सर खारिज किया गया इतिहास पड़ा था, और ये वे महिलाएं थीं जिन पर मैंने विशेष ध्यान दिया था। (रज़ाक, 2022)

इस प्ररिपेक्ष्य में, कई इतिहासकारों, साहित्यकारों व आलोचकों ने अपने नजरिये से विभाजन के बँटवारे के दर्द का यथार्थ चित्रण किया है। विभाजन को लेकर अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत दिए उनमें से एक है उर्वशी बुटालिया द्वारा लिखित पुस्तक ''द अदर साइड ऑफ़ साइलेंस'' जो विभाजन की त्रासदी का एक अहम पाठ है, जिसके माध्यम से अछूत महिलाओं और बच्चों की आवाजों को जीवंत करने का प्रयास किया गया है जो विभाजन के पीड़ा से त्रस्त होकर लम्बे समय तक मौन रही, यह पुस्तक खासकर विभाजन के परिणाम स्वरूप महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचार व उनकी पीड़ा को समाजिक, राजनैतिक और मानविय संदर्भ में समझने में मदद मिलता है।

राजेंद्र सिंह बेदी द्वारा लिखित लघु कहानी ''लाजवंती'' के अलावा और कई लघु कथाएं हैं जिनके माध्यम से साहित्यकार ने बड़े ही स्पष्ट तरीके से विभाजन की त्रासदी पर प्रकाश डाला है जिनमें से कुछ कहानी शीर्षक जैसे- ''ठंडा गोश्त'', ''खोल दो'', ''सिक्का बदल गया'', ''अमृतसर आ गया'', ''मैं जिंदा रहूंगा'', ''मेरी मां कहाँ'', ''पानी और पुल'', ''किसका इतिहास'', ''हिंदुस्तान छोड़ दो'', ''आखिरी तिनका'', ''उजड़ गया मेरा पड़ोसी'', ''तस्वीरें'', ''शरणार्थी'', ''अंधियारे का एक किरण किरण'', ''शहरी पाकिस्तान का'', ''सरहद के इस पार'', ''एक तवायफ का खत'', ''पतझड़ की आवाज'', ''जड़ें'', ''टोबा टेक सिंह'' इत्यादि। ये कथित कहानियां मुख्य रूप से विभाजन अराजकता से उत्पन्न मानवीय पीड़ा को बयान करती हैं।

इन कहानियों के अलावा, विभिन्न भाषाओं में विभाजन पर आधारित उपन्यास

लिखे गए जिनके आगे चलकर कई भाषाओं में अनुवाद किये गए। कुछ प्रसिद्ध उपन्यास जैसे– ''कितने पाकिस्तान''– कमलेश्वर, ''तमस''– भीष्म साहनी, ''ए विलेज डिवाइडेड''– मासूम रज़ा, ''सनलाइट ऑन ए ब्रोकन कोलन''– अत्तिया होसैन, ''दिस इज़ नॉट दैट डॉन''– यशपाल, ''एक अलिखित महाकाव्य''– मुहम्मद उमर, ''ए वूमन्स कोर्टयार्ड''– ख़दीजा मस्तूर, ''बस्ती''– इंतिज़ार हुसैन, ''पिंजर''– अमृता प्रीतम, ''सैवेज हार्वेस्ट''– मोहिंदर सिंह सरना, ''मैपमेकिंग''– देबजानी सेनगुप्ता, ''ए लाइफ लॉन्ग एगो''– सुनंदा सिकदर, ''एक अलगाव''– आंचल मल्होत्रा, ''ए बेंड इन द गंगाज़''– मनोहर माल्गोनकर और अन्य कई, जिसने भारत विभाजन के यथार्थ दशा और दुर्दशा और साथ ही इसके कई पहलुओं को उजागर किया है। कई प्रसिद्ध साहित्य को सिनेमा के माध्यम से भारत का विभाजन को बड़े ही उल्लेखनीय तरीके से चित्रित किया गया है जिनमे से ''झूठा सच'', ''तमस'', ''लाजवंती'', ''पिंजर'', ''ट्रेन टु पाकिस्तान'', ''गरम हवा'' आदि मुख्य हैं। ये साहित्य आधारित फिल्में बँटवारे के दर्द को बड़े ही मार्मिक तरीके से बयां करती है।

इसी प्रकार राजेंद्र सिंह बेदी के द्वारा लिखित प्रसिद्ध कहानी ''लाजवंती'' भी विभाजन से पीड़ित महिलाओं की अनकही पीड़ा पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डालती है। प्रस्तुत पेपर कथित कहानी की मुख्य पात्र लाजवंती के दृष्टिकोण से विभाजन में पीड़ित महिलाओं की मन:स्थिति को लैंगिक, सामाजिक और नारीवाद परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करता है। लाजवंती उन मौन महिलाओं के लिए आवाज बनते दिखाई देती हैं जो विभाजन में हुए शारीरिक व मानसिक हिंसा, अत्याचार, दंगे, बलात्कार, जनस्थानांतरण के अंधेरे में कहीं गुम और खामोश हो गई थीं। इस प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विभाजन में महिलाओं की दुर्दशा तथा उनके अनकही पीड़ा को चित्रित करना है।

बेदी इस कहानी की शुरूआत में बताते हैं कि विभाजन ने किस तरह से मानव हृदय को जख्मी कर दिया, जो देखने वालों को नहीं दिखाई देता है। वे कहते हैं कि ''बँटवारा हुआ और बेशुमार जख्मी लोगों ने उठकर अपने बदन पर से खुन पोछ डाला और फिर सब मिलकर उनकी तरफ मुतवज्जे हो गए जिनके बदन सही व सालिम थे, लेकिन दिल जख्मी''(बेदी, 59) इसी प्रकार अपने कहानी शीर्षक ''मेरी माँ कहाँ'' के माध्यम से विभाजन में हुए सांप्रदायिक दंगे का यथार्थ चित्रित करते हुए कृष्णा सोबती लिखती हैं, ''सड़क के किनारे–

किनारे मौत की गोदी में सिमटे हुए गाँव, लहलहाते खेतों के आस-पास लाशों के ढेर। कभी-कभी दूर से आती हुई 'अल्ला-हो-अकबर' और 'हर-हर महादेव'' की आवाजें। 'हाय, हाय'...'पकड़ो-पकड़ो'...'मारो-मारो'... (सोबती)। ये दोनो कहानियां विभाजन के दौरान हुए लोगो की निर्मम हत्याएं औरं दंगों पर प्रकाश डालती हैं। बेदी आगे लिखते हैं किस तरह विभाजन के उपरांत समाज के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया गया मगर महिलाओं की स्थिति पर ध्यान अब तक किसी का नहीं गया और गया भी तो सबसे अंत में जिसे बेदी अपनी कहानी के माध्यम से सामने लेकर आते हैं। वे लिखते हैं, ''गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में 'फिर बसाओ' कमेटियाँ बन गई थीं और शुरू-शुरू में बड़ी तंदही के साथ ''कारोबार में बसाओ'', 'ज़मीन पर बसाओ' और 'घरों में बसाओ' प्रोग्राम शुरू कर दिया गया था। लेकिन एक प्रोग्राम ऐसा था जिसकी तरफ़ किसी ने तवज्जोह न दी थी। वह प्रोग्राम अपहृत औरतों के सिलसिले में था, जिसका स्लोगन था 'दिल में बसाओ' (बेदी, 59)। शुरूआत से ही महिलाओं को समाज में पुरुषों के अधीन समझा गया है, उन्हें कम समझ गया जो पितृसत्तात्मक समाज की मुख्य विशेषता है। ''दिल में बसाओ'' प्रोग्राम को सक्रिय बनाने के लिए यह जिम्मेदारी कहानी के नायक सुंदरलाल को दी जाती है चुकि समाज को लगता है कि यह काम सुंदरलाल बखूबी कर सकता है क्योंकि उसकी खुद की पत्नी लाजो भी लापता है:

इस प्रोग्राम को हरकत में लाने के लिए मंदिर के पास मुहल्ले 'मुल्ला शकूर' में एक कमेटी कायम हो गई और ग्यारह वोटों की अकसरियत से सुंदरलाल बाबू को उसका सेक्रेटरी चुन लिया गया। वकील साहब सदर, चौकी कलाँ का बूढ़ा मुहर्रिर और मुहल्ले के दूसरे मौतबर लोगों का ख़याल था कि सुंदरलाल से ज़्यादा जॉफिशानी के साथ उस काम को कोई और न कर सकेगा। शायद इसलिए कि सुंदरलाल की अपनी बीवी अगवा हो चुकी थी और उसका नाम था भी लाजो, लाजवंती। (59)

सुंदरलाल अपहृत महिलाओं की वापसी के लिए ''दिल में बसाओ'' अभियान को सफल बनाने के लिए सक्रिय रूप से जुड़ जाता है और अभियान चलाने की जिम्मेदारी को वह पूरे समर्पण के साथ निभाता है। हालांकि कहानी की शुरूआत में, सुंदरलाल पितृसत्तात्मक मानसिकता, गुस्सैल और अत्याचारी पति के रूप में सामने आता है। लेकिन अपने आस-पास अन्य अपहृत महिलाओं

की दुर्दशा और उनकी व्यथा को देखकर सुंदरलाल का नजरिया महिलाओं के प्रति बदलते हुए दिखाई देता है। सुंदरलाल इन महिलाओं की पीड़ा को भी समझने का प्रयास करता है और साथ ही सुंदरलाल को लाजो की अनुपस्थिति में स्वयं के द्वारा लाजो के साथ की गई क्रूरता और दुर्व्यवहार याद आते हैं। सुंदरलाल को यह एहसास होता है कि इंसान का दिल कितना नाजुक होता। सुंदरलाल को अपनी गलतियों का एहसास होना और अपने आस पास लोगों के पीड़ा को समझना मानवीय पक्ष को उजागर करता है :

उसने अपने दुख से बचने के लिए लोकसेवा में अपने आपको गर्क कर दिया। इसके बावजूद दूसरे साथियों की आवाज में आवाज मिलाते हुए उसे यह खयाल जरूर आता, इसानी दिल कितना नाजुक होता है। जरा-सी बात पर उसे ठेस लग सकती है। वह लाजवंती के पौधे की तरह है, जिसकी तरफ हाथ भी बढ़ाओ तो कुम्हला जाता है। लेकिन उसने अपनी लाजवंती के साथ बदसलूकी करने में कोई भी कसर न उठा रखी थी। वह उसे जगह-बेजगह उठने-बैठने, खाने की तरफ बेतवज्जोही बरतने और ऐसी ही मामूली मामूली बातों पर पीट दिया करता था। (60).

यह इंसानी फितरत है कि खो देने के बाद किसी की अहमियत समझ आती हैं। सुंदरलाल का लाजवंती को मामूली बातों पर पीटना या स्पष्ट करता है कि सुंदरलाल लाजवंती को मात्र एक वस्तु समझता है और उसे अपने पुरुष प्रधान मानसिकता से बांधकर रखना चाहता है, बेदी जी इस कहानी के माध्यम से उस समय के पितृ सत्तात्मक समाज के चेहरे को सामने लेकर आते हैं। हालाँकि हमने देखा कि विभाजन का आतंक लाजवंती के वैवाहिक जीवन पर किस प्रकार किस प्रकार पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपहरण का शिकार होना पड़ा। प्रसिद्ध कहानी लाजवंती की नायिका लाजवंती के भीतर पारंपरिक मूल्यों की गहराई निहित है, जो उस समय के पारिवारिक और घरेलू आदर्श महिला की एक प्रतीकात्मक छवि है, वह है - ''और लाजो एक पतली शहतूत की डाल की तरह नाजुक सी देहाती लड़की'' (60)। इस कहानी के माध्यम से, राजेंद्र सिंह बेदी, विभाजन के दौरान अपहरण की गई महिलाओं की दुर्दशा का सचित्र वर्णन करते है। एक ओर, वे अपने दर्दनाक अतीत के बोझ से दबी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर उनके अपने ही परिवार और समुदाय अपनी गरिमा और सम्मान का हवाला देकर अस्वीकृत और बहिष्कृत कर देते हैं। महिलाओं के विरुद्ध ये अत्याचार

और हिंसा संपूर्ण मानव इतिहास में एक अंधकारमय अध्याय बने हुए हैं। ये कहानी विभाजन के दौरान और उसके बाद महिलाओं द्वारा सामना किए गए अपहरण, हिंसा और सामाजिक कलंक पर महिलाओं की दबी हुई आवाजों की आलोचना करती है। बेदी लाजवंती के माध्यम से अपहृत महिलाओं के दर्द को बयां करते हुए कहते हैं:

लेकिन मुविया औरतों में कुछ ऐसी भी थीं जिनके शौहरों, जिनके माँ बाप, बहन और भाइयों ने उन्हें पहचानने से इनकार कर दिया था। आख़िर वह मर क्यों न गई? अपनी इफ़्फ़त (पवित्रता) और इस्मत को बचाने के लिए उन्होंने जहर क्यों न खा लिया? कुएँ में छलाँग क्यों न लगा दी? वह बुज़दिल थीं जो इस तरह जिंदगी से चिमटी हुई थीं। सैकड़ों-हजारों औरतों ने अपनी इस्मत लुट जाने से पहले अपनी जान दे दी। लेकिन उन्हें क्या पता कि वह जिंदा रहकर किस बहादुरी से काम ले रही हैं, कैसे पथराई हुई आँखों से मौत को घूर रही हैं, ऐसी दुनिया में, जहाँ उनके शौहर तक उन्हें नहीं पहचानते। फिर उनमें से कोई जी ही जी में अपना नाम दोहराती; 'सुहागवंती सुहागवाली और अपने भाई को जम्मे-गफीर (भीड़-भाड़) में देखकर आखिरी बार इतना कहती ''तू भी मुझे नहीं पहचानता बिहारी? मैंने तुझे गोदी खिलाया था, रे!'' और बिहारी चिल्ला देना चाहता। फिर वह माँ-बाप की तरफ देखता और माँ-बाप अपने जिगर पर हाथ रखकर नारायण बाबा की तरफ देखते और निहायत बेबसी के आलम में नारायण बाबा आसमान की तरफ देखता जो दरअसल कोई हकीकत नहीं रखता और जो सिर्फ हमारी नजर का धोखा है। जो सिर्फ एक हद है, जिसके पार हमारी निगाहें काम नहीं करती। (62-63)

लाजवंती की पीड़ाएं समाज में मौजूदा पारंपरिक आदर्शों से सम्बंधित हैं उसका अपहरण न केवल शारीरिक उत्पीड़न है बल्कि उसकी पवित्रता, गरिमा और सम्मान पर भी हमला है। और और यह पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता को दर्शाता है जहां औरतों का इज्जत उसके जिस्म से जोड़ा जाता है! नासिरा शर्मा अपनी कहानी शीर्षक ''सरहद के इस पार'' में बड़े ही उल्लेखनीय ढंग से दिखलाया है कि किस तरह से औरतें आज भी धर्म के नाम पर सताई जाती हैं। इस कहानी में, नासिरा शर्मा कहती है दंगे के स्थिति में भी समाज को धर्म याद आता है और अपने इंसानियत को खत्म कर लड़की को इस रूप में देखाता है कि वह किस धर्म से है, ''लड़की हिन्दू थी और कमसिन भी। कर्फ्यू लगने

की आपा-धापी में यह लोग उसे उठा लाये थे। भीड़-भड़क्के में किसी को पता भी न चला, कौन किधर जा रहा है'' (शर्मा)। आगे अपहृत महिलाओं की वापसी को लेकर लिखते है जहां अन्य अपहृत महिलाओं के साथ लाजवंती की भी वापसी होती है। वापसी के बाद सुंदरलाल के मानसिकता को लेकर लाजो का मन कई सवालों से घिरा है, ''अब लाजो सामने खड़ी थी और एक ख़ौफ के जज्बे से काँप रही थी। वही सुंदरलाल को जानती थी, उसके सिवाय कोई न जानता था। वह पहले ही उसके साथ ऐसा सुलूक करता था और अब जबकि वह एक गैर मर्द के साथ जिदगी के दिन बिताकर आई थी, न जाने क्या करेगा?'' (बेदी, 68)। लाजो के मन में सुंदर लाल से डर और साथी सुंदरलाल से मिलने की खुशी यह दर्शाता है कि सुंदरलाल के फितरत को अच्छे से जानती थी और चूँकि वह किसी गैर मर्द के साथ रहकर आई है तो उसे अंदाजा था कि सुंदरलाल उसके साथ कैसा सुलुक करेगा! और लाजवंती का ऐसा सोचना बिल्कुल जाएज था जैसे कि हम देख चुके हैं कि सुंदरलाल किस तरह छोटी सी बात पर लाजवंती के साथ बुरा बर्ताव करता था:

...वह सुंदरलाल के बारे में इतना ज़्यादा सोच रही थी कि उसे कपड़े बदलने या दुपट्टा ठीक से ओढ़ने का भी ख़याल न रहा। वह हिंदू और मुसलमान तहजीब के बुनियादी फर्क दाएँ बुक्कल और बाएँ बुक्कल में इम्तियाज़ करने से कासिर रही थी। अब वह सुंदरलाल के सामने खड़ी थी और काँप रही थी, एक उम्मीद और एक डर के जज़्बे के साथ! (68)

लाजो के मन में सुंदरलाल की मानसिकता को लेकर डर इस बात की ओर इशारा करता है कि हमारे समाज में औरतों की स्थिति आज भी उतनी ही दयनीय है कि अपनी पीड़ा में भी उन्हें समाज और परिवार के ताने-बाने और पिछड़ी सोच को तवज्जो देते हैं। रखी रखी हुई औरतों को स्वीकार नहीं किया जाना सिर्फ किसी एक समाज की ही नहीं बल्कि यह एक विश्वव्यापी समस्या है! लेकिन लाजवंती को सुंदर लाल के बर्ताव को देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है क्योंकि वह लाजवंती को लाजो नहीं बल्कि उसे देवी कहकर पुकारता है:

सुंदरलाल, लाजवंती को अब लाजो के नाम से नहीं पुकारता था, वह उसे कहता था: ''देवी!'' और लाजो एक अनजान ख़ुशी से पागल हुई जाती थी। वह कितना चाहती थी कि सुंदरलाल को अपनी वारदात कह सुनाए और सुनाते-सुनाते इस कदर रोए कि उसके सब गुनाह धुल जाएँ। लेकिन सुंदरलाल लाजो

की वह बातें सुनने से गुरेज़ करता था और लाजो अपने खुल जाने में भी एक तरह से सिमटी रहती। अलबत्ता जब सुंदरलाल सो जाता तो उसे देखा करती और अपनी इस चोरी में पकड़ी जाती। जब सुंदरलाल उसकी वजह पूछता तो वह 'नहीं' 'यूँ नहीं' 'ऊँहूँ' के सिवा और कुछ न कहती और सारे दिन का थका-हारा सुंदरलाल फिर ऊँघ जाता अलबत्ता शुरू-शुरू में एक दफा सुंदरलाल ने लाजवंती के सियाह दिनों के बारे में सिर्फ इतना-सा पूछा था:

''कौन था वह?''

लाजवंती ने निगाहें नीचे करते हुए कहा: ''जमाल'' फिर वह अपनी निगाहें सुंदरलाल के चेहरे पर जमाए कुछ कहना चाहती थी। लेकिन सुंदरलाल एक अजीब-सी नज़रों से लाजवंती के चेहरे की तरफ देख रहा था और उसके बालों को सहला रहा था। लाजवंती ने फिर आँखें नीची कर लीं और सुंदरलाल ने पूछा:

'अच्छा सुलूक करता था वह?''

''हाँ!''

''मारता तो नहीं था?''

लाजवंती ने अपना सिर सुदरलाल की छाती पर सरकते हुए कहा ''नहीं!'' और फिर बोली: ''वह मारता नहीं था, पर मुझे उससे ज्यादा डर आता था। तुम मुझे मारते भी थे पर मैं तुमसे डरती नहीं थी अब तो न मारोगे?'' सुंदरलाल की आँखों में आँसू उमड़ आए और उसने बड़ी नदामत और बड़े तास्सफु से कहा, ''नहीं देवी! अब नहीं नहीं मारूँगा।'' (70)

लाजवंती का यह कहना कि ''तुम मुझे मारते भी थे पर मैं तुमसे डरती नहीं थी'' इस बात को स्पष्ट करता है कि औरतों को इस तरह पितृसत्तात्मक सोच के साथ बांध दिया जाता है कि उसके पीटे जाने पर भी उसे फक्र महसूस होता है जैसे कि लाजवंती को फक्र महसूस होता है जब सुंदर लाल उसे मारता है और यह इसे पुरुषों का हक समझता है! सुंदरलाल का लाजो के मन की पीड़ा को नजरअंदाज करना और उसी क्षण लाजो को ''देवी'' कहकर पुकारना कि, ''नहीं देवी! अब नहीं नहीं मारूँगा'' (70), सुंदरलाल के दोहरी मानसिकता पर सवाल उठाता है। इस तरह सुंदरलाल लाजो की मन की बात को नजरअंदाज करते हुए कहते हैं, ''जाने दो बीती बाते ! इसमें तुम्हारा क्या कुसूर है? इसमें कुसूर है हमारे समाज का, जो तुझ-ऐसी देवियों को अपने यहाँ इज़्ज़त की जगह

नहीं देता। वह तुम्हारी हानि नहीं करता, अपनी करता है।''(71) बेदी ने इस कहानी के माध्यम से महिलाओं की मन की पीड़ा को बया करने पर चुप करा देने पर सवाल उठाने की कोशिश की है। लाजवंती की मानसिक पीड़ा इस तरह उसके दिल में कैद होकर रह गई है, ''और लाजवंती की मन की बात मन ही में रही। वह कह न सकी सारी बात और दुबकी-दुबकी पड़ी रही और अपने बदन की तरफ देखती रही, जो कि बँटवारे के बाद अब 'देवी' का बदन हो चुका था, लाजवंती का न था। वह खुश थी, बहुत खुश। लेकिन एक ऐसी खुशी में सरशार, जिसमें एक शक था (71)। किसी घटना पर समाज में महिलाओं के चुप्पी पर मेलोडी राजक कहते है :

राजनीतिक विच्छेद के समय महिलाओं की चुप्पी पर विचार करना एक कठिन विषय है, और तब तो और भी अधिक जब वे महिलाएँ आपके समय और संस्कृति से बिल्कुल अलग समय और संस्कृति में रह रही हों। यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिए हजारों वर्षों के समाज और संस्कृति, अंतर्निहित धार्मिक विश्वास और सम्मान और शर्म जैसी पौराणिक धारणाओं को उजागर करने की आवश्यकता है। यह एक ऐसा कार्य भी है, जिसे वर्तमान, पश्चिमी संवेदनाओं से अलग दिमाग से करने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे चिपकना बहुत आसान होगा। कोई निर्णय नहीं हो सकता, केवल समझने की इच्छा हो सकती है। (रज़ाक, 2022)

जैसे-जैसे दिन बीतता है, लाजवंती का संदेह उसके जीवन की खुशियों को ख़त्म करता जाता है। इसलिए नहीं कि सुंदरलाल का व्यवहार पहले की तरह अपमानजनक और पुरुषवादी है, बल्कि इसलिए कि वह उसके प्रति बहुत दयालु और विनम्र है और उसका वर्तमान रवैया उसके स्वभाव के खिलाफ है। फिर भी, वह अपहरण से पहले वाली वही सुंदरलाल की लाजो बनना चाहती है। कहानीकार कमलेश्वर द्वारा लिखित विख्यात कहानी ''कितने पाकिस्तान'' मानवीय विस्थापन और अपने ही शहर से विस्थापित होने की मनोदशा, और विभाजन त्रासदी के गहरे प्रभावो पर प्रकाश डालता है। कमलेश्वर महिलाओं के स्वाभाव पर प्रकाश डलते हुए कहते है कि किस तरह,''औरतें कुछ नहीं भूलतीं, सिर्फ जाहिर करती हैं कि भूल गयी हैं। वे ऐसा न करें तो जीना मुश्किल हो जाए'' (कमलेश्वर)। कथित तौर पर, यह बात नायिका लाजवंती के स्वाभाव की ओर केन्द्रित करती है कि किसी लाजवंती सुदरलाल के बदलते स्वाभाव को भूल

नही पाती मगर उसे याद है कि सुंदरलाल उसे पुराने लाजो के समान उसे बात नही करता। इस तरह लाजवंती को सुंदरलाल के जीवन में अपने अस्तित्व पर संदेह है:

सुंदरलाल ने उसे यह महसूस करा दिया जैसे वह लाजवंती काँच की कोई चीज़ है, जो छूते ही टूट जाएगी और लाजो आईने में अपने सरापा की तरफ देखती और आख़िर इस नतीजे पर पहुँचती कि वह और तो सबकुछ हो सकती है, पर लाजो नहीं हो सकती। वह बस गई, पर उजड़ गई सुंदरलाल के पास उसके आँसू देखने के लिए आँखें थीं और न आहें सुनने के लिए कान प्रभातफेरियाँ निकलती रहीं और मुहल्ला मुल्ला शकूर का सुधारक रसालू और नेकीराम के साथ मिलकर उसी आवाज़ में गाता रहा : हाथ लाइयाँ कुम्हलांनी लाजवंती दे बूटे!'' (बेदी, 71)

लाजवंती के साथ हुई दुखद घटना एक ऐसी त्रासदी है जो कहीं भी हो इसके लिए सिर्फ वह व्यक्ति या परिवार जिम्मेदार नहीं होती बल्कि धर्म और समाज जिम्मेदार होता है, जो इस मानसिकता को बढ़ावा देता है औरत की प्रतिष्ठा उसके जिस्म से जुड़ी है और उसे एक वस्तु के समान व्यवहार किया जाता है। बेदी इस कहानी के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि औरतों को सिर्फ सामाजिक पहचान देना नहीं बल्कि उसके मन की स्थिति को समझना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जिसे सुंदर लाल समझना जरूरी नहीं समझता! इस कहानी में हमने देखा कि लाजवंती को देवी का दर्जा नहीं चाहिए वह अपने पुराने सुंदरलाल को वापस चाहती है और उससे वह सारी बातें कहना चाहती है ताकि उसके मन का बोझ हल्का हो और वह वाकई में जानना चाहती है कि सुंदरलाल ने उसे मन से स्वीकार किया है या नहीं! लाजवंती के माध्यम से बेदी यह भी बतलाना चाहते हैं की औरत को इंसान ही समझा जाए देवी बना देने से औरतों की पीड़ा या दर्द कम नहीं होता बल्कि दर्द सुनने और बांटने से कम होता है! इस तरह लाजवंती के मन की व्यथा और सुन्दरलाल के जिवन में अपने आस्तित्व को लेकर सारे सवालात लाजवंती के दिल में ही दफन रह जाते है, जिसे सुन्दरलाल ने लाजवंती के अपहरण के बाद देवी का अवतार दे दिया था। हालाँकि इस पुरुषवादी समाज में महिलाओं की पीड़ाओं और आघातों को अक्सर खामोश ही किया गया है। इस बँटवारे में महिलाओं पर किये गये शारिरिक व मानसिक हिंसा और उससे उत्पन्न हुई पीड़ा पर महिलाओं की खामोशी आज भी विभाजन विषय का एक

अहम मुद्दा है। इस प्रकार नायिका लाजवंती की कहानी आंतरिक पीड़ा से परे, पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की आस्तित्व, प्रतिष्ठा और उनके व्यक्तिगत पहचान के संघर्षो पर केंद्रित करती है। जैसे कि लाजवंती इस कहानी में अपहरणा के उपरान्त अपनी मनोदशा सुंदरलाल से व्यक्त करते हुए अपना आस्तिव, आत्म–सम्मान और व्यक्तिगत पहचान को पुनः प्राप्त करना चाहती हैं, जो समाज के रूढ़ीवादी मानसिकता को चुनौती देते हुए महिलाओं के संघर्षो में बदलाव को सहमति देती है !

सन्दर्भ

1. राजेंद्र सिंह बेदी. ''लाजवंती''. राजकमल प्रकाशन, 1994.
2. कमलेश्वर प्रशाद सक्सेना. ''कितने पाकिस्तान''. https://hindisamay.com/kahani/Vibhajan-ki-kahaniyan/Meri-man-kahan-hai.htm
3. नासिरा शर्मा, ''सरहद के इस पार''. https://hindisamay.com/kahani/Vibhajan-ki-kahaniyan/Sarhad%20ke%20is%20par.htm
4. कृष्णा सोबती. ''मेरी माँ कहाँ''. https://hindisamay.com/kahani/Vibhajan-ki-kahaniyan/Meri-man-kahan-hai.htm
5. ''मेलोडी राजक. जब खामोशी सुनी जाती है: भारत के विभाजन के दौरान महिलाओं की कहानियाँ सुनाना''. https://lithub.com/when-silence-is-heard-telling-the-stories-of-women-during-the-partition-of-india/

भारत विभाजन की त्रासदी और मराठी साहित्य (1947 से 2000 तक)

डॉ संदीप कदम *

साहित्य मानवीय भावनाओं और विचारों का एक कलात्मक आविष्कार है। अत: साहित्य के माध्यम से समकालीन अनुभव जगत, अनेक घटनाओं, मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 1940 का दशक बड़े पैमाने पर सामूहिक हिंसा की विशेषता है। 15 मार्च, 1939 को जर्मनी का चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण, द्वितीय विश्व युद्ध, भारत का विभाजन, हिरोशिमा-नागासाकी बम विस्फोट ऐसी अनेक घटनाएँ मानव विनाश का कारण बनीं। इस काल के दौरान भारत में हिंसा का कारण भारत विभाजन ये घटना बनी। भारत विभाजन की घटना समग्र भारतीय साहित्य के अनुभव जगत से सामने आई है। मराठी के कुछ लेखकों ने भारत विभाजन के दौरान और उसके बाद की भयावह स्थिति को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। कुछ ने चिकित्सा को पुस्तक रूप देने का भी प्रयास किया है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के दौरान और उसके बाद भारत में एक महान परिवर्तन हुआ। भारत-पाकिस्तान विभाजन से आज तक भारत में कई दंगे, हिंदू-मुस्लिम झगड़े और आतंकवादी माहौल बढ़ता जा रहा है। मराठी साहित्य ने इस वास्तविकता को कुछ हद तक समझने का प्रयास किया है।

मराठी उपन्यास

श्री. ना. पेंडसे अपने पहले उपन्यास 'एल्गार' (1949) में दो दोस्त रघु और कादर के रिश्ते, धार्मिक रिश्ते और संघर्ष की भीषण प्रकृति का चित्रण करते

* मराठी विभाग, साठये कॉलेज, विलेपार्ले, मुंबई, महाराष्ट्र मो. : 7304536312

है। पाकिस्तान युग के बाद पाकिस्तान के विचारों का समर्थन करनेवाले, हरे झंडे उठाने वालों के विचार कादर के मन मे आते है। उनकी मानसिक तनाव की स्थिति पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है। रघु और कादर की दोस्ती ख़त्म होने लगी। कौन सही है और कौन गलत है? ऐसी स्थिति निर्माण होती है। ये प्रश्न समय द्वारा निर्मित माहौल का हिस्सा है। उपन्यासकार रघु और कादर के बीच दोस्ती को बरकरार रखने की कोशिश करता है। लेकिन उस समय ये संभव नहीं था। उपन्यासकार ने आशावाद पैदा किया है कि हिंदू-मुस्लिम मित्रता उभरेगी। लेकिन यह सवाल अनुत्तरित है कि यह बेतहाशा आशावाद आज और भविष्य में किस हद तक सच होगा।

सच्चिदानंद शेवड़े का उपन्यास 'रक्तलांच्छन' पहली बार राजहंस 1990 के दिवाली अंक में प्रकाशित हुआ था। इसका पहला संस्करण दिसंबर 1991 में दीपरेखा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया था। प्रस्तुत उपन्यास अंतरधार्मिक युवकों नायक चन्द्रशेखर और रेहाना की प्रेम कहानी है; ये बँटवारे की खूनी कहानी भी है। इसमें विभाजन के दौरान हिंदू महिलाओं के बलात्कार, बच्चों की हत्या और हिंदुओं के नरसंहार का जिक्र है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास उन हिंदुओं को समर्पित किया है जो विभाजन के क्रूर अत्याचारों को भूलने की कोशिश कर रहे हैं। समर्पण पत्र में वह कहते हैं, 'यह उन हिंदू लोगों के सामने प्रस्तुत करने वाला पहला उपन्यास है जो उन नेताओं की बेशर्मी को सुनते हैं जो सब कुछ भूल जाने के लिए कहते हैं, कई हिंदू महिलाओं के साथ बलात्कार, पुरुषों और बच्चों के साथ क्रूर दुर्व्यवहार, और नरमेधों की क्रूरता को भूलने के लिये कहनेवाले नेताओं की गैरजिम्मेदारी और वो बाते सुनकर सबकुछ भुलाने की कोशिश करनेवालों को यह उपन्यास समर्पण।''रक्तलांच्छन' उपन्यास विभाजन के दौर को दर्शाता है और विभाजन के कारण विस्थापित हुए लोगों की कहानियाँ और अनुभव बताता है।

यह चिंताजनक तथ्य है कि विभाजन के समय से लेकर अब तक कश्मीर में भयानक अत्याचार हो रहे हैं। वहां आज भी कुछ हद तक बँटवारे जैसी स्थिति मौजूद है। लोग (हिन्दू अल्पसंख्यक) कश्मीर से जम्मू की ओर पलायन कर रहे हैं। आज यह हकीकत है कि स्वतंत्र भारत में अत्याचारों का सिलसिला जारी है। अगर आज इतना भयावह माहौल है तो विभाजन के समय कैसा रहा होगा? ये विचार परेशान करने वाले है। 'रक्तलांच्छन' उपन्यास में उस समय की स्थिति

और शासकों का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के संदर्भ में बाला साहब ठाकरे कहते हैं, ''मुसलमानों ने धर्म के नाम पर राजनीति करके इस देश को विभाजित किया है। इसे गांधी-नेहरू ने हवा दी थी।'' वे आगे कहते हैं, ''विभाजन का घाव हिंदू समाज पर गहरा है। कुछ घाव केवल तभी महसूस होते हैं जब उन्हें कभी ठीक नहीं होने दिया जाता। यह घाव हरा पाकिस्तान और बांग्लादेश के साथ अखंड भारत निर्माण होणे तक भरना नही चाहिए। मधुमेह से ग्रस्त इंसान की तरह इसे जल्दी ठीक नहीं होने देना चाहिए। अखंड हिंदुस्तान के निर्माण के बाद इस घाव को भरना चाहिए।''[1] प्रस्तुत उपन्यास ने इस तथ्य से अवगत कराया है कि विभाजन काल और वर्तमान समय के बारे में हर किसी को जागरूक होने की जरूरत है। साथ ही आज हर हिंदू को जागते रहने का संदेश दिया है।

व्यंकटेश माडगुळकर का उपन्यास 'वावटळ' पहली बार 1964 में मौज पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित किया गया था। प्रस्तुत उपन्यास की शुरूआत महात्मा गांधी की हत्या के बाद भड़के दंगों से होती है। इस उपन्यास में तत्कालीन महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के घर जलाने का जिक्र है। उपन्यास में भारत के विभाजन और उसमें गांधीजी की भूमिका तथा गांधीजी की हत्या के बाद भड़के दंगों पर चर्चा की गई है। साथ ही, विशेषकर महाराष्ट्र में इस दंगे के दूरगामी परिणाम ब्राह्मण समुदाय को कैसे भुगतने पड़े, इसका चित्रण 'वावटळ' उपन्यास में किया गया है। वर्तमान दंगे में स्वघोषित भेड़चाल देखने को मिली। उन्होंने कानून अपने हाथ में लिया और गलतफहमियां, अफवाहें, नफरत भरी बयानबाजी की और स्वार्थी कारणों से घरों और दुकानों को लूट लिया। प्रस्तुत उपन्यास के कथानक में उपन्यासकार ने बताया है कि किस प्रकार गाँव में आग लग गयी। तालुका के ब्राह्मण, मामलेदार, जज साहब डर के मारे भाग गये। लोगों को ऊनका पता ही नही चला, अधिकारियों से आदेश न मिलने के कारण पुलिस और पुलिसकर्मी कुछ नहीं कर सके। वे बस आश्चर्य से देखते रहे और एक या दो घंटे के भीतर गांव में पैंतीस घर जला दिए गए।' (वावटळ, पृ. 83) यह उपन्यास कई लोगों और उनके मानवीय चेहरों को सामने लाता है। प्रस्तुत उपन्यास मे गांधीजी की हत्या और उसके बाद हुए दंगों के अनुसार, उस समय के समाज, लोगों ने गरीब-अमीर विभाजन के परिणामों को निर्धारित किया। इस मौके पर गरीब अमीरों के प्रति अपना गुस्सा जाहिर करते नजर आते हैं। कुल मिलाकर इस उपन्यास

में दंगों के सामाजिक-राजनीतिक पहलुओं को खुलकर और बेबाकी से दिखाया गया है। इसके अलावा उनके उपन्यास 'सत्तांतर' (1982) में वानर जनजाति के प्रतीकों के माध्यम से मानव जनजाति के संघर्ष को दर्शाया गया है। श्री.रा. बिवलकर का उपन्यास 'सुनीता' विभाजन काल के दौरान पूर्व बंगाल की स्थिति, नरसंहार की वास्तविकता को चित्रित करता है।

वसंत वरखेड़कर का उपन्यास 'प्रतिनिधि' (1972) स्वतंत्रता-पूर्व से लेकर स्वतंत्रता-पश्चात काल की अनेक घटनाओं की वास्तविकता का चित्रण करता है। राजनीति, राजनीतिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन यह उपन्यास भारत के विभाजन का कोई व्यापक सन्दर्भ देता नहीं दिखता। इसके अलावा ग. प्र. प्रधान जी का 'साता उत्तराची कहानी' यह उपन्यास 1940 से 1980 के दौर की राजनीतिक घटनाओं और राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है। पत्र में कई राजनीतिक घटनाओं, उनके पीछे के तनाव को व्यक्त किया गया है। लेकिन इसमें विभाजन के कारण, शासकों की भूमिका, उस समय की स्थिति पर कोई टिप्पणी नहीं की गयी है। रंगनाथ पठारे ने 'ताम्रपट' उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक परिवर्तनों और सामाजिक-राजनीतिक स्थिति की पड़ताल की है। इस उपन्यास का कालखंड 1942 से 1980 तक है। प्रस्तुत उपन्यास के कालखंड पर विचार करें तो भारत का विभाजन, उससे जुड़ी राजनीति को उपन्यास में व्यापक रूप से शामिल किया जाना चाहिए था; लेकिन ऐसा नहीं होता।

मनोहर ओक का उपन्यास 'चरसी' है। (प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं है, मनोहर ओक का मृत्यु 1993) इस उपन्यास मे शहर के मोहल्लों, लोग, पशुवत की तरह रहने वाले लोग आदि बाबीओं का जिकर किया है। विशेषकर मुसलमानों के जीवन, उनकी भाषा से ये संबंधित है। उपन्यास में मुंबई के दंगे जैसे माहौल, विभाजन के बाद हुए दंगों आदि का जिक्र है। इसके अलावा हमिद दलवाई के उपन्यास 'इंधन' (1965) में भी हिंदू-मुस्लिम संदर्भ खींचा गया है। समाज (कुलवाड़ी, कुनबी, बौद्ध) गांव की परंपराओं को तोड़ने का प्रयास करता है। समग्र हिंदू-मुस्लिम संदर्भ उपन्यासकार द्वारा दिया गया है। महाराष्ट्र में हिंदू और मुसलमानों के बीच एक खास तरह का तनाव बना रहता है। आज मुख्य रूप से हिंदू और मुसलमानों के बीच दरार कौन पैदा कर रहा है? ये ज़हरीले बीज कौन बो रहा है? इस जहर को बोने वालों की भूमिका क्या है? आज इस पर विचार करना जरूरी है।

मराठी कहानियाँ

व. पु. काळे इनका 'काही खरं काही खोटं' (1984) इस कहानी संग्रह में कहानी 'शब्द' ये स्वतंत्रता-पूर्व, राजनीति, राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र, वफादारी, सामाजिक भागीदारी, चक्रीयता, भीड़ शासन से संबंधित है। साथ ही विभाजन और बँटवारे को लेकर गांधीजी के विचारों का भी जिक्र करती है। निवेदक कहता है, 'यदि आटपाटनगर का विभाजन होने वाला है तो सबसे पहले मेरे शरीर के दो टुकड़े किये जाएंगे।' लेकिन हकीकत में ऐसा नहीं हुआ। (काही खरं काही खोटं, पृ. 169) प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानी 'हे असचं चालयचं' राजा-प्रजा के सूत्र पर बनी है और इसमें 'राजा' की अवधारणा को चिकित्सकीय रूप से समझाया गया है। भगवान कहते हैं, 'आप खुले हैं। लोगों को इसकी परवाह नहीं है कि देश की गद्दी पर कौन है। जो उनके हृदय के सिंहासन पर है, वही उसका राजा है। उस राजा को हर चीज़ में रियायत मिलती है।' (काही खरं काही खोटं, पृ. 40) इस कहानी के माध्यम से एक राजनीतिक टिप्पणी है। साथ ही 'टक्कल ते शक्कल' कहानी में राजा, मुखिया, नगर के शासन आदि विषयों पर चर्चा की गई है। राजा का प्रधानमंत्री के प्रति अगाध विश्वास, मंत्रिमंडल के विदेशी दौरों, राजकोष पर दबाव, करों, उत्पादकता पर चर्चा की जाती है। कुल मिलाकर व. पु. काळे की कहानियों के माध्यम से भारतीय राजनीति, शासकों, आम लोगों, राजनीतिक घटनाओं और भारत के विभाजन से संबंधित हैं।

राजन खान ने अपने लेखन में स्वतंत्रता-पूर्व भारत में हिंदू-मुस्लिम समाज के बीच संबंधों, ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदू-मुस्लिम संबंधों और शासकों द्वारा हिंदू-मुस्लिम संबंधों की स्वार्थपरता पर विचार किया है। 'चाचपड', 'संसार', 'सध्या असं सार चालू आहे!' जैसी कहानियाँ इस संबंध में देखी जा सकती हैं। इसके अलावा राजन खान के 'मांजर' (1995) कहानी संग्रह की कहानी 'मांजर' में हिंदू-मुस्लिम समाज के बीच के संघर्ष को उजागर किया गया है। सदियों से मिलजुल कर रहने वाला हिंदू-मुस्लिम समुदाय अब हिंसक होता जा रहा है। और वे इस तथ्य को दृढ़तापूर्वक चित्रित करते हैं कि उनकी मानवता लुप्त होती जा रही है। मुख्य रूप से इस लंबी कहानी के माध्यम से वह हिंदू-मुस्लिम संघर्ष, अस्तित्व के संघर्ष के कारणों का पता लगाना चाहते हैं। भारत का विभाजन इन्हीं कारणों में से एक है। इसका जिक्र यहां करना जरूरी है।

बशीर मुजावर 'खालची वस्ती', 'सुंभ आणि पीळ' कहानियों में जाति व्यवस्था,

धार्मिक व्यवस्था और नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण होने वाले संघर्ष और होने वाले समझौतों को प्रस्तुत किया है। गंगाधर गाडगिल की कहानी 'किडलेली माणसं' मुंबई में दंगों, बर्बरता और लूटपाट से संबंधित है। उन्होंने मुंबई की 'चाल' में रहने वाले लोगों की मानसिकता को दिखाया है। इसी तरह एहतेशाम देशमुख के कहानी संग्रह 'संदर्भ' (1995) की कहानी '6 दिसंबर ते 10 मार्च' में अयोध्या कांड की पृष्ठभूमि में हुए दंगों को दर्शाया गया है।

पंकज कुरुलकर का 'साकी: बार एंड रेस्टोरेंट' (2000) कहानियों का एक संग्रह है। उन्होंने मुंबई महानगर को करीब से देखा और अनुभव किया है। अत: मुम्बई उनके लेखन का विषय बना हुआ है। उनकी कहानियों के माध्यम से मुंबई महानगर की ज्वलंत चेतना व्यक्त होती है। उनकी कहानी 'दंगल' मुंबई में असुरक्षा को उजागर करती है। इस कहानी का सूत्रधार कहता है, 'धर्म को अफ़ीम की गोली समझा जाता था लेकिन आज हर जगह धर्म की शक्ति बढ़ती जा रही है। क्या लोग एक प्रकार की असुरक्षा के कारण वापस धर्म की ओर लौट रहे हैं?' (साकी: बार एंड रेस्टोरेंट, पृ. 45) बाबरी मस्जिद के विध्वंस पर पूरे देश के साथ-साथ मुंबई क्षेत्र में भी प्रतिक्रिया हुई। 'दंगल' की कहानी दिखाती है कि कैसे हिंदू और मुस्लिमों के बीच दंगे कराए जाते हैं और कैसे आम लोगों को मारा जाता है। पपी भोंसले का प्रश्न विचारोत्तेजक है क्योंकि प्रस्तुत कहानी में पात्र पपी कहता है, 'इस देश में मुस्लिम बहुल इलाकों में हमेशा दंगे क्यों होते हैं?' (साकी: बार एंड रेस्टोरेंट, पृ.54) 'घर' कहानी में कुरुलकर 1992 के बम विस्फोट का जिक्र करते हैं। एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर रहने वाले हिंदू-मुसलमान अब एक-दूसरे की ओर देखते भी नहीं थे। 'घर' कहानी का सूत्रधार कहता है, 'हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे की थाली में खाना खाने वाले आज एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। थाली में खाना बंद हो गया, दोनों के बीच दूरियां-संदेह-भय पैदा हो गया।' (साकी: बार एंड रेस्टोरेंट, पृ. 92) बंबई में हमेशा से भय का माहौल रहा है। मुंबई में हुए बम धमाकों से कई लोग प्रभावित हुए। मुस्लिम समुदाय के साथ भी ऐसा ही हुआ। उन्हें एक बार फिर संदेह की दृष्टि से देखा गया। 'घर' कहानी की एक पात्र शबनम को पुलिस ने बम विस्फोट में शामिल होने के संदेह में गिरफ्तार किया। पुलिस ने उसे गंभीर रूप से प्रताड़ित किया और रिहा कर दिया। इस तरह एक वेश्या को वापस सड़कों पर लाया जाता है। विभाजन ने मुख्य रूप से हिंदू-मुस्लिम दिमागों

को विभाजित कर दिया। हमें कौन सी भूमि स्वीकार करनी चाहिए या हमें दूसरी भूमि पर जाने के लिए मजबूर करने से हिंदू-मुस्लिम नफरत बढ़ी। वस्तुत: यदि यह भी कहा जाए कि इसे शासकों ने बढ़ाया था, तो भी इसमें अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। दोनों धर्मों के कट्टरपंथ ने आम लोगों के बीच दरार पैदा कर दी। बाबरी मस्जिद के विध्वंस और उससे भड़के दंगों के साथ-साथ सिलसिलेवार बम विस्फोटों ने महाराष्ट्र में इस संदेह को हवा दी। धार्मिक पुनरुत्थान की प्रकिया के परिणामस्वरूप, दंगों, बम विस्फोटों और आतंकवादी हमलों ने विशेष रूप से महाराष्ट्र के महानगरों को प्रभावित किया है। भारत के विभाजन के दौरान विभिन्न धर्मों की महिलाओं के साथ बलात्कार और लोगों के कत्ले के कुछ संदर्भ पंकज कुरुलकर, समर खड़स की कहानियों से आते हैं। उनकी कहानी में बाबरी मस्जिद, राम मंदिर का जिक्र है। कुल मिलाकर, कहानीकार अत्यधिक असुरक्षा व्यक्त करते है।

मराठी नाटक

मधुसूदन कालेलकर का नाटक '15 अगस्त' (पहली बार 12 मार्च 1950 को भारतीय विद्या भवन में प्रदर्शित) देशभक्ति को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत चार अंकों का संगीत नाटक है जो राजनीति और विभाजन से संबंधित है। इस नाटक में ताज, मुमताज, रोशन, अनवर, चाचा सभी मुस्लिम पात्र हैं। और वे केवल मराठी भाषा में ही संवाद करते हैं। प्रस्तुत नाटक विभाजन के बाद हुई मानवता की हानि को निर्देशित कर भाईचारे का संदेश देता है। नाटककार अपने मनोगत में कहता है, ''धर्मों के बीच एकता उन चीजों में से एक है जिसकी आज भारत को बहुत आवश्यकता है। यदि एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाना है, तो धर्म के खुले बंधनों को तोड़ देना चाहिए और फेंक देना चाहिए''[2] देश के विकास के लिए कट्टरता की भावना से दूर रहना आवश्यक है। हमें एक धर्म की बात कहनी चाहिए। यही नाटक में सिद्धांत है। नाटक का समय 14 अगस्त 1947 की रात और स्वतंत्रता दिवस के जश्न का निर्देशन करता है। स्वतंत्रता के साथ लोकतंत्र की शुरूआत, गांधी की हत्या का संदर्भ भी देता है। जगदीश की मां, पिता और बहन को मुसलमानों ने जिंदा जला दिया था। जगदीश बदला लेना चाहता है। इस नाटक में नजीर द्वारा ताज को पत्र भेजा गया है उस में हिंसा, लाशें, मकानों के खंडहर, अधजली लाशों का जिक्र किया गया है। भारत में

हिंदू सुरक्षित हैं और 15 अगस्त खुशी से मनाया जा रहा है, लेकिन पाकिस्तान में हिंदू (अल्पसंख्यक) जश्न नहीं मना पाएंगे।

चाचा पात्र कहता हैं,

'चाचा: भारतीय राज्यों में मुसलमानों को चिंता करने का कोई कारण नहीं है। और आज तुमने देखा कि वे प्रसन्न हैं। लेकिन ये ख़ुशी सच्ची होनी चाहिए। यहां रहने वाले हर व्यक्ति के लिए यह मेरा देश है। मुझे विश्वास करना होगा कि मैं यहीं जिया और यहीं मरूंगा। उन्हें भारत सरकार को अपनी सरकार मानना चाहिए। उन्हें तिरंगे झंडे को अपनी जान से भी प्यारा समझना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो सभी लोग सुख से रह सकेंगे।' (पंद्रह अगस्त, पृ. 15)

यह नाटक संदेश देता है कि हमें हिंदू या मुस्लिम से आगे बढ़ना चाहिए।

'अ-पूर्व बंगाल' (पहली बार 24 जनवरी 1953 को नाट्य निकेतन संस्था द्वारा भारतीय विद्या भवन, मुंबई में प्रस्तुत किया गया) यह नाटक भार्गवराव विट्ठल वरेरकरजी का है। यह नाटक मो. ग. रांगणेकर, मॉडल हाउस, मुंबई द्वारा 1953 में प्रकाशित किया। नौखली में नरसंहार हुआ। उसके शासनकाल में पूर्व बंगाल में कई परिवार नष्ट हो गये। साथ ही, कई महिलाओं ने अपना धर्म और परिवार खो दिया। उनका जीवन समाप्त हो गया। प्रस्तुत नाटक कुछ हद तक सत्य घटना पर आधारित है। नाटककार का कहना है, ''इस नाटक में देखे गए तीन अंक वास्तविक घटनाओं पर आधारित हैं। चौथा अंक कुछ हद तक काल्पनिक है।''[3]

प्रस्तुत नाटक में महिलाएँ महाराष्ट्रीयन महिलाओं की तरह लड़ाकू हैं, जो परिस्थिति का सामना करती हैं। जैसे जीजाबाई, मिल मजदूरों की महिलाएं आदि। बांग्ला साहित्य में हिंदू नारी को सहिष्णु, पतिपरायण, अन्याय का विरोध न करने वाली, और अबला के रूप में चित्रित किया गया है। (शरदबाबू के उपन्यास 'पाथेरदाबी' और 'शोध प्रश्न' इसके अपवाद हैं, जहां विद्रोही महिला है लेकिन वह हिंदू नहीं है)

नाटक के आरंभ में विनाश का चित्रण गीत के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

''काय हा अनर्थ प्रभो।
जाहला घरोघरी।।
पाहसी विनाश कसा।

तुझीच लेकरें आम्ही।।धृ।।
विरली प्रेम भावना।
नुरल्या संवेदना।
भग्न झाली हृदये। हा अनर्थ पाहुनी॥1॥ (अ-पूर्व बंगाल, पृ.13)

प्रस्तुत नाटक में पात्र जगदीश द्वारा उस समय के हिंदुओं की धार्मिक कट्टरता को दर्शाया गया है। ऐसे भयावह माहौल में भी जगदीश अपने परिवार की बहन को धर्मपरायण के कारण अजीत के साथ नहीं भेजता। साथ ही, वह अपने परिवार की मां, बहन और पत्नी पर बलात्कार होने के कारण ऊनका घर मे स्वीकार नहीं करता है। ऐसा लगता है कि ऐसी सख्ती उनकी धर्म संबंधी अवधारणा से आई है। उस समय की हत्याएं, महिलाओं के साथ बलात्कार, अत्याचार भयानक थे; कई कलाकृतियों में इसका चित्रण किया गया है। इसके अलावा, कई हिंदू परिवार अपने धर्म की महिलाओं (जिनके साथ दुर्व्यवहार किया गया था) को दोबारा धार्मिक कारण बताते हुए अपने घरों में स्वीकार नहीं करते थे, यह तथ्य 'अ-पूर्व बंगाल' नाटक में परिवार के माध्यम से देखा जा सकता है।

सतीश आळेकर का नाटक 'महापूर' (पहला प्रयोग, 9 नवंबर 1975) एक दुखद नाटक है। गोविंदा युवा नायक के आवेग, आक्रोश, मानसिकता के बारे में एक व्यंग्यात्मक नाटक है। मन के दबाव, उत्पीड़न और दुविधा की बाढ़ नाटक में केंद्रित है। प्रस्तुत नाटक में आजादी के बाद के युवाओं की पहली पीढ़ी को दर्शाया गया है। विशेष रूप से उनकी मानसिक संरचना के कई संदर्भ आये हैं। नायक के बजाए युवा पीढ़ी के माता-पिता पहले भी आंदोलन, सत्याग्रह, कांग्रेस की राजनीति, विभाजन का अनुभव कर चुके हैं। आज़ादी के बाद की यह पीढ़ी अतीत से चिपकी हुई लगती है। यह बात 'महापूर' और 'प्रेमाची गोष्ट' से भी प्रतीत होती है।

श्याम मनोहर के नाटक 'प्रेमाची गोष्ट?' (पहला प्रयोग, 25 अप्रैल 1997, बालगंधर्व रंगमंदिर, पुणे) में प्रवेश के पहले एपिसोड में चरित्र जगदीश की मुसलमानों के प्रति दुविधा उसके व्यवहार में दिखाई देती है। जगदीश के मन मे मुसलमानों के प्रति जो घुस्सा दिखाई देता है, वो सालों से हिंदुओं के मन मे है। नाटक में हिंदू-मुस्लिम नफरत का ताना-बाना बुना गया है। यहां मुसलमानों के खिलाफ हिंदुओं का गुस्सा देखा जा सकता है। अंक एक मे प्रवेश दो मे जगदीश कहते हैं, 'मुसलमानो इस भूमि पर प्यार करो नहीं तो देश छोड़ के चले जाए।' (प्रेमाची गोष्ट, पृ. 14)

आज़ादी के आसपास पैदा हुई पीढ़ी (पचास से अधिक) पात्र केबी का कहना है कि उनकी पीढ़ी बहुत तनाव में है। यह तनाव आज भी मौजूद है। स्वतंत्रता-पूर्व से लेकर स्वतंत्रता-पश्चात काल तक सामाजिक और व्यक्तिगत यथार्थ को घेरने वाले कारक धर्म और जाति आज भी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं, यह यथार्थ यहाँ व्यक्त हुआ है। समाज 'हम' और 'तुम' के बीच फंसता जा रहा है। 'हम' और 'तुम' से लेकर हर कोई मानता है कि 'डर' पैदा हो गया है। आज चारों ओर डर और डर फैलाने वाला समाज नजर आता है। बँटवारे और दंगों के दौरान भी यही डर देखने को मिला। आज भी वहीं है।

उस काल के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के समय में स्वतंत्र भारत के समाज ने अनेक सपने देखे। 'बहुत कुछ घटित होने के बावजूद' इस युग की पीढ़ी को विघटन की भावना महसूस हुई। हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदाय को पराजय का अहसास हुआ। इसीलिए वे अतीत को भूल नहीं पाते। वास्तव में, यह भीतर से पूरी तरह से हल चुके है। आज के पीढ़ी के कुछ युवा कट्टर धर्मांध होते जा रहे है। 1990 के बाद हुए दंगों ने उनमें और भी दरार पैदा कर दी है। इसीलिए 'प्रेमाची गोष्ट' में जगदीश गिरी हुई दीवार के पीछे के देवता को भावपूर्ण प्रणाम करते हैं और बगल में पड़ी कब्र को गुस्से से घूरते हैं और कब्र को पत्थर मारते हैं। और डर के कारण भाग भी जाता है। आज के युवाओं के मन की इसी दुविधा को यहां उजागर किया गया है। इसे आज की हकीकत के तौर पर दर्ज किया जा सकता है।

जावेद क़ुरैशी पाशा के नाटक 'चित्कार' (1993) में देश की नैतिकता ख़त्म होती जा रही है, यह दिखाया गया है। प्रस्तुत नाटक में कलाम धर्म के नाम पर होने वाले हिंदू-मुस्लिम दंगों से व्यथित है। उनका इकलौता बेटा हिंदू-मुस्लिम दंगे में मारा गया। झोपड़ी को तोड़ दिया गया। इसलिए वह काफी हताश हैं। उनका मानना है कि, 'अब यह देश सबको लेकर बनना चाहिए।' वह अमित से ऐसा कहता भी है। वह मानवता पर विचार करने का प्रयास करता है। शासकों ने अक्सर स्वार्थवश दंगे करवाए और अनेकों ने उनमें भाग लिया। और आम लोगों को मार डाला। जावेद क़ुरैशी पाशा ने हिंदू-मुस्लिम दंगों के पीछे के राजनीतिक दायरे और दंगों के पीछे की हकीकत को पेश करने की कोशिश की है।

मराठी नाटकों में, शफ़ाअत खान की 'राहिले घर दूर माझे' (पहली बार, 1995 में प्रयोग) भारत-पाकिस्तान विभाजन, तबाही और भावनात्मक गुस्से का मिश्रण प्रस्तुत करती है। विभाजन के दौरान हिन्दू मुस्लिम परिवारों को कष्ट सहना पड़ा। दंगों में उन्होंने अपना सब कुछ खो दिया। इसके बावजूद कुछ लोगों ने हिंदू-मुस्लिम इंसानियत कायम रखी। इसी का दर्शन इस नाटक में महिला आजी (माई) और हमीदा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा उनके नाटक 'शोभायात्रा' (पहला प्रयोग 1999 में, मुंबई में) में कहा गया है कि आजादी के पचास साल बाद भी मुस्लिम, दलित, गरीब समाज को संदिग्धों की तरह जीना पड़ता है। स्वार्थी राजनेता साम्प्रदायिक दंगे कराकर निर्दोष लोगों की हत्या करते हैं। प्रस्तुत नाटक में, छोटया यह पात्र आतंक के दोरान संदिग्ध व्यक्ति का जीवन जीता है। उसे सपने आते रहते हैं जिनमें वह पुलिस, उनकी पिटाई का अनुभव करता है। इसे यहां समकालीन भारत के भयावह माहौल से उजागर किया गया है। नाटक अतीत और वर्तमान को जोड़कर सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। शफ़ाअत खान के नाटक दंगों, हिंदू-मुसलमानों के बीच बढ़ते तनाव, और उनकी स्थिति का वर्णन करते हैं।

मराठी कविता

कवि बा. सी. मर्ढेकर के कविता संग्रह 'काही कविता' (1947) मे 'एक', 'दोन', 'सहा', 'भेव' कविताओं में आजादी के बाद विभाजन के बाद के दंगों जैसी स्थिति की वास्तविकता को दर्शाता है। भारत ने विभाजन काल, द्वितीय विश्व युद्ध, मुंबई बम विस्फोट, 1992 के दंगों आदि के दौरान दंगों का अनुभव किया है। कवि अपने आसपास की हिंसा से परेशान है। वह कहता है,

'अरे हिंदू मुसलमान। प्राण देशावरी कुर्बान;
परि यादवी ही लांछन। अल्ला राम॥' (काही कविता, सहा)

कवि मर्ढेकर ने अपनी कविताओं में स्वातंत्र्योत्तर काल की दहलीज पर खड़े यथार्थ को प्रखरता से प्रस्तुत किया है।

सतीश कालसेकर के कविता संग्रह 'विलंबित' (1997) की कविताओं में 'रात्रितून अशान्त', 'चिखल', 'खातुनबी परत आल्यावर', 'नजमा' में गंभीरता दिखती है। उनकी कविता यथार्थ का चित्रण करती है। यह कल की वर्तमान

घटनाओं, दंगों के परिणामों को संदर्भित करती है, जो आज अनुभव किए जा रहे हैं। इसके अलावा, रामदास फुटाने के कविता संग्रह 'भारत कधी कधी माझा देश आहे' (1997) की कुछ कविताएँ भारत, भारत की राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता, कश्मीर मुद्दा, बांग्ला शरणार्थी जैसे विषयों पर व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। 'भारत कधी कधी माझा देश आहे', 'ही अमुची भारतमाता', 'आज ना उदया', 'अधोलोक' कविताएं 'कल' और 'आज' भारत के माहौल और राजनीति का वर्णन करती हैं।

'आज ना उदया' कविता में कवि कहते हैं,

'लाखो बांगला निर्वासितानी
संपूर्ण आसाम व्यापला आहे
निधर्मी सत्ताधीश दिल्लीत
ऐषारामात झोपला आहे?' (विलंबित, आज ना उद्या)

और 'अधोलोक' कविता में वे कहते है,

'माझं माझं म्हणावं' असं
देशात काय उरलं आहे?
पावलापावलाखाली पाकने
आरडीएक्स पेरलं आहे' (विलंबित, अधोलोक)

मुंबई जैसे महानगर में कब दंगे की स्थिति पैदा हो जाए इसकी कोई शाश्वती नहीं है। यहां के लोग दंगों के डर के साथ जीते हैं। इसे सतीश कालसेकर ने 'रात्रितून अशान्त' कविता में प्रस्तुत किया है। वो कहते हैं,

''इथं माणसं झोपतात दु:खाना उशाशी घेऊन शांत
आयुष्यभर अखंड कष्टांच्या उलेथापालेथीत
किंचाळून कधीतरी उठतात अचानक झोपेत
कोसळतात रक्ताच्या थारोळ्यात बेवारस'' (विलंबित, रातीतून अशांत)

तत्कालीन कांग्रेस नेता ने भारत का विभाजन कर दिया। यह चर्चा आवश्यक हो जाती है कि वास्तव में यह विभाजन क्यों और किसके द्वारा हुआ। साथ ही क्या तत्कालीन कांग्रेस नेता ने इस विभाजन के भावी दुष्परिणामों के बारे में नहीं सोचा? यह प्रश्न आज भी ज्वलंत बना हुआ है। भारत के विभाजन के बाद से कई भारतीय विचारकों और लेखकों ने विभिन्न कोणों से भारत के विभाजन पर चर्चा की है। उन्होंने महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पंडित नेहरू

आदि नेताओं के नाम की चर्चा की है। समय के साथ हिंदू-मुस्लिम दरार बढ़ती जा रही है। और यह समस्या बिकट होती जा रही है, यही आज की सच्चाई है।

विशेष रूप से महाराष्ट्र में, मुस्लिम समुदाय कुछ हद तक हिंदुत्व राजनीतिक नेताओं/पार्टियों का 'लक्ष्य' बना हुआ है, इस भावना के साथ कि वो इस्लाम धार्मिक है। जैसे मुंबई दंगे, या गुजरात नरसंहार। इसमें मुस्लिम लेखकों ने अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम समुदाय हिंदुत्ववादी संगठनों का शिकार बन गया है। (जावेद पाशा, शफाअत खान, फरान शाहनिंदे, प्रो. सैयद अलाउद्दीन) प्रो. सैयद अलाउद्दीन की लंबी कविता 'जमावाबंदी' को उनके कविता संग्रह 'जमावबंदी' में बढ़ती मुस्लिम नफरत की काव्यात्मक प्रतिक्रिया के रूप में दर्ज किया गया है। कविता के अंत में कवि कहता है-

'मुहूर्तावर दंगली
मुहूर्तावरच कत्तली
मुहूर्त पाहूनच सुरू होतो
मार्ग
कुणासाठी
मारून जगतो
दिवा वंशाचा' (जमावबंदी)

कवि बढ़ती समसामयिक अस्वस्थता के साथ संघर्ष को प्रस्तुत करना चाहता है। दंगे से क्या हासिल हुआ? दंगे क्यों होते हैं? इसे कौन बनाता है? वे इस तरह के प्रश्नों पर विचार करना चाहते हैं। आजादी के बाद भी मुस्लिम समुदाय को अल्पसंख्यक बनकर रहना पडा। आज़ादी के बाद भी डर ने मन में बेचैनी पैदा की, 'दंगल: काही हुंदके', 'अर्धे गांधी अर्धे नथुराम',' लोकशाही आलीच नाही', 'रामराज्य' कविताओं में प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. जुल्फी शेख अपने 'मी कोण? कविता में 'स्व' और 'स्व-समूह' की खोज कर कई सवालों के जाल को सुलझाने की कोशिश करते हैं। विभाजन, गांधी हत्या, हिंदू-मुस्लिम उग्रवाद पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है। प्रस्तुत कविता में कहती है,

'मी कोण?
जावेद पाशांचे दंग्यात अपाहिज केलेले मूल?

पाक-नापाक, पवित्र-अपवित्र, हिंद-सिंध कोण?
मी कोण? मी फाळणी?

नाही तरी 1947- 14 ऑगस्ट- 15 ऑगस्टचे आक्रित सर्द टिळा होऊन माझ्या माथ्यावर कायम आहेत या उपेक्षेच्या क्षणातून मला अपेक्षित व्हायचे आहे.' (मी कोण)

उपरोक्त कविता में 'मैं कौन हूँ? यह प्रश्न विचारणीय है। यही विचारणीयता कवि मुबारक शेख की कविता 'सवड दिली तर' में भी देखी जा सकती है।

मराठी कवि एहतेशाम देशमुख ने अपने कविता संग्रह 'मुसलमान' में मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार को दर्शाया है। कवि जावेद कुरेशी अपनी कविताओं के जरिए बढ़ती हिंदुत्व राजनीति को दर्शते हैं। वसंत बापट ने अपने कविता संग्रह 'सकीना' (1975) में दो कविताओं 'पंधरा अगस्त' और

'बाळमूठ वज्रघाव' में आजादी के समय हुई हिंसा और पिछले कुछ समय से समाज में चल रही ऐसी ही स्थिति का चित्रण किया है। 'बाळमुठ वज्रघाव' कविता में कवि प्रश्न पूछकर चिंतन कर रहा है। बंदूकों से भी ऊपर बंदूकों का आदेश देकर कौन हर किसी की सांसों में प्रतिशोध की भावना भर रहा है? ये सवाल उठाया गया है, जो आज भी महत्त्वपूर्ण है।

यात्रावर्णन

अनंत काणेकर का यात्रा वृत्तांत 'आमची माती आमचे आकाश' (1950) विभाजन, स्वतंत्रता और शरणार्थी संघर्ष के उनके दर्द और पीड़ा को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, उदयपुर के पुराने तांगेवाला, होटल के महाराज (स्वयंपाकी), शम्सुद्दीन, होटल मैनेजर आदि का चरित्र-चित्रण बहुत मार्मिक है। चरित्र-चित्रण के साथ-साथ मनोभावों को उभारा गया है। जैसे साबरमती के आश्रम की निर्जीवता, नई दिल्ली का सूखापन, मारवाड़ जंक्शन की अंधेरी रात आदि।

मनीषा टिकेकर का यात्रा वृत्तांत 'कुंपणापलीकडचा देश पाकिस्तान' है। उन्होने आज के पाकिस्तान में लोगों, उनकी संस्कृति, समाज की मानसिकता पर टिप्पणी की है। उन्होंने जो देखा और अनुभव किया उसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया है। आम लोगों के 'लोग' के रूप में स्वभाव और 'राष्ट्र' के रूप में लोगों के स्वभाव में अंतर है। क्योंकि जब लोग एक 'राष्ट्र' के रूप में सोचते हैं, तो यह एक जटिल प्रकिया बनाता है। इस प्रकिया में देशभक्ति है, राष्ट्रवाद है, यही कारण है कि राष्ट्रों के बीच शत्रुता बढ़ने के साथ-साथ 'वे' और 'हम' की पहचान

बनती है। यदि आप इसे कम करना चाहते हैं, तो आपको लोगों के बीच समन्वय स्थापित करना होगा और भागीदारी, संचार बढ़ाना होगा। देशों की सरकारी प्रणालियाँ एकदम अलग-अलग हैं। वे एक दूसरे को बढ़ाते हैं। लेकिन आम आदमी भावना से जुड़ता है। इस अनुभव को मनीषा टिकेकर ने अपने यात्रा वृतांत में बताया है। उन्होंने पाकिस्तानी व्यक्ति को मिलनसार, विनम्र, खर्चीला और भावनाओं से प्रेरित पाया। भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर का मुद्दा महत्त्वपूर्ण है और इसे बिना किसी युद्ध के सौहार्दपूर्ण ढंग से हल किया जाना चाहिए। पाकिस्तान के साथ-साथ भारत में भी आम आदमी की यही मानसिकता है। भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण एक बहुत बड़ी क्षति है। लेकिन पाकिस्तान के नजरिए से यह उनके लिए फायदे की बात है क्योंकि विभाजन ने दक्षिण एशियाई मुस्लिम समुदाय को तीन देशों (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश) में बांट दिया। पाकिस्तान के दृष्टिकोण से, अधिक मुस्लिम राष्ट्रों का निर्माण लाभकारी प्रतीत होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है।

मनीषा टिकेकर ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि युवा पाकिस्तानी पीढ़ी भ्रमित है। क्योंकि उन्हें जो शिक्षा दी जाती है उसमें उन्हें भारत के बारे में बुरे अनुभव मिलते हैं। और उन्होंने नोट किया कि यह पीढ़ी इस बात को लेकर भ्रमित है कि क्या सच है और क्या गलत है क्योंकि इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध जानकारी एक बेहतर संस्कृति का निर्माण करती है। यही बात भारत की युवा पीढ़ी के बारे में भी कही जा सकती है, क्योंकि कई स्वार्थी पार्टियाँ, नेता, संगठन पाकिस्तान के लोगों के बारे में नकारात्मक छवि बनाते हैं। वर्तमान लेखक का अनुभव पाकिस्तान के लोगों के बारे में अच्छा है। इसका जिक्र यहां करना जरूरी है। मनीषा टिकेकर ने बताया कि पाकिस्तानियों को आश्चर्य होता है कि भारत में इतने विरोध, प्रदर्शन होते हैं, लेकिन भारत कैसे नहीं टूटता। मैं यहां इसका उत्तर देना जरूरी समझता हूं। क्योंकि भारत में अनेक जातियाँ होने के बावजूद भी भारत की 'भारतीयता' लोगों के मन में बसी हुई है। इसलिए हम यह विश्वास व्यक्त करना चाहते हैं कि भारत की जनता 'आज' और 'भविष्य' में भी भारत का विभाजन और विघटन नहीं होने देगी।

ग्रंथ लेखन

'फाळणी:युगान्तापूर्वीचा काळोख' (1993) ग्रंथ में वि. ग. कानिटकर ने ब्रिटिश शासन काल से लेकर भारत विभाजन तक की एक विस्तृत समयरेखा

संकलित की है। विभाजन से पहले की राजनीति और विभाजन के बाद की स्थिति वि. ग. कानिटकर ने प्रस्तुत की है। कुल मिलाकर विभाजन पूर्व राजनीतिक इतिहास और विभाजन के समय की राजनीति, नरसंहार, दंगे जैसी स्थितियों और हिंदू-मुस्लिम लोगों के जीवन पर इसके प्रभाव का वर्णन किया गया है। पूरे भारत में हिंदू-मुस्लिम दंगों के परिणाम क्या थे? लोग बर्बर कैसे हो गए, एक-दूसरे के साथ इतना दयालु व्यवहार करने वाले लोग एक-दूसरे के प्रति इतने हिंसक कैसे हो गए। यह प्रश्न विचारणीय है। जनरल टकर बिहार, संयुक्त प्रदेश में बदले की तीव्रता के बारे में लिखते हैं - ''Every pregnant woman were ripped up, their unborn babies torn out and infant's brains bashed out on walls and on ground. There was rape on women and children were siezed by the legs and torn apart.''[4]

'1946 कलकत्त्याचे भयानक हत्याकांड' इस लेख मे 16 से 20 अगस्त 1946 तक चार दिनों में 1600 बंगाली मारे गए होंगे। ('फाळणी:युगान्तापूर्वीचा काळोख', पृ. 365) इसके अलावा 2 सितंबर से 10 सितंबर 1946 तक बंबई में हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। इसमें कुल 200 हिंदू-मुसलमान मारे गए। ('फाळणी:युगान्तापूर्वीचा काळोख', पृ. 370) विभाजन से पहले का दौर पूरी तरह उदासीनता का था। कई लोगों ने अपने लेखों में इस बात पर प्रकाश डाला है कि, कांग्रेस के राजनेताओं ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। नई पीढ़ी को विभाजन के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से विभाजन का इतिहास व्यक्तिगत अनुभव से प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में गोविंद कुलकर्णी की पुस्तक 'फाळणीचे दिवस' (1989) का उल्लेख किया जा सकता है। उन्होंने बँटवारे के चालीस साल बाद के अपने दर्दनाक अनुभवों को याद किया है। वह अपने लेख 'माझा पुनर्जन्म' में वह कहते हैं, ''मैं हिंदुओं को जगाने के लिए अपने पवित्र कर्तव्य के रूप में कलम उठाई है।''[5] इसके अलावा प्रस्तुत ग्रंथ यह कहने के लिए लिखी गई है कि 'हिन्दुओं को जागते रहना चाहिए।' 'फाळणीचे दिवस' ग्रंथ में भारत के विभाजन का इतिहास सकारात्मक है। यह ग्रंथ विभाजन पूर्व अवधि और विभाजन के बाद की अवधि को कवर करती है। विभाजन के भयानक अनुभव को दर्शाती है। और हिंदू समाज को जगाना चाहते हैं। विभाजन के दौर का अनुभव गोविंद कुलकर्णी ने किया है। वो यहां विभाजन का कारण बनने वाले नेताओं के बारे में भी बात करते हैं।

गोविंद आत्माराम कुलकर्णी का 'फाळणीचे दिवस' (यानी भारत विभाजन का इतिहास) विभाजन का एक ज्वलंत इतिहास है। विभाजन का समग्र रूप से भारतीयों पर क्या प्रभाव पड़ा? साथ ही विभाजन प्रांत से महाराष्ट्र आये कुलकर्णी जैसे लोगों को क्या-क्या झेलना पड़ा, इसकी जानकारी भी देते है। गोविंद कुलकर्णी ने स्वयं यह बताने का साहस किया है कि विभाजन के दिनों में उनके साथ क्या-क्या हुआ था। वह पाठक के सामने इस बात का सबूत रखते है कि उनके साथ क्या हुआ, उन घटनाओं को जो उन्होने इन दिनों करीब से देखीं। उन्होंने भारत के विभाजन की सच्चाई को सुसंगत ढंग से लिखा है। विभाजन की कीमत खून-खराबे के साथ-साथ इसके गहन मनोवैज्ञानिक आघात से भी स्पष्ट है।

गोविंद कुलकर्णी की पुस्तक 'फाळणीचे दिवस' में पाकिस्तान के निर्माण के पीछे क्या घटनाएं थीं या भारत के दो देशों का निर्माण कैसे हुआ? इसकी शुरूआत कहां और कैसे हुई, इस पर वे कहते हैं,

''कांग्रेस ने 1937 में संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने से इनकार कर दिया, जो एक बड़ी गलती थी। साथ ही, 1939 और 1946 के बीच कांग्रेस ने खुद से इस्तीफा दे दिया और मुस्लिम लीग सत्ता में आई। और उस समय सभी मुसलमानों को एकजुट करने को वक्त मिला। 1906 में लॉर्ड मिंटो ने मुसलमानों से मुसलमानों के रूप में निष्ठा का एक अनूठा प्रमाण पत्र जारी करने का आग्रह किया। इससे जो विभाजन पैदा हुआ वह बढ़ता गया और अंतत: पाकिस्तान की मांग में परिणत हुआ।''[6] यह अंत हिंदू और मुस्लिम दोनों के लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था। यह चौंकाने वाला और हिंसक था। लेखक ने उल्लेख किया है कि 15 अगस्त 1947 को अकेले लाहौर में 300 हिंदुओं का नरसंहार किया गया था। (फाळणीचे दिवस, पृष्ठ 12) अन्यत्र कितने लोग मारे गए होंगे, इसके आंकड़े उपलब्ध नहीं हो सकते हैं।

लेखक गोविंद कुलकर्णी ने पंजाब में अत्याचारों को स्वयं देखा और अनुभव किया है। तो यह उनके दिमाग पर अंकित हो गया। उन्होंने इसे तारीख के हिसाब से लिखा। जब वे महाराष्ट्र के सोलापुर पहुँचे तो उन्होंने अपने अनुभव दूसरों को सुनाये। स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव युवा मन पर पड़ा। वहां के तत्कालीन जिलाधिकारी ने उन्हें बुलाया और कहा कि वे अपने अनुभव दूसरों के साथ साझा न करें। क्योंकि ये अनुभव सोलापुर में दंगों की आशंका से इनकार नहीं कर

सकते। कुलकर्णी ने अपने अनुभवों के बारे में जो लिखा था उसे जिलाधिकारी ने स्वयं पढ़ा और उन्हें आगे की शर्तों पर लौटा दिया। ''मैं यह रचना आपको एक शर्त पर लौटाऊंगा। यह रचना कम-से-कम 25 साल तक किसी अखबार में या कहीं और नहीं छपनी चाहिए। अगर यह बात स्वीकार नहीं होगी तो मैं इस रचना को आपके सामने काडी लगाकर जला दूंगा। और इसे किसी भी हाल पर कही पर भी मुद्रित नहीं करना है, इसे कहीं भी पढ़ा नहीं जाना चाहिए।'' ऐसा कहकर उन्हें कानूनी नोटिस जारी किया गया। वो इस प्रकार है-

''नोटीस

No. VI- 6573

Sholapur, 30-10-1947

To,

Govind Atmaram Kulkarni, Sholapur.

It is reported that you are a refugee from Punjab and you have been giving out stories to groups of ...persons in this district about the atrocities in the Punjab.

You are, therefore, warned not to speak anything about the happenings in Punjab to any person what soever in Sholapur District as it might disturb the public tranquility in this District.

Sd- S. Ghatge.
District Magistrate.
Sholapur."

यह एक कारण हो सकता है कि मराठी साहित्य में विभाजन के बारे में बहुत कुछ नहीं लिखा गया है। क्योंकि यदि उस समय ऐसे लेख लिखे और प्रकाशित किये जाते तो हिन्दू-मुस्लिम दंगों जैसी स्थिति महाराष्ट्र में उत्पन्न हो सकती थी, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जिस तरह से गोविंद कुलकर्णी को नोटिस दिया गया, हो सकता है कि कुछ लोगों को नोटिस ऐसी मिल गई हो। ऐसा लगता है कि मुंबई या महाराष्ट्र में कोई दंगा, डर का माहौल न बने इसलीये यह दक्षता ली गयी हो।

प्रस्तुत ग्रंथ में कुलकर्णी ने विभाजन काल के अपने व्यक्तिगत अनुभव का वर्णन किया है। मेरे पुनर्जन्म, जिना, पंजाब के जिलों की स्थिति (जिला शेखूपुरा, सियालकोट, गुजरांवाला, मौंटगॉमेरी, ल्यालपुर, शाहपुर, झंग आदि) कथन की

गई है। प्रस्तुत ग्रंथ में ऐतिहासिक लेखन पढ़ते समय या विभाजन के काल को समझते समय पाठकों के मन में कई प्रश्न हो सकते हैं। आज भी समझदार युवा पीढ़ी के मन में इस संबंध में कई सवाल हैं। भारत की अखंडता को तोड़ने का जिम्मेदार कौन था? पाकिस्तान की मांग मानने को क्यों मजबूर होना पड़ा? जब इतना खून-खराबा हुआ तो इसे रोका क्यों नहीं जा सका? अगर भविष्य में ऐसी घटनाएं होंगी तो हम उनसे कैसे निपट पाएंगे? ये सभी प्रश्न विचारणीय हैं। पु. भा. भावे जी का ग्रंथ 'सर्वनाश' (1990) में भावेव जी ने समसामयिक घटनाओं का जिक्र किया है। प्रस्तुत पुस्तक में देश का विभाजन, मुसलमानों पर अत्याचार, कांग्रेस की राजनीति मुख्य विषय हैं। पुस्तक को तीन प्रकार से संरचित किया गया है, विभाजन से एक वर्ष पहले, 3 जून, 1947 को विभाजन की घोषणा और तीसरा वास्तविक विभाजन। भावे कश्मीर में मुसलमानों का व्यवहार, वहां के हिंदुओं का स्थिति पर चर्चा करने की कोशिश करते हैं। साथ ही कल और आज के परिप्रेक्ष्य में कश्मीर में हिंदू महिलाओं की बदनामी और दुर्व्यवहार की जांच, आज विभाजन जैसी स्थिति के अनुरूप की जा रही है। उन्होंने सिंध, पंजाब, बंगाल, कश्मीर की विकट स्थिति पर प्रकाश डाला है।

पु. भा. भावे 20 सितंबर 1947 के 'आदेश' में 'नगव्य महिलाओं की रेखा देखो' इस लेख मे पश्चिमी पंजाब में हिंदू महिलाओं पर हो रहे हमलों और उनके अपमान की हकीकत को उजागर करता है। हिंदू महिलाओं पर हुई यह घटना न केवल उस समय की महिलाओं के मन पर कब्जा करती है बल्कि यह भी बताती है कि इसकी दाहकता कितनी तीव्र होगी। 'बहू, बेटी, नानी, बहन, कुंवारी, विधवा और बूढी! सबके कपड़े नोचे, फाड़े, फाड़कर फेंक दिये। और फिर मुसलमानों के लिये कतारें की। नग्न हिंदू महिलाओं की पंक्तियाँ!' (सर्वनाश, पृ. 187)

उपरोक्त संदर्भ से, भयावहता और आक्रोश सामने आता है। विभाजन ने क्या दिया? ये सवाल यहा उठता है। इसके अलावा नेहरू सरकार क्या कर रही थी? महात्मा गांधी के मानवता, भाईचारा, अहिंसा के मूल्यों का क्या हुआ? या इस मूल्यों से क्या हासिल हुआ? ये सवाल यहां उठाना आवश्यक होता है।

सारांश

विभाजन एक मानव निर्मित संकट था। भारत विभाजन मुख्यत: पंजाब,

कश्मीर, भारत-पाकिस्तान सीमा के लोगों को बहुत कष्ट सहना पड़ा; लेकिन भारत विभाजन की लपटें महाराष्ट्र तक ज्यादा नहीं पहुंचीं। साथ ही जब भारत का विभाजन हुआ और उसके बाद भी मराठी लेखकों ने इस विषय की ओर रुख नहीं किया। क्योंकि यह कहा जा सकता है कि वे इससे अनुभवी नहीं थे। साथ ही, मराठी साहित्य उस समय के मध्यवर्गीय जीवन अनुभव के इर्द-गिर्द ही सीमित प्रतीत होता है। इस काल के मराठी साहित्य पर नजर डालें तो वह रंजन पर केंद्रित नजर आता है। भारत की आजादी के बाद देश को कई आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। स्वतंत्रता का अनुभव करने वाला समाज भविष्य की चुनौतियों का सामना कैसे करेगा ? वह इन चुनौतियों से कैसे पार पायेंगे ? मराठी लेखकों को इसकी समीक्षा करनी चाहिए थी; लेकिन ऐसा नहीं हुआ, यही हकीकत है। आजादी के तुरंत बाद हुई गांधीजी की हत्या को कुछ हद तक मराठी साहित्य ने उठाया है। इसके अलावा कुछ लेखकों ने निचली गहराई तक जाने की कोशिश की है और विभाजन के परिणामों का आलोचनात्मक वर्णन किया है।

विभाजित भारत में भीड़-कोलाहल-हाहाकार-भय सब मिलकर मन की खामोशी की भयावह कर्कशता मूक चीख से कहीं अधिक व्यापक है। यह सत्य है कि विभाजन हिंदू मुस्लिम धर्म के आधार पर हुआ था। 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद का विध्वंस, 1992 में महाराष्ट्र में दंगे और 1993 में मुंबई में बम विस्फोटों का मराठी साहित्य पर प्रभाव पड़ा। 'आज' भारतीय सेना पर बढ़ते खर्च, कश्मीर का ज्वलंत मुद्दा, भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद और विभाजन के कारण वहां तनावपूर्ण माहौल का सामना करना पड़ रहा है। दोनों देशों को समझ और एकता की सख्त जरूरत है।

संदर्भ सूची

1. शेवड़े सच्चिदानंद, रक्तलांच्छन, मोरया प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 14 अगस्त 1996, पृ. प्रस्तावना
2. कालेलकर मधुसूदन, 15 अगस्त, मनोगत, नवभारत प्रकाशन, गिरगांव, मुंबई, 1950, पृ. 6
3. वरेरकर भार्गवराव विट्ठल, 'अ-पूर्व बंगाल', प्रस्तावना, मॉडेल हाउस, मुंबई, 1953, पृ.11

4. कानिटकर वि.ग., फाळणी:युगान्तापूर्वीचा काळोख, अनिरुद्ध साहित्य प्रकाशक, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 378
5. कुलकर्णी गोविंद, फाळणीचे दिवस, मनोरमा प्रकाशन, मुंबई, प्रथम संस्करण, अप्रैल 1989, पृ.1
6. तत्रैव, पृ.286
7. तत्रैव, पृ.31,32

A Tryst with Division : The Other Side of India's Independence

Dr. Manisha Patil*

Abstract :

At the midnight hour of 14-15 August 1947, while addressing the newly independent India as Prime Minister,Pt. Jawaharlal Nehru said, "Long years ago we made a tryst with destiny, and now the time comes when we shall redeem our pledge, not wholly or in full measure, but very substantially. At the stroke of the midnight hour, when the world sleeps, India will awake to life and freedom…" Unfortunately, India's dream of freedom was accompanied with the nightmare of its division. The brutal experience of India's Partition based on religion, consisting of mass murders and rapes of Indian women by Indian men (albeit belonging to the rival religions), marred the joy of independence forever. While history recorded only the facts and figures of one of the largest displacements in the human history, focusing on success of the male national leaders in achieving independence, and dismissing partition as a side issue or by-product; literature captured the horror and trauma of the Partition, by focusing on the sufferings of common

Asst. Professor (English), Guru Nanak College of Arts, Science and Commerce, GTB Nagar, Mumbai 400037.Mobile No.: 8454929155
Email : manisha@gncasc.org, 27manishadnpatil@gmail.com

people, especially women. The representation of Partition in literature surpasses its documentation in history as literature makes the future generations relive its horror instead of merely reading and understanding it; and thereby teaching important lessons for life. The present paper highlights the themes of Two Nation Theory, Culture, Identity, Displacement and Violence in the Partition Literature and thereby brings forth the paradox of will-to-forget and need-to-remember, with special reference to the Partition on the eastern front.

Keywords : Partition Literature, Two Nation Theory, Culture, Identity, Displacement, Violence

A Tryst with Division : The Other Side of India's Independence

> "Creative literature focusing on the theme of Partition presents the underside of history and the creative writer has been working and reworking Partition in fiction, only to come to grips with the dynamic thrust of human consciousness struct by both the collective as well as individual tragedy." (Sengupta, 11)

At the midnight hour of 14-15 August 1947, while addressing the newly independent India as Prime Minister, Pt. Jawaharlal Nehru said, "Long years ago we made a tryst with destiny, and now the time comes when we shall redeem our pledge, not wholly or in full measure, but very substantially. At the stroke of the midnight hour, when the world sleeps, India will awake to life and freedom…" Unfortunately, India's dream of freedom was accompanied with the nightmare of its division. The brutal experience of India's Partition based on religion, consisting of mass murders and rapes of Indian women

by Indian men (albeit belonging to the rival religions), marred the joy of independence forever. While history recorded only the facts and figures of one of the largest displacements in the human history, focusing on success of the male national leaders in achieving independence, and dismissing partition as a side issue or by-product; literature captured the horror and trauma of the Partition, by focusing on the sufferings of common people, especially women. The representation of Partition in literature surpasses its documentation in history as literature makes the future generations relive its horror instead of merely reading and understanding it; and thereby teaching important lessons for life. The present paper highlights the themes of Two Nation Theory, Culture, Identity, Displacement and Violence in the Partition Literature and thereby brings forth the paradox of will-to-forget and need-to-remember, with special reference to the Partition on the eastern front.

History of Partition on the Eastern Front

On 20th July 1905, Lord Curzon, then Viceroy of India, announced the Partition of Bengal, thereby drawing the blue-print of the Partition of India, forty-two years later. Though he cited administrative convenience as the chief reason for the division of Bengal, it was quite clear that such a division was based on religious ground, with East Bengal having Muslim majority and West Bengal having Hindu majority. As a classic example of 'Divide and Rule' Policy of the British, the event also demonstrates the 'Divide and Lose' Policy of the Indians, for despite the cancellation of Partition of Bengal in 1911, the sentiments of difference and division remained latent among the Bengalis till their final outburst in 1947 religious riots, forcing all the parties to draw the international borders rather hastily and clumsily. Unlike Punjab, the partition of Bengal remained an unfinished business for years, due to

volatile riverine terrain of the region resulting in shifting borders, and equally volatile identities of people resulting in shifting allegiance on the axes of caste, class and language apart from religion.

A rather intriguing example of this complexity of drawing arbitrary borders across the incessant territory is Sylhet district. Assam was annexed by British and made a part of Bengal Presidency in 1826. In 1836, Bengali was introduced as the language of courts and schools in Assam creating a linguistic conflict. In 1874, Assam was separated from Bengal to form a Chief Commissioner's Province, but "[t]he colonial authorities, for maximum utilization of resources for the fulfilment of their economic interest, decided to incorporate the Bengali-speaking district of Sylhet, an integral part of Bengal historically, linguistically, geographically and ethnically, into the new province of Assam." (Pathak, 175) Then in 1905, upon the Partition of Bengal, Assam was made a part of Eastern Bengal, thereby subjecting it once again to the "Bengali domination" (Pathak, 177) and instigating "assertions of linguistic regional identity and questioning the Bengali domination in government services" (Pathak, 178) by the Assamese people. The linguistic conflict in the region continued till 1947, when "Assamese leaders who were agitated over the question of the presence of 'outsider'… raised the issue to separate the Bengali-speaking districts of Cachar and Sylhet from the administrative unit of Assam in order to free government offices from the clutches of Bengali Hindu dominance." (Pathak, 181) Accordingly, the Bengal Boundary Commission under the chairmanship of Sir Cycil Radcliff, conducted the referendum in Sylhet to decide whether to hand it over to India or Pakistan. Being a Muslim majority area, Sylhet opted for Pakistan; but Bengali Hindus, being displaced by Partition returned to Assam Valley in large

numbers as refugees. Thus, Assam Chief Minister Gopinath Bordoloi's dream of "Assam for the Assamese"(*Shillong Times,* 13 October 1947) remained unfulfilled; instead materializing his associate Rohini Kumar Choudhury's warning that "the problem would persist but not the land." (Govt. of India, 74; Dass, viii)

Along with religion and language, caste played a major role in dividing people in Bengal. In fact, exploitation of low caste people by high caste Hindus was one of the main factors responsible for conversions to Islam in East Bengal. According to 1901 Census Report,

> "The Namasudra aggregate about 18,861,000 and the Pods nearly half a million; but the full strength of the two castes is concealed by the fact that large numbers have been converted to Muhammadanism… There are ten and a half millions of Muhammadans in the Dacca and Chittagong Divisions and… It would probably be safe to say that at least nine million of the Muhammadans of Bengal Proper belong to this stock." (Census of India 1901, Vol 6, P 396)

In accordance with the view that Dalits and Muslims were equally oppressed by the rich, high caste Hindus and as such they shared the fraternity of subjugation, Jogendra Nath Mandal, an influential Dalit leader of Bengal joined hands with the Muslim League. During the 1946 communal riots, he dissuaded Dalits from participating in anti-Muslim violence. He genuinely felt that Dalits would be better off with Muslims than with high caste Hindus. As a result, he whole heartedly supported the creation of East Pakistan. He was appointed as the first Law Minister of Pakistan in Mohammad Ali Jinnah's cabinet. However, after Jinnah's death, the next Pakistani Prime

Minister Liaquat Ali Khan took a hard turn towards Islamic Fundamentalism and Muslim rioters started targeting Dalits in East Pakistan. Mandal's protests fell on the deaf ears of Pakistani administrators and ultimately in 1950, Mandal was forced to take refuge in India, like thousands of other Hindu refugees flooding West Bengal from the East.

Apart from religion, East Pakistan and West Pakistan had no other common factor. In fact, there were a number of cultural and ideological differences. Unlike North-Western part of Indian subcontinent, the mother-tongue of Muslims in East Bengal was Bangla. As a result, when Urdu was declared as the National Language of Pakistan, people from East Bengal vehemently opposed it. Tamuddun Majlis issued a pamphlet on September 15, 1947 entitled "Pakistaner Rashtra BhashaÑ Bangla Na Urdu?" (Pakistan's national LanguageÑ Bangla or Urdu?), laying the foundation of Bengali Language Movement of 1952.As Jabeen, *Chandio and Qasim rightly point out,*

> "The language issue generated a much deeper seeded sentiment of hatred within East Pakistan, which extended into other issues such as those concerning economic discrimination and the increasing concentration of political power in the western segment of the country… There was a growing sense of deprivation and exploitation in East Pakistan and a feeling prevailed that a new form of colonialism had replaced British imperialism. Language issue made people of Eastern wing to think on social, economic and political deprivation at the hands of the central government." (Jabeen et al., 111-112)

When Pakistani military establishment failed to transfer

political power to Sheikh Mujibur Rahman's Awami League, which had won a majority in 1970 Pakistan parliamentary elections; and instead undertook 'Operation Searchlight'in March 1971 to supress growing Bengali nationalism, killing and raping thousands of Bengali people; approximately 10 million refugees—"According to official statistics, by the second week of December 1971 about 6.8 million evacuees had been housed in camps and another 3.1 million were staying with friends and relatives." (Mukherji, 399)—crossed over the border into India's North-Eastern states and West Bengal. The resultant Bangladesh Liberation War which led to the second partition of Pakistan, nonetheless, further affected India by fuelling Assamese insurgency, as many Bangali refugees did not go back to Bangladesh but remained in Assam, thereby once again threatening Assam's ethnic nationalism with Bengali domination. In her book *Bangladeshi Migrants in IndiaÑ Foreigners, Refugees or Infiltrators?* Rizwana Shamshad argues that Bangladeshi refugees in India, particularly in Assam, are viewed through two different lenses of religion and ethnicity. For the Hindu nationalists, Bangladeshi Hindus as 'refugees' are eligible for Indian citizenship but Bangladeshi Muslims as 'infiltrators' must be deported back to Bangladesh. For the ethnic Assamese nationalists, on the other hand, both Hindus and Muslims from Bangladesh are a threat to Assamese language, culture, identity and economic opportunities in the state. Consequently, Assam Movement flourished between 1979 and 1985, giving rise to two different organizations viz. United Liberation Front of Assam (ULFA), the separatist insurgent group in 1979 and Assam Gana Parishad, the regional nationalist party in 1985. However, till date Bangladeshi Hindus and Muslims continue to crossover into India as political, economic and climate refugees; and due to vote bank politics in India, no lasting solution for the problem has been

found yet. As a result, the partition on the eastern front remains an unfinished business, displaying its unique feature of 'unspeakable things unspoken' (Toni Morrison's term). A. K. Biswas states,

> "The credit for creating East Pakistan thus goes to the persecuting Hindu caste-lords, although they are perhaps ashamed to acknowledge it. Putting the blame on Viceroy Lord Mountbatten, the British divide-and-rule policy and Mohammad Ali Jinnah for the creation of Pakistan is an upper-caste Hindu ploy to cover up their shame. Untouchability, oppression and discrimination against Namasudras and Pods lent Muslims majority at least in Bengal and the denial of opportunities to them sowed in them the desire for their own nation." (Biswas)

Partition Literature in Bengali

The trauma faced by Indians during the partition is not limited only to the particular individuals and only for that particular time period. In fact, it is transgenerational; because contrary to the professed peace of freedom, partition actually killed and displaced millions of people on both eastern and western fronts. Yet the partition literature about the eastern front (Bengal), is much more muted than the western front (Punjab). Rather than describing the partition violence in graphic details, Bengali writers hint at it through memory and nostalgia. Instead of exercising a willed omission of trauma as a defence mechanism against humiliating memories of partition, they use strategic silences to disrupt the very forces of cultural hegemony and assimilation of jingoistic nationalism which forcefully silence the expression of partition trauma.

Sayad Waliullah's *'The Tale of a Tulsi Plant'* (1949), obliquely comments on the issues of displacement, homelessness and rootlessness during partition through a Muslim family's relocation in a Hindu house. Displaced from their own house in India, a group of Muslims illegally occupy a big deserted house in East Pakistan. A dying Tulsi plant in the garden reminds them of its Hindu owner and they first decide to uproot it, but then let it remain untouched. They gradually notice that someone among them is secretly watering the Tulsi plant. The nurtured Tulsi plant metaphorically symbolizes the flourishing new life of the refugees. However, soon the police evacuate them from the house and the Tulsi plant begins to wither again.

Sharadindu Bandopadyay's *'Dui Dik'* (1964), illustrates how humanity triumphs over communal violence against the backdrop of partition. Noor Mian, a seasoned criminal kills many Hindus during the partition riots. However, when he himself is fatally injured in one such incident, he pleads to a Hindu doctor to save him. The doctor is in dilemma. But ultimately, the doctor saves Noor Mian and as a token of gratitude towards the doctor, Noor Mian gives up all his criminal activities and restarts his life as an honest *paanwala*. Jyotirmoyee Devi's *'Epar Ganga Opar Ganga'* (1967), tells the story of Sutara who survives the mass killings of Hindus during partition riots in Noakhali by hiding in her Muslim friend's house. However, when she safely reaches her extended family in Calcutta, she is ostracized by her own people for being 'polluted' by her stay with a Muslim family. It is only when she meets other female partition victims from Punjab in Delhi that she is able to relate and overcome her own trauma. Sunil Gangopadhyay's *'Arjun'* (1970), portrays the miserable life in a refugee colony, ironically named Deshopraan Colony, on the outskirts of Calcutta. The East Bengali Hindus who

after partition migrated to West Bengal with the hope of a better life, are disillusioned due to poverty, unemployment, corruption and criminal activities in the colony. The violent gang-rape of Amaladi during partition riots in East Bengal is mirrored in the rape of Labanya during a conflict over land control in the Deshopraan Colony. Both the incidents refer back to the humiliation of Draupadi in *The Mahabharata.* The namesake of the mythical hero in *The Mahabharata*, Arjun, the protagonist of the novel faces the same dilemma of fighting his own people but without the divine guidance of Shri Krishna. He is seriously injured in the ensuing fight, but as the novel ends, there is a hope that the refugees will get the land registered in their name within a month and thereby they will get the full citizenship of India.

Manik Bandopadhyay's *'The Final Solution'* (1988), traces the journey of a poor Bengali family from east to west, crossing the border as a refugee and trying to survive in a cruel world. In the process, Mallika, the protagonist endures hunger, suffering, humiliation and sexual violence. As a last resort to feed her little son and survive in a hostile, patriarchal and capitalist society, she willingly (?) takes up prostitution as a means of survival.

Taslima Nasrin's *'Lajja'* (1993), documents the persecution of a Hindu family by Muslim fundamentalists in Bangladesh, after the demolition of Babri Masque in India on 6th December 1992. Sudhamoy Datta and his family had remained in East Bengal even after partition in 1947. He also fought for the independence of Bangladesh in 1971. However, gradually Islamic Fundamentalism overpowered the secular spirit of Bangladesh and turned it into an Islamic nation. His son Suranjan lists a number of atrocities committed against the minorities in Bangladesh with the mute permission of the government. Still Sudhamoy's gullible optimism and idealism

about his motherland stops him from leaving Bangladesh for India. Ultimately, in 1992, all his illusion is shattered when his 21-year-old daughter Maya is abducted from his house in Dacca by Muslim hooligans and presumably gang-raped and killed as a revenge for the demolition ofBabri Masque in Ayodhya.

Jilani Bano's *'Criminal'* (1995), mirrors the feelings of two friends, Nisar and Venkatesh, during the tense times of communal riots. Bano writes, "They were cautious, moderate and wise people who endeavoured to create understanding amongst the people of the world and never mentioned the riot of the previous night in their locality in which twenty people were massacred and a whole village was burnt to ashes." (Bano, 267) However, such a silence and denial take their own toll on the human psyche. Both the friends feel that somehow, they themselves are responsible for the communal violence, leading to the feelings of guilt and intense depression. Purabi Bormudoi's *'People in Quest of a River'* (2003), narrates how poor and gullible Bangladeshi people are lured by the cunning human traffickers into the Indian territory and then exploited by every possible means. Being illegal immigrants, they can neither seek the help of the police, nor can they go back to their old impoverished villages. Bormudoi writes, "Helpless and destitute once again, they felt completely forsaken. They could neither say nor do anything. How could they protest with hungry stomachs and with fear and anxiety in their hearts?... No country would accept them as their own people. They would not have their own river, land or sky. They would drift forever." (Bormudoi, 226)

Meenakshi Sen's *'Pushback'* (2004), focuses on the nuances of 3-D formula (Detect, Delete and Deport) of dealing with the illegal immigrants. The unnamed protagonist of the story is born in Bangladesh but grows up in India, as her

maternal aunt, living in India, adopts her at the time of her mother's death, when she is just ten days old. However, twenty years later, when the girl marries a boy of her choice against the wish of her aunt, the same aunt goes to police and reports her as an illegal immigrant to India. The court orders her to be deported to Bangladesh, an unknown home (?) country. For a young girl, to survive in an alien country, with neither a relative, nor any means of earning, is a very dangerous. There is very high possibility that she can be forced into the flesh trade. The lady constable supervising over her in the jail, feels that the court order is rather unjust, but then rationalizes its justness to herself, on the basis of the girl's religion.

Hasan Azizul Huq's *'Agunpakhi'*(2006), a semi-autobiographical novel, depicts the life journey of an unnamed housewife (modelled on Huq's own mother) in the early twentieth century. The protagonist-cum-narrator is orphaned at the age of nine with her mother's untimely death. Her educated father deems it useless to educate a girl and instead marries her off at the age of 14 to a man double of her age. Within the domestic space of her joint family, she has no say even in day-to-day affairs. However, she cultivates the habit of reading daily newspaper which makes her aware of the national politics.She realizes the hollowness of Two Nation Theory and deeply mourns the death of thousands of people in the name of religion. Despite the insistence of her husband and sons to migrate to East Pakistan, she stubbornly refuses to leave her house. She asks, "Why should I go to Pakistan? Why should I leave my country?" (Huq, 2019Ñ 210) and remains alone in her house when all other family members leave for Pakistan. Her final decision asserts her female subjectivity within the domestic space of house as against the public space of the nationhood, andsimultaneously, questions the rationality, desirability and feasibility of masculine discourse

of religious nationalism where women are used as pawns without any power.

Partition Trauma : Will-to-forget and Need-to-remember

"The past is not something to be escaped, avoided or controlled…the past is something with which we must come to terms and such a confrontation involves an acknowledgement of limitation as well as power." (Hutcheon, 58).

This peculiar situation where you know but cannot *speak* and as a result, cannot change the things for better, gives rise to the *'will-to-forget'*. The painful memories of one's objectification in the past can renew the suffering in the present as well and so one feels that it is better to forget them totally. However, the trauma of suffering is too much to forget; it merely leads to the repression of painful memories whereby those memories remain ever-present in one's unconscious mind waiting to erupt in the conscious mind whenever possible. This leads to a tug-of-war between conscious and unconscious minds causing a lot of stress and unrest to the person. The only viable solution to this problem is to *re-member* the painful past, to confront its haunt for once and all and let go of one's demons in order to go on with life and love. Thus, it is not the *'will-to-forget'* but *'need-to-remember'* that heals the pain of suffering.

The major action of the partition narratives is suspended between memory and amnesia. The trauma of partition is so painful that remembering it can renew all the suffering. So, the safe way is to forget it. But even this forgetting is not easy. Even though one wills to forget, one cannot forget because memory is not governed by will. Rather memory has its own will. Some things go; pass on. Others just remain, on their own. Yet memory of any particular thing is not always

same. Memory by nature is unstable, rambling and changing. Imagination is its integral part. It is not objective, photographic record of facts but subjective and emotive re-creation of an experience.

Partition literature in Bengali, especially, harks back on the pre-partition idyllic life of Bengal. This nostalgia aims at denying at the psychic level, the pain of fragmentation, loneliness and dis-re-member-ment of partition. However, the painful past of partition can neither be denied nor be transcended; some fragments cannot be joined; some loneliness cannot be removed; and some dis-re-member-ment cannot be recalled.

The post-independence Indian history of national pride and achievement, in fact, glosses over the unresolved trauma of Indian masses,their experience of dehumanizing shame at being forced out of their land, at their women being raped, and at their near and dear ones being brutally killed. The case study of each individual woman in the partition narratives may be a *parole* of hurt body, frustrated desires, lost hopes and deep sorrow but collectively they reveal the *langue* of oppressive socio-cultural conditions which set into motion an unending cycle of psychological trauma and terrible violence for everybody irrespective of language, caste, religion, sex or class. The shame-rage-defence triggered by the humiliation of women at the altar of masculine nationalism feeds on itself and triggers more and more violence again and again. Unfortunately, psychological trauma is always passed trans-generationally through the stories of atrocities done to one's ancestors. As a result, even though the circumstances leading to that trauma change over a period of time, traumatic experience still remains in the minds of people 'like a bullet in the brain' and the slightest stimulus can trigger off fresh trauma and its devastating effects. That is why, even today, partition

is an unfinished business in India. Referring to Kamaleshwar's novel *'Kitne Pakistan',* JayitaSengupta states,

> "The boundary that marked the nations has created irrevocable barbed wires of borders within and across, with the 'swift and slow human doing'. Understanding the implications of the 1947 Partition in our lives is a constant re-living of the horror across temporal space, in our attempt to negotiate the fractured consciousness of our nation. The creation of one Pakistan has led to many such Pakistans of not only religious but social, caste, class, linguistic, cultural divides and new nationalities and separatist tendencies, constantly yielding to fragmentations." (Sengupta, 20-21)

References :

- Bandopadhyay, Manik. "The Final Solution". Translated by Rani Ray. *Partition LiteratureÑ An Anthology*. Debjani Sengupta (Ed). Worldview. 2018. P 36-46.
- Bandopadyay, Sharadindu. "Dui Dik". *Sharadindu Omnibus. Vol 6.* Ananda Publications, Calcutta. 1955. P 290-294.
- Bano, Jilani. "Criminal". *Borders and Partitions in South Asia.* Jayita Sengupta (Ed). Routledge, New Delhi. 2012. P 265-270.
- *Biswas, A.K. "Hindu Casteism Led to the Creation of East Pakistan". Forward Press. September 29, 2016.* httpsÑ// www.forwardpress.in/2016/09/hindu-casteism-led-to-the-creation-of-east-pakistan/ *Retrieved on November 9, 2023.*
- Bormudoi, Purabi. "People in Quest of a River". *Borders and Partitions in South Asia.* Jayita Sengupta (Ed). Routledge, New Delhi. 2012. P 221-229.
- *Chandra, Bipan. History of Modern India. DelhiÑ Orient Blackswan Private Limited. 2009. P 248–249.* ISBN 9788125036845.

- Dass, Susanta K. “Immigration and Demographic Transformation of Assam, 1891-1931”. *Economic and Political Weekly.* 1980.
- Devi, Jyotirmoyee. “Epar Ganga Opar Ganga”. *Rachana Sankalan.* Vol. 1. Dey’s and School of Women’s Studies, Jadavpur University, Kolkata. 1991.
- Gait, E. A. *Census of India 1901 Vol.6 (Lower Provinces of Bengal and Their Feudatories) Part 1 (Reports).* Archaeological Survey of India. 1902.
- Gangopadhyay, Sunil. *Arjun.* Translated by Chitrita Banerjee Abdullah. Ananda, Kolkata. 1998.
- *Ganguly, Sumit. “The Tragedy of ‘Operation Searchlight’”. Conflict UnendingÑ India-Pakistan Tensions Since 1947.* Columbia*UniversityPress.2002. P 60-61.*
- Govt. of India. *Assam Legislative Assembly Debates, Vol. 2, Official Report.* Assam Govt. Press. 1950.
- Hutcheon, Linda. *The Politics of Postmodernism.* Routledge, New York. 1989.
- Huq, H. A. *Agunpakhi.* Ittadi Grohontha Prokash. 2019.
- Jabeen, *Mussarat; Chandio, Amir Ali; Qasim, Zarina. “Language ControversyÑ Impacts on National Politics and Secession of East Pakistan”. South Asian StudiesÑ A Research Journal of South Asian Studies.* Vol. 25, No. 1, January-June 2010. *P 99–124.* httpsÑ// www.researchgate.net/publication/324154134_ Language_ Controversy_Impacts_on_National_ Politics_and_Secession_ of_East_Pakistan *Retrieved on November 10, 2023.*
- Kamleshwar. *Kitne Pakistan.* Rajpal & Sons. 2000.
- Mukherji, Partha N. “The Great Migration of 1971Ñ IIÑ Reception”. *Economic and Political Weekly,* Vol. 9, No. 10 (March 9, 1974). P 399-408.
- Nasrin, Taslima.*Lajja.* Ananda Publishers. 1993.
- Nehru, Jawaharlal. (1947). *A Tryst with Destiny.* (Speech) httpsÑ/ /www.cam.ac.uk/files/a-tryst-with-destiny/index.htmlŒÌa-tryst-with-destiny-1*Retrieved on November 9, 2023.*
- *“Pakistan CabinetÑ Distribution of Portfolios to Ministers”. Amrita Bazar Patrika. Vol. 79, no. 31. 21 August 1947. p. 4.* httpsÑ//eap.bl.uk/archive-file/EAP262-1-1-43-6 0 6 Œ Ì ? c = 0 & m = 0 & s = 0 & c v = 3 & x y w h = -

648%2C4965%2C3687%2C2270*Retrieved on November 9, 2023.*

- Pathak, Moushumi Dutta. "Thinking and Rethinking Partition in the North-EastÑ Colonial and Post-colonial Assam". *Borders and Partitions in South Asia.* Jayita Sengupta (Ed). Routledge, New Delhi. 2012. P 173-186.
- Sen, Dwaipayan. *The Decline of the Caste QuestionÑ Jogendranath Mandal and Defeat of Dalit Politics in Bengal*.Cambridge University Press. 2018.
- Sen, Meenakshi. "Pushback". *Borders and Partitions in South Asia.* Jayita Sengupta (Ed). Routledge, New Delhi. 2012. P 230-237.
- Sengupta, Jayita. (Ed) *Barbed WireÑ Borders and Partitions in South Asia.* Routledge, New Delhi. 2012.
- Shamshad, Rizwana. *Bangladeshi Migrants in IndiaÑ Foreigners, Refugees or Infiltrators?* Oxford University Press. 2017.
- Waliullah, Sayad. "The Tale of a Tulsi Plant". *The Escape and Other Stories of 1947.* Nizam Zaman (Ed). The University Press Ltd. 2000. httpsÑ//sai.columbia.edu/sites/default/files/content/docs/Waliullah,%20Syed%20-%20The%20Tale%20of%20a%20Tusli%20Plant.pdf Retrieved *on November 9, 2023.*

Linguistic Identity : Issues of Language and Script of the Balti Language

Etee Bahadur *

Acknowledgement : Dr. Etee Bahadur is the awardee of the ICSSR Major Research Project. This article is largely an outcome of the Research Project sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However the responsibility for the facts stated, opinions expressed and the conclusions drawn are entirely that of the author.

Abstract :

The Partition of the Ladakh Wazarat in 1948, left a void in the cultural space of the people who inhabited the area on both sides of the LoC. Centred around Skardu are a people whose mother tongue is Balti. Baltis live in the Western Himalayas, they are ethnically and speak a Tibetan dialect, but are predominantly Muslims. Balti is also spoken in India

Assistant Professor of Development Studies and the Associate Editor of the Centre's Journal History and Sociology of South Asia, Centre for Jawaharlal Nehru Studies, Jamia Millia Islamia, New Delhi.
Email : ebahadur@jmi.ac.in
Postal Address : Room no. 12, Centre for Jawaharlal Nehru Studies, Gate no. 19, Noam Chomksy Complex, Jamia Millia Islamia, New Delhi-110025
Residence Address : B -22, Sukdev Vihar, DDA Flats, New Delhi-110025

in places in Leh and in pockets where the Baltis in India live. A section of the scholars also work towards preventing their Tibetan language from the growing influence of Urdu and Punjabi, and to revive the Tibetan script again is a way to preserve their culture. Scholars have discussed the position of Ladakhi and Balti within the Tibetan language family from a linguistic and historical perspective, since the languages are closest to the Tibetan language but on the other hand, the spoken language or '*phalskat*' is a deviation of the original language, this lacks any grammar and thus is not worthy enough to be written down. The original language which is understood to be the language of the religious books or the *Choskat* (i.e. Classical Tibetan).The word Bhoti is relatively new and has come into use since 2000's. The lack of any continuous production of written Balti literature, or Balti literary production in the Tibetan script, the smaller number of Balti's and the marginality of the region as not ever being in the center of Tibetan Buddhism are crucial factors that disqualifies Balti from being a successor to Classical Tibetan. Script revivals and script inventions and standardization of a written form helps us understand the importance of scripts among the ethno-linguistic groups in contemporary South Asia and this is what makes the case of the Balti language intriguing.

Paper- Linguistic Identity: Issues of Language and Script of the Balti Language

Languages are symbols of our identity and identification. The Ladakhi and the Balti language have to be looked at from a linguistic and historical perspective. [1]We are well of the fact that with Partition and the creation of borders what is experienced is not only a demographic change but a change in the life and culture and identity of a group of people who would now have to live with these new border realities.

Balti's- Baltistan- Ladakh- Balti Langauge

Radhika Gupta writes, that in the north-western region of Kashmir, people in the areas of Kargil and Baltistan were late wakers to the stirrings of the Partition. Ladakh Wazarat (province) was sundered, with Kargil and Leh incorporated into the Indian state of Jammu and Kashmir and Baltistan into the Northern areas of Pakistan or the present day Pakistan administered region of Gilgit-Baltistan. Lots ofpeople also found themselves involuntarily left on one side or the other of the 'line of control' (LoC), the 'cross-border dwellers' a category of people whose postcolonial predicaments remain relatively understudied in comparison with Partition refugees.[2] Among them were the Baltis, descendants of traders from Baltistan, who settled in Kargil and Leh for business, and others who had migrated in search of labour work to other parts of North India.

It was till 1947 that the political history of both of these areas, Ladakh and Baltistan were fused together, the Ladakh Wazarat being divided into Leh, Kargil and Skardo districts, Leh being the capital of Ladakh. Conflicts between India and Pakistan separated the Baltis into two groups one living in Baltistan and Ghanche and the other living in Kargil in India. The dispute over the territory has divided Balti's and Ladakhi's on both sides of the LoC affecting the economic-development and the culture of the region. This partition of the Ladakh Wazarat left a void in the cultural space of the people who inhabited the area on both sides of the LoC.

Baltistan is bordered by Gilgit in the north, Ladakh in the east, it has the Kashmir valley to its south and Tibet in the north. Baltistan as a region is referred to in the ancient first epic of King Gesar (*Ling Gesar*). Ptolemy's also mentions a Byaltlae people, the Arabs call it Baloristan and the Tibetans, Nang-Kod, it was Tibet-i-Khurd or Little Tibet in the medieval

literature**.** The geopolitical status of the terrain and the people inhabiting the terrain may be contested, however Balti language as spoken is spoken in six different variants and in different valleys being the Rondu Balti, the Shigar Balti, Skardu Balti, Khaplu Balti, Kharmang Balti and the Chorbat Balti. [3]Balti is spoken by a community of people living in both sides of the border of India and Pakistan in the Western Himalayas. They are neither, refugees nor are they in exile they have crossed-borders permanently, and live on both sides of India and Pakistan, after the Partition and the separation of the Ladakh Wazarat. Tibetans gave their language and culture to Baltistan but it was from Baltistan that Buddhism would travel from India to Central Asia, Tibet and China. Baltis live in the Western Himalayas they are ethnically related to Tibetans and speak a Tibetan dialect, but are predominantly Muslims. Baltistan remained under several petty chiefs till the twelfth century A.D. In the thirteenth century, Ibrahim Shah who had reached Baltistan from Iran via Kashmir, married the only daughter of the Shagari tribe of Skardo and thereby called maqpa which means son-in-law in Balti, founded the Makpon dynasty and then around the fifteenth century a Muslim missionary, Mir Shamsuddin Iraqi spread the Nur-Bakshia of Kubrawiya Sufi order in Baltistan. It is said that in the sixteenth and the seventeenth century the Persian Shia clerics (Persian Twelver Shias) moved into Baltistan. The Mughal rule which would continue till 1753 saw Baltistan acquire a lot of change, as artisans (cobblers, jewelers, masons, stone-cutters) from other parts of India settled in Skardu during this time. Soon control over Kashmir passed on to the Afghans and then to the Sikhs, and the Dogras of Jammu.

The culture and identity of the Balti people who have lived together as the people of Baltistan and Ladakh under one set up under the state of Jammu and Kashmir will slowly get erased

from the memory of the local people and we tend to notice a trend across cultures where the lot of the younger generation has begun to lose interest in their local traditions and festivals. However we see that there is a sense of yearning among the Tibetan origin Baltis to revive their old national roots and attempts to revive the traditional rituals like *Me-Phang*, which is a fire-ritual, there is a move as well to preserve and protect Skardu's ancientmonuments rock carvings and other related heritage. There are many scholars who work on different facets of the Balti cultural identity, the Baltis would like to further their relations with Ladakh as they have a shared ladakhi identity and heritage in the form of their language, music, dress, food, sports like polo and daphang which is archery, and most importantly Balti folklore like the King Gesar (*Ling Gesar*). A section of the scholars also work towards preventing their Tibetan language from the growing influence of Urdu and Punjabi, and to revive the Tibetan script again is a way to preserve their culture. Such is the linguistic predicament of the Balti people, who were once a part of undivided Jammu and Kashmir.

The Moravian Missionaries

The Moravians or *Evagelische Bruderunitat* became an independent Christian group in 1727. The main centre of their missionary activities used to be Herrnhut. The Moravian Archives is located in this small German town and are a treasure house of information on the history of missionary work. A.H. Francke (1870-1930) was one of the missionary scholars of the Moravian church to work in the Himalayas. Francke's scholarly interest emerged from his career as a Moravian missionary. He is best known for his research in languages, history and archaeology of Ladakh and Lahaul. Francke arrived in Leh,, the capital of Ladakh in 1896, by this time the

Himalayan Mission had been in existence for over forty years, the first Himalayan mission being formed in 1856 at Kyelang by August Wilhem Hyde (1817-1833) and Edward Pagell.[4]

Francke settled down with his wife, Anna TheoDora Weiz (Dora) to regular mission work in Leh by 1897. Francke originally was a primary school teacher at a Moravian training college and had an aptitude for the languages. His first task was to begin learning the local language. Dora had some knowledge of the area of ladakh, as the usual norm of the mission board, was to influence the marriage partners of the missionaries, her sister had been married to Dr. Karl Marx. Francke soon settled down to regular mission work which included preaching every Sunday, teaching English and arithmetic at the mission school everyday and taking reading lessons twice a week among other things. He had by now also begun the translation of the Bible stories into Ladakhi. dialect with the help of local assistants. In 1899 he moved to a new mission station at Khalatse with his family. As in Leh he took on his duties and held regular Ladakhi sermons on Sunday, which were a laborious task due to the complexities of the local dialect. Francke's motive was to find the best medium to express the Christian teachings to the local people. The founders of the mission had therefore begun translations in a simplified form of classical Tibetan. Francke also begun his studies by concentrating on the *Chos Skad* which was used in the Church, but soon realized that a knowledge of this language was not sufficient enough for him to communicate with the local people as Classical Tibetan, he felt was inappropriate for everyday use. The idea of using the lithographic mission Press at Leh made him begin a monthly newspaper, called *La dwags Kyi ag bar* (Ladakh Newspaper, 1904-1910). It was the first Tibetan- language paper printed in the Himalayas.[5] Francke hoped the newspaper would provide people to read

on topics which were not necessary religious, as most Tibetan books were associated with Buddhism he hoped to popularize a concept of non-Buddhist writing. Hence he wrote books in the cursive Tibetan and not in Uchen script which was used in the writing of religious books. He believed that once people became accustomed to the newspaper they would be more receptive to the Moravian mission and their Christian publications. The paper had four quarto-sized sheets arranged in columns and was divided into three main sections., with news of Ladakh and other regions. The second part of the paper consisted of local Ladakhi text and included a series of extracts from the *La Dvags rgyal Rabs*, the Ladakhi Chronicles which had been studies by Dr. Karl Marx. The third part of the paper was Evangelistic. The main problem however was of the distribution of the paper, in a mountainous area with poor postal services. The sale of papers began to be done to the representatives of the villages at the Leh Bazaar, and soon it reached the remote villages of Ladakh.

Frankes's linguistic research led him into the study of oral literature of Ladakh. Folksongs and proverbs as we aware, are an important source of any local language. The *Kesar* Saga, Francke believed broadened his vocabulary as it is known in different versions across Tibet and Mongolia and also give an insight of the local religious belief systems. The researches led to the publication of the Ladakhi versions of the *Kesar* saga first in Helinsinki, and in Bombay and Calcutta. His missionary journeys also, gave him the opportunity to satisfy his archaeological interests and rock inscriptions which were a source of his historical researches. *A History of Western Tibet* was published in 1907 and the *Antiquities of Indian Tibet* was published in two volumes, in 1914 and 1926 by the Archaeological Survey of India (ASI). His research into local culture prompted comparisons between Ladakh and Europe

and raised the question of which aspect of Ladakhi tradition were compatible with Christianity as he had objected to certain Buddhist customs and was not in support of the worship of local spirits as it was incompatible with Christianity. Non Buddhist texts and popular folk songs interested him and he published over a dozen of short publications on topics ranging from rock inscriptions to music and folk songs.

Ladakhi language can be understood in terms of spoken and written or classical Tibetan. Classical Tibetan is known as Bhoti in Ladakh and the terms Bhoti and Ladakhi are used interchangeably in Ladakh. Ladakhi and Balti are closest to the Tibetan language infact the strong political and cultural links with Ladakh and Tibet gave Baltistan the name of 'Little Tibet.' The Baltis and Ladakhis people take pride in the fact that their dialects represent the original language as their pronunciation of the written Tibetan is still intact, however there has been a downfall trend in the reading and writing of Classical Tibetan. Efforts have been made to promote Ladakh's literary heritage with the Tibetan Buddhist culture as both the administrative document and Buddhist religious texts were written in the Tibetan script earlier. Generations of scholars have struggled with the question of promoting and preserving Ladakhs literary connection with wider Buddhist culture. The first Western style Tibetan text books for school children were prepared by the German missionaries of the Moravian churchwho had worked in the Himalaya in the mid nineteenth century. The demand for educational reforms had begun by the 1930's. Rahul Sanskrityayan (1893- 1963) and his colleague Tsetan Phutsong (1908- 1973) prepared Tibetan language (*Bod yig*) textbooks for ladakhi school.[6] Tashi Rabgyas a contemporary historian of Ladakh who himself, was well versed in classical Ladakhi and Tibetan, has written several books poems and articles compiled a book of one

hundred and twenty- eight ladakhi folksongs published a collection of songs called Teng Sang Giglu (songs of today) and History of ladakh called *Maryal la Dvags kyi Sngon rabs gsal me long zhes by aba bhzhugs so* (Mirror which illuminates all, 1984). It includes a focus on Buddhist history and on various monasteries on Ladkah. Jamyang Gyatsen has also on a similar note written on the histories of the lakdakhi monasteries. Tashi Rabyas, also begun a newsletter which highlighted the development activities in Ladakh in the Bhoti language while he worked in the Information Department (Ladakh). Since there was no other medium at that time, to spread an awareness for the preservation of classical Tibetan and Ladakhi languages, as the All India Radio (Leh) was established in 1971 and Doodarshan Leh in 2000. Historically ladakhi Buddhists and ladakhi have written a version of classical Tibetan even though the spoken language differs from the written one.This written language is now widely known as Bhodhi or Bhoti and is often used interchangeably. Leh was a creative outlet for upcoming writers composers like Morup Namgyal have worked to rekindle an interest in literary and folk forms by revitalizing folksongs and by reciting dramatizing epics like saga of king Kesar of Gling. Baltistan's connect with Ladakh, Tibet and Jammu and Kashmir, has been kept alive by writers and cultural commentators who write and speak on the Balti culture and history. the Balti *tamlo* containing 900 Balti and Ladakhi proverbs, the popularity of the Ladakhi songs in Baltistan all are an evidence to this. A section of the scholars also work towards preventing their Tibetan language from the growing influence of Urdu and Punjabi, and to revive the Tibetan script again is a way to preserve their culture. Such is the linguistic predicament of the Balti people, who were once a part of undivided Jammu and Kashmir. [7]

The Balti language and its evolution

The language spoken in Baltistan and Kargil is called "Balti". This belongs to the Tibeto-Burman branch of the Sino-Tibetan language family. It seems to be a dialect of the famous Tibetan language, which is of Tibetan origin, but where this language is prevalent in Muslim areas, it is known as Balti. Balti is the local geographical name of modern-day Baltistan, and this language is called Balti in reference to the homeland. Some of the problems that come to surface when one attempts to maintain, reform or even revive the Ladakhi and Balti languages are as to the locating the origin of the language. Bettina Zeisler,in her article discusses the position of Ladakhi and Balti within the Tibetan language family from a linguistic and historical perspective, since the languages are closest to the Tibetan language but on the other hand, the spoken language or '*phalskat*' is a deviation of the original language, this lacks any grammar and thus thus is not worthy enough to be written down The original language which is understood to be the language of the religious books or the *Choskat* (i.e. Classical Tibetan). [8]Muhammad Sadiq Hardassi writes, that a large number of Balti speakers fled to India's mountainous regions after 1840. These areas included Shimla, Mussoorie, Nainital, Dalhousie, and Ambari; Kalsi Gate; Chakrata; Srinagar Garhwal; Dehradun; Shimla; Sanjauli; Rampur; Peer Mitha of Jammu; Tral, Panir; Bandipore; Kalan; Bemina; Laal Bazar; Dal Gate; and Batta Malu of Kashmir. Many Baltistanis migrated to Karachi, Lahore, Rawalpindi, Islamabad, and Murree. Some went to Europe and America, while others went to Iran, Saudi Arabia, Dubai, Bahrain, and Kuwait in search of education and work. Balti's are emotionally connected with their language he writes. They never lose connection with their language, no matter where they go. In the Balti language, there is a well-known saying that roughly translates as "they

can forget their home but they cannot forget their language." [9] He writes that is was after the rise of Islam in Batistan, that the influence of Arabic and Persian penetrated rapidly, this made in time the, original script of the Tibetan language "become obsolete". The Persian script was used to transcribe religious texts. It was only the*Hamd* and *Naat* poems and ghazals that were written in Balti. This is the one of the reasons he writes also, that letters denoting retroflex sounds are not available or rarely available in old poetry.[10]Islam spread in this area in the 14th century AD by the Iranian preachers who used Persian as their medium of communication. Along with this, the court language of the kings also became Persian. As a result, as time passed, local poets began experimenting in Persian, and today Baltistan he writes, has a vast collection of Persian literature scattered across the country. As a result, many Persian words became popular in the Balti language. Along with Persian, religious terms of Arabic origin are widely used in Balti, and many words have become part of the Balti language. [11]The influence of Urdu on Balti begun after 1840, both directly and indirectly. The Maharaja required people with bureaucratic skills to rule in Baltistan, which was impossible to meet given the illiterate society of Ladakh and Baltistan. To address this, he brought people from Kashmir, Jammu, and North India, where education was already prevalent and Urdu was the medium of instruction. Urdu was declared the medium of instruction when schools first opened in Baltistan. Those who received an education would work for the Maharaja and as a result, he writes that, Urdu became the official language of Ladakh and Baltistan by default.[12]The history of Urdu poetry in Ladakh and Baltistan is not very old. Scholars believe that Raja Murad Ali Khan Murad of Shigar was the first Urdu poet in Baltistan. After him, Raja

Muhammad Ali Shah Baidal of Skardu was the first Balti poet to write a popular Urdu poem in honour of Hazrat Ali.[13]

Carmen writes that the Balti language is associated with a third entity, Tibet. The research done by Carmen is based on qualitative interviews with Balti's of various backgrounds between the years 2014 and 2017 and focus on the endeavours to standardize the script which is a variant of the Perso-Arabic, Tibetan or Roman scripts.[14] Carmen writes, of the case of the Balti's with an intriguing language. Since it is sparsely written, only a few publications are found in Balti and the grammar of the language has not been officially standardized nor has its orthography. Literary evidence which comprises of stone inscriptions are in the Brahmi and the Tibetan script and are old and the scripts the Baltis are more familiar with in Pakistan are the Perso-Arabic script and the Roman script. Since Balti is classified as a Tibetic language, it is closely related to the Ladkahi and Purki (Purigi) which are spoken in Ladakh.[15]Radio and TV programs contribute to the standardization of an oral form of the Balti language, the biggest challenge is the promotion of Balti as a written language and the standardization of its script and orthography.[16] The textualization of a language and its script plays an important role in its identity formation, the politics of ethnic communities and religious communities in contemporary South Asia. The separation of Hindi and Urdu has been known, nineteenth century onwards, script revivals and script inventions and standardize its written form helps us understand the importance of the script among the ethno-linguistic groups in contemporary South Asia. South Asia is home to multiple scripts, twenty-three official languages in India alone are written in thirteen different official scripts, while the People's Linguistic Survey (PSLI) in 2013 has stated that around seven hundred and eighty languages (780) are currently spoken in

India along with eighty-six (86) different scripts, portraying aspects of an inclusive language policy.

Various initiatives have taken to write save and preserve the Balti language and to implement a standardized orthography and script for the language. The Balti activists thus perceive the inscriptions on the Buddha rock close to Skadu as Balti, as they see it important for the revival of the authentic script of their language.The Language activists belong to different backgrounds but have connections across the borders, social media also seem to play in connecting them through international borders,come together to speak about their ideas of Baltiness. Carmen writes that none of these script activists suggest a unique endogenous script that can be identified with the Baltis in his discussion interviews and fieldwork. The script in South Asia was mainly derived from the Brahmi script, the Roman script which has played a role in South Asia from times immemorial. Eugene Jones in 2013 along other Balti intellectuals published an A4 brochure named *Balti Skad Ñ Roman Rbijokhsing*. It contains aspects of writing Balti in the Roman script, poems, short stories, and articles about the culture of the Baltis, written in this variant of the Roman script. She hopes that children would be able to learn to read and write their mother tongue quickly as the Roman script is fairly widely in use already in Pakistan. The Balti language being rich in vowels like the Tibetic languages and the Roman script being being an alphabetical writing system, can produce these vowels more clearly than the Perso-Arabic script which is not seen to render short vowels. However activists who favour other scripts, for the Balti language bring forward the Roman scripts association with English and thereby the argument that the Roman script lacks any connection to their language and thus against the usage of the Roman script for the Balti in its written form. The Tibetan

script is linked to classical Tibetan, and thereby Tibetan Buddhism.

The creation of the Tibetan scripts in emic historical traditions and attributed to one specific person, Thonmi Sambhota. He was sent by Songtsen Gampo, the founder of the Tibetan empire in the seventh century, to India to devise a script for Tibetan. He came up for the official script and then used for translating Buddhist texts form Sanskrit into Classical Tibetan in the eight century. The Tibetan script is then tied exclusively to Tibetan Buddhism and the close connection of Tibetan writing with Buddhism also includes the historic evidence used for the script in Baltistan.[17] The script Yige or Agay script which is the Tibetan script for Balti, needs to be revived again. Balti is perceived as being linguistically similar to Classical Tibetan and thereby archaic Tibetan or phonetically archaic.[18] According to Frankce, Thonmi Samhota was not the first person who invented the Tibetan script. He claims that Buddhism did not spread to Tibet through India, but rather through Central Asia. Tibetan Buddhist scholars in Khotan invented a script for translating religious books into Tibetan in the 5th or 6th century AD and kept it in places of worship, which later fell into the hands of Thonmi Samhota, who edited and modified it into its final form. Tibetan linguists and scholars attribute the invention of the first script to Thonmi Samhota.[19]

The efforts to write Balti in the Tibetan script include another book written by Yousuf Hussain Abidi who published a book about the Balti language and the Tibetan script in 1984 and a second book in the year 1990. He spoke for the suitability and the use of the Tibetan script for the Baltis for their language, he also introduced new letters to accommodate specific phonemes for words of Perso –Arabic origin that could be represented, these were recognized by the International organization for standardization in 2006 and are a part of the

Unicode set for the Tibetan script, however he speaks for the Balti in the Perso-Arabic script, since its impractical as the local people he feels are closer to the Perso-Arabic script as of now.[20] The script activists like Abadi are now broken into two camps, the first being people trying to organize Balti in a very organized way and the second group consisting of individuals who wish to spread it through private initiatives. The Baltistan Culture and Development Foundation (BCDF) in 1988, holds a key postion as the vanguard for the preservation for the preservation and the revival of the local culture, and have projects dedicated to the cause. Elementary books for learning Balti in Tibetan script, a winter course having begun of Yige (Tibetan script) for teachers of the schools . The script activists who network with activists in Ladakh, the Tibet autonomous region and tibetic communities abroad who are linked to the BCDF prefer an orthography which is close to the pronunciation of modern Balti, and traces its origin to the standardization of spoken old Tibetan from the eight century which is used for modern tabetic languages. They cherish this common heritage in social networks where they communicate with each other since they use the same orthography. Diverging orthographies including a new orthography is in line for a Balti to emphasize the uniqueness of Balti and Baltiness. The promotion of the Balti language is seen as most important for the script activists which is essential for sustainable nation building. A new orthography would help the spread of the Tibetan script, and also helped to access old Tibetan sources. The old orthography focusses on the Tibetan heritage and its links with the past the new one enables people to read and write the language but hampers the relations with other tibetic and thereby cross-border nation building among the Baltis. Pakistan is seen to support the Perso- Arabic script

for Balti in the past and the Perso –arabic script for the Baltis is a symbol of Muslimness and establishing a potential of belongin to Iran and Shia Islam in the case of the Baltis.Thus the Balti literature which is available today is mostly in the Perso -Arabic script.

Script and Alphabets

The original script of the Balati language, known as "Yige" in Kargil and Baltistan, is written from left to right, just like English.[21] Its alphabets are as follows:

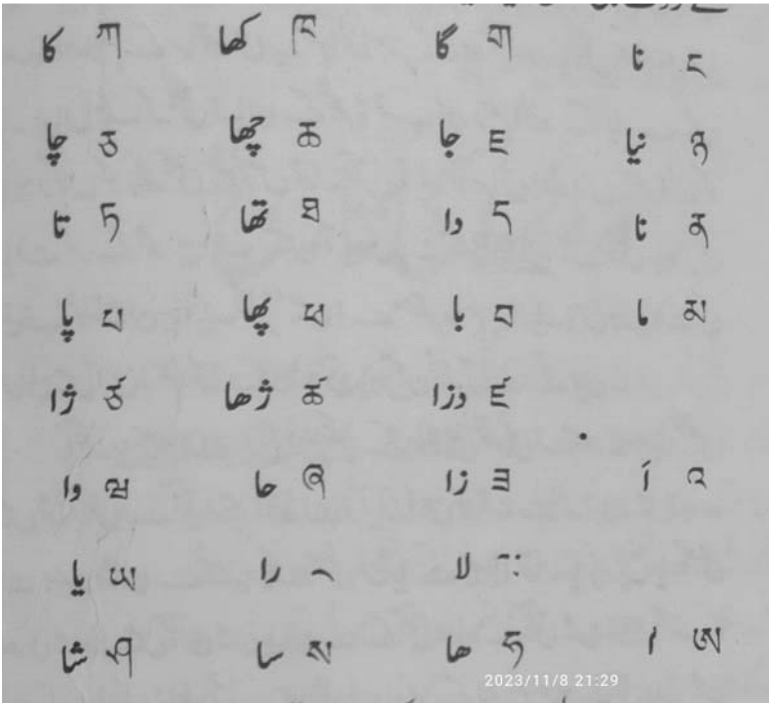

For the English illustration, the wikipeidai chart has been used by Sadiq Hardassi in his book *Balati AdabÑ Ek Mukhtasar Tareekh Balati* in Urdu.

Basic alphabets

	Unaspirated *high*		Aspirated *Medium*		Voiced *low*		Nasal *low*	
	Letter	**IPA**	**Letter**	**IPA**	**Letter**	**IPA**	**Letter**	**IPA**
Guttural	ཀ	/ka/	ཁ	/kʰa/	ག	/ga/	ང	/ŋa/
Palatal	ཅ	/ʧa/	ཆ	/ʧʰa/	ཇ	/ʤa/	ཉ	/ɲa/
Dental	ཏ	/ta/	ཐ	/tʰa/	ད	/da/	ན	/na/
	ཙ	/tsa/	ཚ	/tsʰa/	ཛ	/dza/	ཝ	/wa/
Labial	པ	/pa/	ཕ	/pʰa/	བ	/ba/	མ	/ma/
Low	ཞ	/ʒa/	ཟ	/za/	ཡ	/a/ (…a)	ཤ	/ʃa/
medium	ར	/ra/	ལ	/la/	ཧ	/ɦa/	ས	/sa/
High	ཨ	/ha/	ཪ	/a/ (□a)				

This script contains four short vowel symbols, three of which are placed above the word and one beneath it. If a word does not have these four short vowel symbols, it is read with a sound and is referred to as “harkeng.” The symbols for short vowels are:

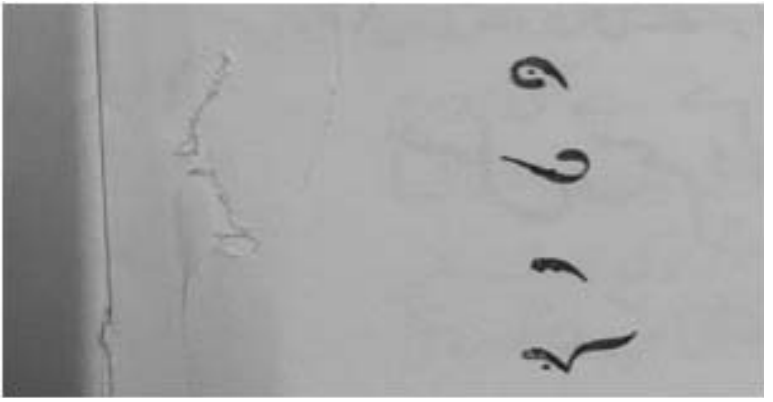

Extra letters were created in order to express new voices from other languages.

These are some external letters.

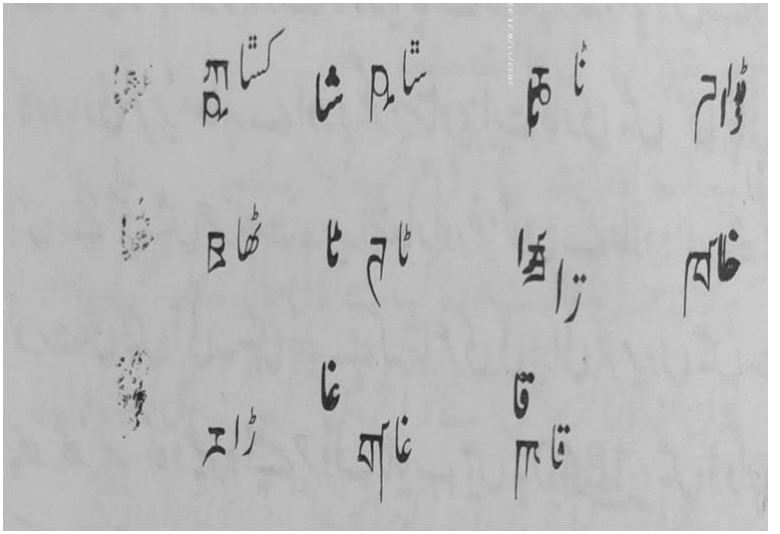

Yige alphabet (Wikipeida)

Additional Balti Yige Letter	Romanization	IPA
□	Q	/q/
□	ɾ	/ɾ/
ཁ	X	/χ/
ཧ	Y	/ʁ/

Balti's in Leh District (Ladakh) and the Balti's at Uttarakhand

Table no 1 shows the tribe-wise Scheduled tribe Population in the district of Leh of Ladakh. The Baltis are shown to be a total of 12919 persons with 11306 living in the rural areas and 1613 in the urban areas.

Table No.1

Tribe-wise Scheduled Tribe Population by Residence and Sex in Leh District of Ladakh (As per 2011 Census)									
District	**Person**			**Male**			**Female**		
	Total	**Rural**	**Urban**	**Total**	**Rural**	**Urban**	**Total**	**Rural**	**Urban**
Leh - Ladakh									
All Schedule Tribes	95857	73789	22068	47543	36318	11225	48314	37471	10843
Bakarwal	17	17	0	7	7	0	10	10	0
Balti	12919	11306	1613	6427	5605	822	6492	5701	791
Beda	301	150	151	146	68	78	155	82	73
Bot, Boto	74268	55302	18966	36589	27129	9460	37679	28173	9506
Brokpa, Drokpa, Dard, Shin	1848	1690	158	942	858	84	906	832	74
Changpa	2374	2001	373	1207	1011	196	1167	990	177
Gaddi	18	0	18	18	0	18	0	0	0
Garra	260	252	8	130	123	7	130	129	1
Gujjar	64	27	37	55	22	33	9	5	4
Mon	346	257	89	156	119	37	190	138	52
Purigpa	215	102	113	110	51	59	105	51	54
Jammu & Kashmir									
All Schedule Tribes	1493299	1406833	86466	776257	730075	46182	717042	676758	40284
Bakarwal	113198	109132	4066	59621	57488	2133	53577	51644	1933
Balti	51918	43856	8062	26473	22346	4127	25445	21510	3935
Beda	420	214	206	216	98	118	204	116	88
Bot, Boto	91495	72116	19379	45295	35601	9694	46200	36515	9685
Brokpa, Drokpa, Dard, Shin	48439	45844	2595	25240	23861	1379	23199	21983	1216
Changpa	2661	2257	404	1355	1145	210	1306	1112	194
Gaddi	46489	45678	811	23808	23362	446	22681	22316	365
Garra	504	437	67	275	220	55	229	217	12
Gujjar	980654	941916	38738	510710	490098	20612	469944	451818	18126
Mon	829	717	112	418	363	55	411	354	57
Purigpa	39101	35103	3998	20119	18014	2105	18982	17089	1893
Sippi	**5966**	**5873**	**93**	**3064**	**3003**	**61**	**2902**	**2870**	**32**

Source: India Stats Data for Leh District

In Ladakh, the Balti are Muslim, they are Ismaili Shite in Kargil and in Nubra, they are mostly shia and sunni, however Tibetan Buddhists are seen to be dominant in other parts of Ladakh. It was only after 1989 that, many Baltie's realized that they belonged to another ethnic group called the Purigpa who spoke Purkhi/ Purgi, since they were now officially recognized as in the Constitution, as Scheduled Tribes. The Linguistic Survey of India, 2011 recognized Purhi under Tibetan language and Balti was recognized as an independent language.[22]According to the Census of India, 2011, the total number of persons speaking Balti at Dehradun are recorded as 29.[23]

The year 2023

The year 2023 has seen a lot of activity which in itself is an aspect of socio-political mobilization. The year began with the **'Confluence of the Balti Community in India' (15-16 February, 2023).**

A series of events were held in Uttarakhand in a program titled ' Confluence of the Balti Community in India " . It was the Himalayan Cultural Heritage Foundation, Leh that had organized in collaboration with the Balti Welfare Association of Uttarakhand in the Vikasnagar, Dehradun on 15-16 February. It had been jointly organized by Dr. Sonam Wangchuck and Sadiq Hardassi along with the President, Shujaat Ali Shah of the Balti Welfare Association, Uttarakhand. It was the preservation of the Balti language was the main aim of the Confluence of the Balti community in India as according to a participant from Uttakhand.[34] The discussion focused on Balti culture, history, migration and their connection with Ladakh and Baltistan. Sonam Wanghuck ' among the major Himalayan Languages spoken in Ladakh, Balti is the only one that still has its roots to the script which

is common to all three languages". He said, that the speakers still pronounce the words the way they are written in the script., unlike the Tibetan and Ladakhi in which the pronunciations have changed over time…' Most Balti's have forgotten the languages written form as Yigey . Folk singers of Ladakh Dorjay Stakmo and Dechen Chuskit sang Balti folk songs and Gazal.

https://www.awazthevoice.in/culture-news/baltis-in-india-celebrate-their-distinct-culture-map-migration-at-dehradun-meet-19519.html

A one day Seminar was held in June at the Tribal Fest entitled "Indigenous Tribes of Ladakh Ñ Understanding the Vulnerabilty, Inclusivity and Conservation efforts. This was organized by the Tribal Research Institute (TRI), Kargil campus, University of Ladkah. [1]The intricacies and hidden strands of the Bhoti language in spoken and written form were highlighted on by one of the research scholar while another scholar spoke on the Balti language and the preservation of the Balti script.[26] **Yaad-e-Moheb**, took place at the Conference hall Kargil, in September 2023.[27] It was organized by the Ladakh Academy of Art, Culture and Languages (LAACL),

Kargil on Balti Literature in collaboration with the Association of Baltis in Himalaya (ABH).[28] A two day **Balti Spangang Festival** was held at Turuk Block of Nubra Valley, it had been jointly organized by the Ladakh Academy of Art, Culture and Languages Leh and Kargil, in collaboration with the Balti Stanma Association Turtuk, Youth Association and the Panchayat of Tyakshi and the Polo Club Bodang,Turtuk and Tyakshi of Nubra Valley thereby looking towards the preservation of Balti culture and heritage.[29]

The First Balti Research and Study Centre (2023)

In Ladakh, in a major development in the literary and research sector the First Balti Research & Study Centre was inaugurated by Famous Scholar and Author Kacho Asfindayar Khan Faridoon at Balti Manzil Balti Bazzar Kargil, initiated by President Association of Baltis for Himalaya & Territories of Indus, Bashir Ahmad Wafa. Kacho Asfindiyar Khan Faridoon appreciated the initiative taken by Famous Poet Bashir Ahmad Wafa and said that such initiative will help the future generation to know about the Language, Culture and Tradition of the society as well as will help in preservation,

revival and promotion of Languages.[30] He further said all the hands of Literary figures of Kargil will join together for helping Bashir Ahmad Wafa in future to continue his endeavour and struggle for the revival and preservation of Balti Language. Bashir Ahmad Wafa founder of the Centre while talking to the media said that in this era of globalization and Digital World, there is a growing threat to indigenous Languages with small user are at the verge of threat. He urged upon all the language and literature lovers to come forward to help him in this noble mission and is not restricted to Balti Language but will work on all the languages and fields. [31]

1. Zeisler, Bettina. 2005. "On the Position of Ladakhi and Balti in the Tibetan Language Family." In John Bray (ed.) Ladakhi Histories, (Leiden: Brill,2005) 41-64
2. Radhika Gupta, Poetics and Politics of Borderland Dwelling : Baltis in Kargil, South Asia Multidisciplinary Journal,10(2014) Ideas of South Asia.
3. Backstrom, Peter C, Balti in Sociolinguistic Survey of Northern Pakistan, Vol. 2: Languages of Northern Areas, (ed.) Peter C. Backstrom and Carla F. Radloff (Islamabad and High Wycombe: National Institute of Pakistani Studies, Quaid-i-Azam University and Summer Institute of Linguistics, 2002) 3-28
4. Ladakhi knowledge and Western learning Ñ A.H Francke's teachers, Guide and friends in the Western Himalaya John Bray (International Association of Ladakh Studies)

   Hartmut Walravens, The Moravian mission and its research on the language and culture of Western Tibet Oriens Extremus (1992, Vol. 35, No. 1/2) 159-169 (Accessed on 2.09.2022)

   URL: http://www.jstor.com/stable/24047224
5. John Bray, A.H. Francke's "La Dvags Kyi Akhbar": the First Tibetan Newspaper in The Tibet Journal,(Autumn 1988, Vol. 13, No. 3 (Autumn 1988) 58-63 Library of Tibetan Works and Archives http://www.jstor.com/stable/43301059

6. John Bray, Martin Van Beek Phuntong Wangchuck, Rahul Sankrityayan, Tsetan Phuntsog and Tibetan and Tibetan Textbooks for Ladakh in 1933 in Himalaya, the Journal of Association for Nepal and Himalaya Studies (Volume 39 No 2 Article 11) 75-91
7. Zeisler, Bettina. 2005. "On the Position of Ladakhi and Balti in the Tibetan Language Family." In John Bray (ed.) Ladakhi Histories, (Leiden: Brill,2005) 41-64
8. Zeisler, Bettina. 2005. "On the Position of Ladakhi and Balti in the Tibetan Language Family." In John Bray (ed.) Ladakhi Histories, (Leiden: Brill,2005) 41-64
9. Muhammad Sadiq Hardassi, Balati Adab: Ek Mukhtasar Tareekh Balati in Urdu (Jammu Cresent House Publishers, 2017) 69-83
10. Ibid, 69-83
11. Ibid, 69-83
12. Ibid, 69-83
13. Ibid,69-83
14. Carmen Brandt,Writing Balti(ness) The Challenge of Nation-Building in a Geopolitically Contested Region in Asian Ethnology Vol. 80, No. 2 (2021) 287-318 Published by: Nanzan University (Accessed on 26.06.2022) https://www.jstor.org/stable/10.2307/48634115
15. Ibid, 292
16. Carmen Brandt,Writing Balti(ness) The Challenge of Nation-Building in a Geopolitically Contested Region in Asian Ethnology Vol. 80, No. 2 (2021) 287-318 Published by: Nanzan University (Accessed on 26.06.2022) https://www.jstor.org/stable/10.2307/48634115
17. Ibid
18. Ibid
19. Muhammad Sadique Hardassi, Balati Adab: Ek Mukhtasar Tareekh Balati in Urdu (Jammu Cresent House Publishers, 2017) 69-83
20. Carmen Brandt,Writing Balti(ness) The Challenge of Nation-Building in a Geopolitically Contested Region in Asian Ethnology Vol. 80, No. 2 (2021) 287-318 Published by: Nanzan University (Accessed on 26.06.2022) https://www.jstor.org/stable/10.2307/48634115

21. Muhammad Sadique Hardassi, Balati Adab: Ek Mukhtasar Tareekh Balati in Urdu (Jammu Cresent House Publishers, 2017) 69-83
22. https://www.greaterkashmir.com/todays-paper/balti-protecting-the-language/
23. https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/12539

    https://timesofindia.indiatimes.com/city/dehradun/balti-members-hold-first-ever-meet-in-dehradun-to-save-disappearing-language/articleshow/97996002.cms

    https://timesofindia.indiatimes.com/city/dehradun/balti-members-hold-first-ever-meet-in-dehradun-to-save-disappearing-language/articleshow/97996002.cms?from=mdr

    https://indusdispatch.in/himalayan-cultural-heritage-foundation-organizes-confluence-of-balti-community-in-india/
24. https://theprint.in/india/confluence-of-balti-community-event-in-uttarakhand-showcases-indigenous-cultures-rich-history/1377307/
25. https://ladakh.nic.in/kargil-campus-uol-organizes-one-day-seminar-on-indigenous-tribes-of-ladakh/
26. Ibid
27. https://ladakh.nic.in/day-long-literary-program-yaad-e-moheb-held-at-kargil/
28. https://www.youtube.com/watch?v=HXMl-
29. https://ladakhtimes.com/02-days-balti-spangang-festival-held-in-turtuk-block-of-nubra-valley/
30. https://risingkashmir.com/first-balti-research-study-centre-inaugurated-in-ladakh-643771ed-9373-48e8-a276-ec732b2e5b3b
31. https://www.youtube.com/watch?v=Q60aO6gLs50